महर्षि के जीवन-काल में लिखा प्रथम
प्रामाणिक जीवन चरित्र :

दयानन्द
दिग्विजयार्क

गोपाल राव हरि

आर्यसमाज स्थापना-शताब्दी के उपलक्ष्य में

प्रथम संस्करण : सितम्बर, १९७४

श्रीमद्दयानन्द-दिग्विजयार्क

लेखक
स्व० गोपाल शास्त्री शर्मा
(गोपाल राव हरि प्रणतांकर)

सम्पादक
डा० भवानीलाल भारतीय
(एम. ए. पी-एच. डी.)
संयुक्त मंत्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

प्रकाशक
आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
४५५, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक
आर० के० प्रिण्टर्स
८० डी०, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण
वि० २०३१

सृष्टि संवत् : १,९६,०८,५३,०७५

मूल्य : सजिल्द आठ रुपये

सम्पादकीय वक्तव्य

यों तो ऋषि दयानन्द के विभिन्न भाषाओं में अनेक जीवन-चरित्र लिखे गये हैं परन्तु ये सभी ऋषि के परलोक-गमन के पश्चात् ही लिखे गये। ऋषि के जीवनकाल में भी एक जीवन चरित्र लिखा गया था जिसके रचयिता एक महाराष्ट्रीय सज्जन थे—पं० गोपाल राव हरि। पं० गोपाल राव हरि फर्रुखाबाद में स्कूलों के सब-डिप्टी इन्सपैक्टर थे। स्वामी जी के दर्शन उन्होंने १९२५ वि० में किये तथा वे उनके दृढ़ अनुयायी एवं भक्त बन गये। आर्यसमाज फर्रुखाबाद के मासिक मुख पत्र 'भारत सुदशा प्रवर्तक' का सम्पादन भी पं० गोपाल राव हरि ने किया तथा १९३७ वि० में दयानन्द दिग्विजयार्क का प्रणयन आरम्भ किया। प्रथम खण्ड की रचना १९३८ वि० में सम्पाप्त हुई। तत्पश्चात् द्वितीय खण्ड का लेखन प्रारम्भ हुआ। यह खण्ड भी उक्त वर्ष में ही समाप्त हो गया। इसके दो वर्ष पश्चात् १९४० वि० में स्वामी दयानन्द का देहावसान हो गया। तदनन्तर १९४५ वि० में लेखक ने ग्रन्थ का अवशिष्ट तृतीय खण्ड लिखकर समाप्त किया। प्रथम और द्वितीय खण्ड के दो-दो संस्करण (द्वितीय संस्करण १९४४ वि०) प्रकाशित हुए किन्तु तृतीय खण्ड एक ही बार छपा।

इस ग्रन्थ की एक दुर्लभ प्रति (मात्र २ खण्ड) मुझे जोधपुर के दुर्लभ पुस्तक विक्रेता (रेयर बुक डीलर्स) श्री तेजपाल से प्राप्त हुई। तृतीय खण्ड की एक जीर्ण-शीर्ण प्रति पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने पठनार्थ प्रदान की, जिसके प्रारम्भिक तथा अन्तिम अनेक पृष्ठ फट चुके थे। इस ग्रन्थ का आद्योपान्त अवलोकन करने से मुझे विदित हुआ कि दयानन्द दिग्विजार्क के लेखक ने पुण्यश्लोक महर्षि के इतिवृत्तों का संग्रह करने में अपूर्व श्रम किया है तथा पं० लेखराम एवं पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आदि जीवनीकारों ने अपने ग्रन्थों में इस पुस्तक का भरपूर उपयोग किया है।

जब मैं १९६९ ई० में अजमेर आया तो परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में दयानन्द दिग्विजयार्क के तृतीय खण्ड को समग्र रूप में देखा। तब मेरा सुनिश्चित विश्वास हो गया कि यदि इस ग्रन्थ को पुनः प्रकाशित किया जाय तो यह अतीव उपयोगी ज्ञानवर्धक एवं लाभप्रद सिद्ध होगा। सौभाग्य से आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट के संस्थापक श्री दीपचन्द जी आर्य

का भी यही विचार था और अब श्री आर्य जी के ही सत् प्रयास से यह ग्रन्थ पुनः सम्पादित होकर आर्य जनता एवं पाठकों के समक्ष आ रहा है।

ग्रन्थ की महत्ता एवं ऐतिहासिकता का अनुमान तो पाठक उसे पढ़ कर ही कर सकेंगे, यहाँ इतना लिख देना ही अलं है कि लेखक ने जो सामग्री संचित की है वह उसकी (फस्ट हैंड नाँलेज) पर आधारित है। स्वयं स्वामी जी के समकालीन होने तथा उनके विश्वासभाजन होने के कारण पं० गोपाल राव हरि ने स्वामी जी के जीवनवृत्त, उनके कार्यों तथा प्रवृत्तियों का जो विवरण उपलब्ध किया है वह सर्वथा प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है।

ग्रन्थ के सम्पादक तथा संक्षिप्तीकरण में कुछ बातों का ध्यान रक्खा गया है जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। मूल ग्रन्थ में कई प्रकरण ऐसे हैं जिनमें महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका भ्रमोच्छेदन, गोकरुणानिधि, स्वीकार पत्र आदि ग्रन्थों को यथावत् उद्धृत किया गया है। ऐसे प्रकरणों को संक्षिप्त करने की दृष्टि से महर्षि कृत ग्रन्थों के उक्त उद्धरण नहीं दिये गये हैं, परन्तु वहाँ यह संकेत अवश्य कर दिया गया है। इसी प्रकार कतिपय अनावश्यक प्रसंगों को भी पृथक् कर दिया गया है। लेखक की भाषा आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व की हिन्दी गद्य शैली का रूप उपस्थित करती है अतः उसे यथावत् रखने की चेष्टा की गई है परन्तु कहीं-कहीं अर्थ स्पष्ट करने के लिये प्रचलित शब्द कोष्ठक में दे दिया गया है। मूल ग्रन्थ लीथो की छपाई में छपा था अतः उसकी प्रतिलिपि करना भी पर्याप्त कष्टसाध्य कार्य था, तथापि प्रकाशक महोदय की प्रेरणा से यह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

अन्त में इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जीवनी को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए आशा करता हूँ कि महर्षि के जीवन एवं व्यक्तित्व के मूल्यांकन में विद्वानों एवं शोध-कर्ताओं को इससे प्रभूत सहायता मिलेगी।

दयानन्द आश्रम
अजमेर
श्रावणी पूर्णिमा, २०३१ वि०

विदुषां वशंवदः
भवानीलाल भारतीय
एम० ए० पी०, एच० डी०

प्रकाशकीय

सर्वप्रथम मैंने 'परोपकारी' पत्रिका में इस पुस्तक के विषय में पढ़ा। जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं इसका अध्ययन करूं। पुस्तक यहाँ यहाँ अनुपलब्ध थी अतः कुछ कालान्तर में जब डा० भवानीलाल जी भारतीय से मेरा सम्पर्क हुआ तो मैंने अपनी अभिलाषा को उनके सामने रखा। उन्होंने इस पुस्तक की प्रतिलिपि बड़े परिश्रम से तैयार की। ऋषि के ही जीवन काल में एकत्रित वृत्तान्तों के विशेष महत्त्व के देखते हुए पुस्तक की सुरक्षा का ध्यान आया। यह जीवन चरित्र तो सुरक्षित ही रहना चाहिए यह भावना उत्पन्न हुई। अतः श्री डाँ. भवानीलाल जी भारतीय से इसके सम्पादनार्थ प्रार्थना की जिसको उन्होंने बड़े परिश्रम व योग्यता से सम्पादित किया। जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

पांच हजार वर्ष के बाद एक ऋषि का पृथिवी पर जन्म हुआ जिसने मानव मात्र को सत्य का मार्ग बताया। ऐसे ऋषि की अमर जीवन गाथा की एक-एक घटना एक विशेष महत्त्व रखती है और मानव मात्र के लिये एक आदर्श उपस्थित करती है। महर्षि ने इस अन्धकारमय युग में किस प्रकार सत्यार्थ के फैलाने में दिग्विजय प्राप्त की इसका आभास इस पुस्तक में पाठकों को भलीभांति हो जाएगा। जिस प्रकार राम का सच्चा चरित्र मूल रूप से वाल्मीकि रामायण में ही मिलता है इसी प्रकार ऋषि जीवन के मूल ग्रन्थों में यह पुस्तक अपना विशेष महत्त्व रखती है।

आर्य समाज स्थापना शताब्दी के उपलक्ष्य के शुभावसर पर उपहार रूप में यह जीवन चरित्र प्रस्तुत है। आशा है ऋषि प्रेमी इसका समादर करेंगे।

ऋषि चरणों का अनुचर
दीपचन्द आर्य
प्रधान, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

कमला नगर, दिल्ली-७
२५, अगस्त १९७४

पं० गोपाल राव हरि प्रणातांकर

(ले० डा० भवानीलाल भारतीय)

महर्षि दयानन्द की प्रथम जीवनी दयानन्द दिग्विजयार्क के लेखक पं० गोपाल राव हरि महाराष्ट्र निवासी थे। १८७२ ई० में ये स्कूलों के सब डिप्टी इन्सपैक्टर बन कर फर्रुखाबाद आये। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू भाषाओं का आपको अच्छा ज्ञान था, मराठी तो मातृभाषा ही थी। वि० सं० १९२५ में जब स्वामी दयानन्द फर्रुखाबाद आये तो पं० गोपाल राव से उनका साक्षात्कार हुआ। स्वामी जी के उपदेशों से प्रभावित होकर आपने वैदिक धर्म की दीक्षा ली और फर्रुखाबाद में आर्यसमाज की स्थापना (१२ जुलाई, १८७९ ई०) में सहयोग दिया। १ अक्टूबर, १८७९ को जब आर्यसमाज के अधिकारियों का निर्वाचन हुआ तो पं० गोपाल राव मन्त्री पद पर चुने गये। समाज संस्थापन के साथ ही साथ 'भारत सुदशा प्रवर्तक' नामक मासिक पत्र भी आर्यसमाज फर्रुखाबाद से प्रकाशित होने लगा। पं० गोपाल राव इसके प्रथम सम्पादक बने।

२५ मई, १८८० को स्वामी जी की विद्यमानता में आर्यसमाज फर्रुखाबाद की अन्तरंग सभा की बैठक हुई। किन्हीं कारणों से इस सभा में आर्यसमाज के मन्त्री पद से हरि जी को हराकर लाला कालीचरण जी को इस पद पर नियुक्त किया गया। उस समय पं० गोपाल राव स्कूलों के निरीक्षण हेतु बाहर गये थे। जब उन्हें अपने मन्त्री पद से पृथक् किये जाने का समाचार ज्ञात हुआ तो वे बड़े दुखी हुये और अपने प्रति किये गये इस अन्याय को देखकर आपने सामाजिक कार्यों के प्रति असहयोग का रुख अपना लिया। जब यह समाचार स्वामी जी को ज्ञात हुआ तो उन्होंने यह विचार रक्खा कि अन्तरंग सभा के कार्यों का औचित्यानौचित्य का विचार करने के लिए एक 'मीमांसक सभा' बनाई जानी चाहिये। तदनुसार आर्यसमाज फर्रुखाबाद में २८ जून, १८८० को 'मीमांसकोपसभा' गठित की गई और पं० गोपाल राव हरि उसके सभासद बनाये गये। इनके अतिरिक्त बाबू दुर्गाप्रसाद, लाल जगन्नाथ प्रसाद, सेठ निर्भयराम तथा लाला रामचरण अन्य चार सभासद भी थे। इस नियुक्ति की सूचना स्वयं स्वामी जी ने पं० गोपाल राव को अपने आषाढ़ कृष्ण ८ सं० १९३७ के पत्र द्वारा दी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाज के तत्कालीन अधिकारियों से आप की पटती नहीं बैठी। तब आपने आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुकूल

ही 'वैदिक समाज' नामक संस्था स्थापित की परन्तु कुछ समय पश्चात् वह कालकवलित हो गई। पाठशालाओं के निरीक्षण हेतु जाते समय भी आप धर्म प्रचार की भावना को विस्मृत नहीं होने देते थे। कालान्तर में सरकारी सेवा में रहते हुये भी आपने कांग्रेस का कार्य किया। उसके अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहे, १८८४ ई० में आपने सरकारी सेवा से अवकाश लिया तथा इन्दौर में रहने लगे। फर्रुखाबाद के इतिहास (पं गणेश प्रसाद शर्मा रचित) के अनुसार आपका देहान्त १९०० ई० के लगभग अनुमान किया जाता है। इनके विनायक राव और मुकुन्दराव नामक दो पुत्र थे। अपने ग्रन्थों के अन्त में निर्दिष्ट निम्न श्लोक में इन्होंने अपने पुत्रों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

विनायक मुकुन्दाख्यौ लक्ष्मी यौ यस्य द्वौ सुतौ ।।
मुद्रांकितं स कुरुते जानकी हरिजः कविः ।।

इनके द्वारा लिखे गये निम्न ग्रन्थों का उल्लेख निम्न प्रकार है—

१. **दयानन्द दिग्विजयार्क**—लेखक की यह सर्व प्रधान रचना है। इसके तीन भाग प्रकाशित हुए। प्रथम दो खण्ड १८८१ ई० में स्वामी जी के जीवन काल में ही छपे। तृतीत खण्ड १८८७ ई० (१९४४ वि०) में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में स्वामी जी के जीवन व्यक्तित्व तथा कृतित्व के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह किया गया है जिसका लाभ परवर्ती सभी जीवनीकारों ने उठाया है।

२. **पाखण्ड तिमिरनाशक पत्र चन्द्रिका**—१८७८ ई० में थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल हेनरी एस० आल्काट ने अमेरिका से स्वामी जी को पत्र भेजे थे तथा अपनी संस्था को आर्य समाज की शाखा बनाना स्वीकार किया था। कालान्तर में जब कर्नल आल्काट ने अपना मत परिवर्तित कर लिया तो पं० गोपाल राव ने उक्त आठ पत्रों का हिन्दी रूपान्तर उपर्युक्त नाम से प्रकाशित किया। इसका मूल्य डेढ़ आना था। यह पुस्तक हमें उपलब्ध नहीं हुई।

३. **तिमिरनाशक तृतीय खण्डसार**—राजा शिवप्रकाश सितारेहिन्द लिखित इतिहास तिमिरनाशक के तृतीय खण्ड का यह खण्डन है। इसका मूल्य दो आने था।

४. **प्रस्ताव रत्नाकर तथा ज्ञान सागर**—दोनों ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

५. **सुन्दरी सुधार**—नारी शिक्षा का यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ १९५१ वि० (१८९५ ई०) में गोधर्म प्रकाश मंत्रालय फर्रुखाबाद से छपा। इसका प्रारंभ लेखक के अनुसार चैत्र कृ० १२. मंगलवार १९५० वि० (३ अप्रैल, १८९४)

तथा समाप्ति श्रावण शुक्ला १० शनिवार १९५१ वि० (२१ अगस्त १८९५) है जो ग्रन्थ के आद्यन्त में लिखे श्लोकों से ज्ञात होता हैं।

दयानन्द दिग्विजयार्क के तृतीय खण्ड की समाप्ति पर लेखक ने 'मदीय वृत्तम्' शीर्षक आत्म वृत्तान्त लिखा है। इससे विदित होता है कि पं० गोपाल राव का कुल भागवत (वैष्णव) सम्प्रदाय का अनुयायी था। ये अपनी जीविका हेतु मथुरा में भी रहे। वहाँ उन्हें वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचलित नाना प्रकार की विकृतियों और अनाचारों को निकट से देखने का अवसर मिला। फलतः पं० गोपाल राव वैष्णव मत से विमुख हो गये। झांसी और इटावे में भी उन्होंने राजकीय बृत्ति के कारण काल-यापन किया। उस समय बम्बई के विष्णु बाबा ब्रह्मचारी कृत वेदोक्त धर्म प्रकाश नामक ग्रन्थ इन्हें प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ से उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान हुआ। पुनः १९२५ वि० में फर्रुखाबाद रहते समय स्वामी दयानन्द का सम्पर्क तो इनके जीवन और विचारों को आमूल-चूल परिवर्तित करने वाला सिद्ध हुआ।

पं० गोपाल राव हरि के इस जीवन सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण को संकलित करने में पं० गणेश प्रसाद शर्मा रचित फर्रुखाबाद के इतिहास से पर्याप्त सहायता मिली है।

विषयानुक्रमणिका

अथ श्रीमद्दयानन्द-दिग्विजयार्कीयः
प्रथमोऽङ्कः

प्रार्थना

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
ओं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।
ओं नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ।
नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि ॥
भद्रं नो आप वाताय नमः ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीजगदीश्वरोक्तिः

ओं सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥
ओं समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ २ ॥
ओं समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ३ ॥

ऋ० अ० ८ अ० व० ४९ । मंत्र २, ३, ४

ईश्वर की प्रार्थना और उक्ति का भाषार्थ आर्यगण, देवोक्त (वेदोक्त) मंगलाचरणादिक का आशय यह है कि सर्वान्तर्यामी श्री जगदीश्वर हम सब आर्यजनों को सदैव मंगलोन्मुख रक्खें ।

वह सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वात्मा, सच्चिदानन्द-स्वरूप हमारा सच्चा माता-पिता अवश्य अपने दयालु स्वभाव से हमारा वैसा ही

लालन-पालन, भरण-पोषण करेगा जैसा कि उस सर्वजनक का धर्म है। हम उस करुणासागर का जितना कुछ धन्यवाद और स्तुति करें, वह अतीव स्वल्प और अति तुच्छ है। तथापि निश्चय है कि वह अपने पुत्रों का बाल-भाषण सुन प्रसन्न ही होगा। हमारा धर्म है कि प्रतिक्षण, प्रतिसमय उसकी तरफ ध्यान रख उसको असंख्य अभिवादन करें और (संगच्छ-ध्वमित्यादि) मंत्रत्रयोक्त उसकी आज्ञा को बड़े आदर और सत्कार के साथ मानें। उक्त मन्त्रों का ठीक-ठीक सार यह है कि प्रत्येक मनुष्य और मनुष्य समाज आपस में एक मन, एक चित्त एक अन्तःकरण हो वर्तें। कभी कोई किसी से किसी प्रकार का छल-कपट और द्वेषभाव न करे और उसी मार्ग पर चले जो कि उसने हमको बताया और हमारे लिए बना रक्खा है।

अब देखना चाहिये कि अपनी क्या अवस्था है अर्थात् हम उस मार्ग पर चलते हैं वा नहीं; तो देश की सीमा तक यही सूझ पड़ेगा कि कहीं कोई अपने उस शुद्ध और परम पवित्र मार्ग पर नहीं चलता। कहो, कैसे कल्याण होय और मनचाहा सुख मिले ? देखो जैसे कोई कलकत्ते जाने वाला अपनी भूल वा किसी की बहकावट से पश्चिम की ओर चल कर कभी कलकत्ता नहीं पहुँच सकता बल्कि प्रतिपद उससे वह दूर हो जाता है। उसी प्रकार यहाँ भी समझो और साथ ही उसके यह भी जान लो कि जिस रीति वह कलकत्ता पहुँचेगा, उसी प्रकार हम भी चाहते सुख को अवश्य पा सकेंगे अन्यथा कदापि नहीं। हे प्रिय भारत निवासी, आप लोग थोड़ी दृष्टि देकर देखें कि जब हमारे पुरुष सत्य सनातन वैदिक धर्म पर चलते थे तब हमारा कैसा मान, गौरव और प्रतिष्ठा थी। सारे भूगोल में हमारा दर्प, आतंक छा रहा था और हमारी विद्या, बुद्धि, चतुराई, साहस और पौरुष सराहा जाता था। भला कोई कहे तो सही कि उन दिनों वह कौन ऐसा देश था जहाँ के लोग हमारा सम्मान नहीं करते थे, वा हमारे राजगणों का बल, तेज, प्रभाव, पराक्रम, वीर्य, शौर्य और प्रताप को याद कर नहीं थर्राते थे ? वा इनको बड़ा और अपना महाराजाधिराज नहीं जानते थे। वह कौन बड़े से बड़ा देश ऐसा था जहाँ के निवासी हमको धनाढ्य और अपने तईं निर्धन नहीं जानते थे ? वा वे लोग बिना यहाँ के धन के धनी हो गए वा अब होते हैं ? वह कौन देश है जहाँ वालों को इस देश की सहायता अपेक्षित न थी और बिना यहाँ की विद्या के कोई विद्वान्, बुद्धिमान् वा चतुर हो गये ? वह कौन देश है जहाँ यहाँ के शास्त्र, शस्त्रास्त्र, संगीत, चिकित्सा, शिल्प, पदार्थ विद्या और सुख-सौभाग्य आदि की प्रशंसा नहीं होती थी। वा और ठौर के

निवासी बिना हमारे सिखाये-पढ़ाये उन कामों में निपुण कहाये ? वह कौन देश है जहाँ हमारा व्यापार, वाणिज्य और व्यवहार न था ? वह कौन मुल्क है जहाँ यहाँ की रीति, प्रीति, ऐक्य और न्याय रीति सुप्रसिद्ध न थी ? सारांश सब देश-निवासी गुण-विषयों में हमारे ऋणी हैं, पर हम किसी के नहीं।

कहाँ तक लिखें, खूब जान लो कि संसार भर में कोई काम, गुण और विद्या ऐसी न थी जिसको हम नहीं जानते थे वा उसके लिये हम और देशवासियों के सदृश ललचाते थे। बहुतेरी बातें तो अब भी ऐसी हैं कि उनके लिये बिदेशीय जन सिर धर-धर पटकते पर नहीं पाते और वे सब यहाँ के लोगों के कर-तल थीं। इन्हीं कारणों से हमारा नाम आर्य (सर्व-श्रेष्ठ) और हमारे देश का नाम आर्यावर्त पड़ा। शोक कि उन महापुरुषों की सन्तान अब हिन्दू अर्थात् गुलाम, काफिर, बेईमान, बेवकूफ, गधे, पागल, अहमक, झूठे और उल्लू कहावें पर नेंक न शर्मावें और जो उनको चितावें वे नास्तिक और ईसाई ठहरें। हे दीनवत्सल, तू हमारी पुकार सुन और हमारे भाई समस्त भारतवासियों पर अनुकम्पा करके सुदृष्टि दे। हम अपने सत्य प्रेम से तुमको इसीलिये शतशः वरंच सहस्रशः प्रणाम करते और बारम्बार हाथ जोड़कर प्रार्थना भी करते हैं कि हे सत्यप्रिय भगवन् ! हम तोहि छोड़ किसकी शरण पकड़ें ? कौन ऐसा है जो हमको इस महा संकट से उबारे ? जब हम अपनी पूर्व और आधुनिक स्थिति को देखते हैं तो हमारा सचमुच हृदय विदीर्ण होता है। हे प्रणतपाल, तू ही ऐसा है जो राई से पहाड़ और सूखे से हरा-भरा कर दिखाता है। हे भक्तवत्सल, बहुत हो चुकी, अब मत उपेक्षा कर। हे करुणानिधान, हे अधमोद्धारक, हे दीनबंधो, तेरी ही अनुकूलता से हमारी डूबती नाव इस संकष्ट-सागर को तार सकती है। हे सर्वशक्तिमन्, अब शीघ्र अपने प्यारे भारत की ओर अपनी प्रेमसनी दृष्टि से निहार, जिससे फिर उसका सिर ऊपर को उठे। प्यारे भारत-वासियो, अपने देश का सब ऊँच-नीच आपके ध्यान में आ ही चुका होगा, अब कर्त्तव्य सोचना चाहिये। वह यह है कि जितने कुछ अपने असत् कर्म होवें वे सब धीरे-धीरे छोड़-छाड़ सत्-कर्मों में अपना तन-मन-धन लगाना चाहिये। परन्तु संसार की रीति है कि अपनी बुराई आपको नहीं सूझती। वह औरों पर छोड़ना चाहिये, अर्थात् जब कोई उनको दिखावे तब अवश्य उन पर अपना ध्यान धर कर सोचे कि वास्तव में यह कहना उनका ठीक है वा नहीं। जो विशेषों की दृष्टि से ठीक ठहर जाय, तो झटपट उनके

मिटाने में सन्नद्ध हो जावें। परन्तु यह बड़ा भारी काम है। किसी एक के बूते का रोग नहीं। प्रथम प्रजा का सुधार राजा के आधीन रहा। यदि वह अन्यमतीय होने के कारण हस्तक्षेप न करे तो उसका दूसरा उपाय यह है कि हम लोगों को खुद आप ही अपने नगर में एक सत्सभा बना लेनी चाहिये और उसमें ऐसे सभासद स्थापित किये जावें कि जो अपने मत के हों और उनको किसी प्रकार पक्षपात न छूता हो तथा उनकी प्रकृति निर्मल और पवित्र हो। सिवाय इसके वे विद्वान् भी होवें उनमें से एक जो सभा की समझ से विशेषज्ञ हो; वह उसका सभापति किया जाय। जब ऐसी सभा अपने यहाँ बन जाय तब उस नगर के सब आदमी उसकी आज्ञा में चलें और सर्वकाल उसके सहायक रहें और उसके नियमों पर चलें। इस रीति की बनी हुई सभाओं को भी चाहिये कि वे आपस में मित्रता रख परस्पर संशोधन का परामर्श करती रहें और जो अपने देश भर में निपुण, धर्मज्ञ और सच्चा देश-हितैषी विद्वान् कहीं होय, उसको अपना अधिष्ठाता बनावें और उसके अनुकूल चलें और उसके देशोपकारक कामों की तन-मन धन से सहायता भी करें। समय के राजा की भक्ति भी अच्छे प्रकार दर्शाई जावे क्योंकि सुखी वही प्रजा रहती है जिसको राजभक्ति करनी आती है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता-पुत्र का सा है। इसीलिये राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् पाले और सदैव उसके सब दुःख-द्वन्द्व मिटाता रहे। यही उसका परम धर्म है। जहाँ राजा और समाज दोनों होय उस नगर को मानो दोनों नेत्र हैं; न होय वह अन्धा, एक होय वह काणा है।

प्रिय बांधव, जो समाजों की रीति, प्रीति यहाँ जताई गई है उसको कोई नई न जाने। यह अपने सनातन वैदिक धर्म वालों की प्रणाली सदा से ही चली आई है। सत्य धर्म के छूटने से आज नई सी दीख पड़ती है। हमारे पूर्वकालिक राजाओं का मत जुदा न था। वे लोग इन समाजों की व्यवस्था ठीक-ठीक रखते थे। जो समाजीय नियमों के विपरीत पांव धरता था; तुरन्त यथोचित राजदण्ड पाता था। राजा प्रजा की धर्मैक्यता न होने से किसी प्रकार की हानि होगी। आशा है कि चतुर समाज उसको न होने देंगे परन्तु होना समाजों का सब ठौर अत्यावश्यक है अन्यथा देश की बड़ी हानि ही रहेगी क्योंकि ऐक्यता, जो देशोन्नति की जड़ है, वह बिना समाज किसी प्रकार नहीं ठहर सकती। प्रत्यक्ष देख लो कि बिना एका हम कौड़ी के तीन हैं।

धन्य परमेश्वर, जिसने इस भारी आपत्तिकाल में हमारी सुध ली।

अर्थात् श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज से महात्मा को वेदों के उद्धारार्थ निर्माण किया। हम इनको जितना धन्यवाद दें वह थोड़ा है। आगे इनके जीवन-चरित्रादिक का विस्तार लिखा है उसको अवलोकन कर कौन ऐसा पाषाण-हृदय होगा जिसको इनके अपूर्व परिश्रमों को देख करुणा न उपजेगी या उसका इन पर विश्वास न होगा ?

इति श्रीमत्परम-हंस-परिव्राजकाचार्य-स्वामि-दयानन्द-सरस्वती। दिग्विजयार्कीय-प्रथमांके परमेश्वरप्रार्थनोक्तिविवर्णनं नाम प्रथमो मयूखः॥१॥

द्वितीयो मयूखः

श्री स्वामी जी महाराज का जीवन चरित्र

विदित हो कि श्री स्वामी जी महाराज औदीच्य नामी गुजराती ब्राह्मण के श्रेष्ठ कुल में विक्रमी संवत् १८८१ में पैदा हुए। मुल्क काठिया-वाड़ में राजा मौरवी के राज्य में इनकी जन्मभूमि विख्यात है। पाँचवें वर्ष इनका विद्याभ्यास और आठवें वर्ष उपनयन (जनेऊ) हुआ। उस समय तक ये बहुत-कुछ पढ़ चुके थे। जनेऊ हुये पीछे वेदारम्भ किया। पिता इनके शैव थे। उन्होंने उसी धर्म पर बहुत दिन तक इनको चलाया और भी विशेष चलाना चाहते थे, परन्तु जब ये कुछ समझ में आये तो इनको मूर्तिपूजन में शंका होने लगी कि पाषाणादिक मूर्तियाँ जब कि अपने को चोर, चूहा, कुत्ता, बिल्ली आदि की उपाधि से नहीं बचा सकतीं तो क्योंकर सेवकों का भला कर सकती हैं! ऐसे बुद्धिहीन काम में अपना अमूल्य समय खोना वृथा है। ऐसा समझ उससे बच, अपना चित्त सर्वकाल पढ़ने ही में लगाया और दिनों-दिन विद्या-वृद्धि करते गये।

जिस समय इनकी अवस्था १६ वर्ष की थी इनसे छोटी बहिन और उससे छोटे दो इनके भाई थे। एक दिन अकस्मात् उक्त बहिन और थोड़े दिन पीछे इनके चाचा, जो कि इनसे अत्यन्त ही प्रीति रखते थे, कालवश हुये। उसी दम उनके वियोग और दुःख से इनके हृदय पर एक साथ ऐसा सत्य वैराग्य छाया कि जिससे सांसारिक समस्त विषयों से इनका चित्त बिलकुल हट गया। अहर्निश उसी चिंता में डूबे रहते थे कि किस रीति से बार-बार उनके जन्म-मरणादिक क्लेशों से बचूं। इसी हेतु आठों याम विद्वान् और महात्माओं के समागम में रहने लगे। बहुत-कुछ चाहते रहे कि माँ-बाप से आज्ञा ले काशी चले जावें और अपना अभीष्ट सिद्ध करें, परन्तु उनके दृढ़ बंधन से छुटकारा न हुआ। उनको भी इनका हृद्गत हाल इधर-उधर से मालूम हुआ और वे इनके पाँवों में बेड़ी डालने, अर्थात् विवाह

कर देने को उद्यत हुये। अवस्था भी इनकी २२ वर्ष की हो चुकी थी। देखा कि अब विवाह से बचना कठिन है, दोनों घर बड़ी धूम-धाम से विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं। झट चौकन्ने हो संवत् १९०३ में एक दिन सायंकाल को चुपचाप घर से लम्बे हुये। रात्रि भर में टेढ़ी-मेढ़ी राह पकड़-पकड़ा कर ३० मील की दूरी पर पहुँच गये और उसी प्रकार दिन-रात चाल बढ़ाते ही चले गये।

जहाँ जिसके मुख से किसी बड़े विद्वान् और सत्पुरुष को सुनते वहीं पहुँचते और ठहरते थे। मार्ग में भिखारी, ब्राह्मण व साधु मण्डली ने इनका धन और अलंकारादिक सद्गति होने का लोभ दे ठग लिया। जो कुछ कपड़ा व बर्त्तन बच रहा वह स्याही गाँव के ब्रह्मचारी ने इनको अपना चेला बनाकर ले लिया और इनको एक गेरुआ कुर्ता और हाथ में तूंबा दे छोड़ दिया। वहाँ से जब कि सिद्धपुर को 'जहाँ कतकी (कार्तिकी) का मेला जुड़ रहा था चले, रास्ते में एक इनका पहिचाना वैरागी उधर से आता मिला। वह इनका यह रूप देख पहले तो एक दम से विस्मित हुआ, फिर इनकी कार्रवाही को भला बुरा कह कर चला गया। जिस दिन ये घर से निकले, थोड़े ही देर बाद बहुत से सवार पियादे चारों तरफ ढूंढ़ते-ढांढ़ते रहे। उस वक्त तो किसी को कुछ पता न लगा, परन्तु थोड़े दिन बाद कुल हाल उक्त वैरागी ने इनके पिता जी से जा कहा। उसी वक्त वे बहुत से सिपाही व सवार संग ले मेले में पहुँचे और दिन रात ढूंढ़ते-ढांढ़ते एक दिन प्रातःकाल अचानक शिवालय पर, जहाँ और भी बहुत से ब्रह्मचारी और संन्यासी ठहरे थे, इनको जा पकड़ा। देखते ही लाल-ताते हो जो जी में आया वह इनसे कहा और इनका गेरुआ कुर्ता फाड़, तूंबा फेंक इनको अपने सिपाहियों की सख्त हवालात में कर दिया और कह दिया कि इस निर्मोही से एक मिनट को भी गाफिल न रहना।

हरचन्द इनके पिता जी को बहुत कुछ शान्त कर कर विश्वास दिखाया पर उनकी नजर बिलकुल नहीं बदली और वहीं रात्री हो गई। जिस वक्त इन्होंने पहरे वाले को गाफिल देखा, उसी वक्त परमेश्वर को याद कर फिर तूंबा ले चल दिये। बहुत दूर पहुँच एक बड़ी घनी बरी (बाड़ी) देख उसके लता-पत्तों में दम साध छुप रहे। इधर थोड़े ही देर बाद सवार सिपाहियों ने भी पीछा किया और वहाँ के बाग, जंगल, मकान, मंदिर आदि को भी बखूबी ढूंढ़ा पर इनको न देख पाया। वैसे ही दूसरी तरफ चले गये। वह दिन है और आज का दिन है कि उन बेचारे वृद्ध माता-पिता को इनका

ठीक-ठीक पता अभी तक नहीं लगा होगा। सायंकाल को वे उस बरी से उतर वैसे ही भूखे-प्यासे गिरते-पड़ते अप्रसिद्ध मार्ग पकड़ बहुत दूर-दराज निकल गये। कई वर्षों तक प्रथम दक्षिण और पश्चिम, उत्तर और मध्य आदि देशों में घूमते-घामते रहे। अर्थात् भरत खण्ड के चारों दिशाओं में जहाँ जिस मेला, सभा, नगर, तीर्थ, क्षेत्र, विकट जंगल, पहाड़ों और नर्मदा आदि नदियों के किनारे किसी भारी विद्वान् ब्रह्मचारी, संन्यासी, योगी वा तपस्वी को ये सुनते थे, उसी दम वहाँ पहुँच कर उससे मिलते थे। जिसको आप अपने से बढ़ कर जिस विद्या और गुण में देखते थे वही गुण उससे बखूबी दिल लगा कर अर्थात् उसके हृदय में पैठ बखूबी सीख पढ़ लेते थे। जब कि इनने ब्रह्मचर्य आश्रम में देखा कि पाकक्रियादिक कर्मों में बहुत समय खराब जाता है, तब इच्छा हुई कि संन्यास लेवें जिससे संन्यासी होने पर विद्याभ्यास ही को मिले। दूसरा हेतु यह भी था कि संन्यासी होने पर मां-बाप के भी काम के न रहेंगे, नाम भी बदल जायगा, परन्तु गुरु भी अब वैसे ही मिलें जैसे कि ज्ञानवान् को चाहिये। ऐसी मार्ग प्रतीक्षा में थे, इतने में सुना कि चांडूला कल्याणी (चाणोद कल्याणी) के पास किसी जंगल में कोई बड़े भारी विद्वान् पूर्णानन्द सरस्वती नाम के महाराष्ट्र संन्यासी कई एक अच्छे-अच्छे ब्रह्मचारी साथ ले आ उतरे हैं। वे शंकराचार्य के (शृंगेरी) मठ से आये हैं और द्वारिका को जाते हैं। आप भी अपने परम मित्र एक विद्वान् महाराष्ट्र ब्रह्मचारी को साथ ले वहाँ पहुँचे। देखा कि स्वामी जी महाराज ब्रह्मविद्या में बहुत ही निपुण हैं। तब उनसे इनने वह समस्त विद्या उनके पास रह कर पढ़ा। धीरे-धीरे संन्यास भी लिया परन्तु बड़ी सिफारिश और मिन्नत व खुशामद से यह संन्यास हाथ पड़ा, क्योंकि इनकी अवस्था चढ़ती हुई थी। किसी प्रकार काल चतुर्थ आश्रम का न था। इसलिये जब स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारिका की ओर पधारे, पीछे ये फिर उक्त रीति से जहाँ-तहाँ विचरते रहे। इस यात्रा में बहुत अच्छे-अच्छे महात्मा लोग इनको मिले। उनमें से व्याकरण में चित्तौड़ के कृष्णशास्त्री और वेदान्तशास्त्र में चेतन मठ के संन्यासी ब्रह्मानन्द जी और बहुत सी पदार्थ विद्याओं में पारंगत परमहंस परमानन्द व सच्चिदानन्द जी और योग विद्या में स्वामी योगानन्द जी और योगाभ्यास में शिवानन्दगिरि वा ज्वालानन्दपुरी और आबू पहाड़ की भवानी गिरी नामक चोटी पर के योगिराजों और हिमालय में केदार घाट के पहाड़ी पर के गंगागिरि नामक साधु की स्वामी जी महाराज

ने अत्यन्त ही प्रशंसा की है और इनको बहुत विध धन्यवाद भी दिया है और लिखा है कि मैं इन सत्पुरुषों के सहयोग से अतीव कृत-कृत्य हुआ हूँ। समस्त शास्त्र और योग साधन की सब बारीकियाँ मैंने इन्हीं लोगों से पाईं।

संवत् १९११ में पहले-ही-पहल हरिद्वार के मेले की धूमधाम सुन वहाँ पहुँचे। वहाँ भी बड़े-बड़े योगेश्वरों से मिलाप और वार्तालाप हुए। फिर बहुत काल तक चंडी और हृषीकेश आदि हिमालय के स्थानों में योगाभ्यास और तपस्या करते रहे और अगस्त्य मुनि की समाधि, शिवपुरी पहाड़, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, भीमगुफा, बद्रीनारायण, त्रियुगीनारायण, ओखीमठ, जोशीमठ, रुद्रप्रयाग, देवप्रयाग आदि बहुत से रम्य और सुहावने स्थानों में महात्मा लोगों को ढूंढ़ते रहे। कहीं-कहीं तो ऐसे-ऐसे विकट स्थानों में उनको सुन पहुँच जाते थे कि जहाँ किसी प्रकार किसी मनुष्य का काम, साहस और सामर्थ्य जाने का न था। उस यात्रा में इनका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। टेहरी, श्रीनगर आदि स्थलों में बहुत से राजपण्डितों को भी देखा। उनको उनकी मंत्र-तंत्र विद्या में खूब ही लज्जित किया। कहीं-कहीं बहुत से पाखण्डी संत महन्त भी मिले। उनका भी चरित्र खूब अच्छी प्रकार देखा। कोई-कोई लोग इनको अपना शिष्य बनाकर अपनी हजारों रुपयों की जमीन व जायदाद आदि का मालिक करना चाहते रहे, इनने सब को तुच्छा कर उनको साफ टका सा जवाब दिया।

सत्य है जो अपने घर की उससे कई गुनी बढ़ कर प्रतिष्ठा व हकूमत और सुख सौभाग्य को तृणवत् समझ लात मार चल दे, वह फिर क्यों कर ऐसी जगह उलझे। इनको तो विद्या और मोक्ष रत्न से काम था। उसी के लिये सर्वत्र हैरान व परेशान फिर कर इनने उसको भारी परिश्रम से करतल किया और अब अपने देश-निवासियों के हितार्थ अपना शेष जन्म बिताना उत्तम समझ रहे हैं। यही इनका संकल्प और परम उद्देश्य है कि जिस प्रकार हो, हमारे देश-निवासी फिर कर अपने पूर्व रूप को प्राप्त होवें।

आर्यगण, श्रीयुत का यह जीवन-चरित्र बहुत सूक्ष्मता से वर्णन हुआ है। यदि किसी को विस्तार से देखना होय तो वह मद्रचित भारत सुदशा प्रवर्तक के अंक ६, ७ व ८ को देखे। अतः पर श्री जी महाराज कुछ काल हिमालय तटी में ही तपस्या करते रहे।

संवत् १९१६ के लगभग मथुरा में आये। वहाँ जगप्रसिद्ध परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज को वेद वेदांग पारंगत देख उनके समीप बहुकाल ठहर अपनी पूर्व-पठित विद्या उनसे फिर

कर विचारते रहे कुछ और भी पढ़ी। फिर जयपुर आदि नगरों में घूमते, घामते आगरे में आये, वहाँ कुछ संवत् ठहर कर अपना योगाभ्यास बढ़ाते रहे। उन्हीं दिनों से वहाँ के निवासी पं० सुन्दरलाल प्रधानाध्यक्ष डाकखाना आदि सत्पुरुष इनके जानकार और परिचारक हैं। आप लोग श्रीयुत् को इन दिनों समस्त सनातन विद्याओं में जैसा अद्वितीय देखते हो वैसा ही इनको योगीश्वर भी जानो—बहुत से अर्गलपुर (आगरा) निवासी जानते हैं कि श्री जी महाराज प्रतिदिन १८ घण्टा तक की समाधि लगाने लग गये थे और ऐसी-ऐसी उनकी विचित्र योग-क्रिया होती थीं कि जिनको देख लोग विस्मित हो जाते थे।

यों अभ्यास बल से जब साधन दशा से सिद्ध दशा पर आये तभी हरिद्वार जाकर वहाँ जो कुछ वस्त्र-पात्र पोथी-पत्रा पास था वह सब लुटा दिया और कौपीनावशिष्ट हो काशी-हरिद्वार के बीच गंगातीर कई वर्ष तक पर्यटन करते रहे जो कि गुण (२) गीता में परमहंसों के कहे हैं उन सबों से अलंकृत श्रीमान् संस्कृतभाषावलम्बी हो सबको बराबर सत्योपदेश करते थे। इनकी इच्छा थी कि पण्डितों के द्वारा देश भर में सत्य धर्म की प्रवृत्ति और मिथ्या धर्म की निवृत्ति शीघ्र कर देवें। इसी लिये ठौर-ठौर शास्त्रार्थ में सन्मुख हुये लोगों को परास्त भी किया, परन्तु इन पण्डितों का तो यह हाल कि "काजी जी बदलायल माकूल बहुतेरा हराते रहे लेकिन हमने हार न मानी पर न मानी" जब इनकी यह विचित्र लीला देखी कि ये लोग अनेक प्रकार की चालाकियाँ करते और झूठी खबरें भी खूब उड़ाते हैं तब श्री जी महाराज ने दूसरा यत्न यह निकाला कि धनिकों के द्वारा प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में पाठशाला स्थापित की जावें। तदनुसार ४ शाला फरुर्खाबाद, मिर्जापुर, कासगंज और छलेसर में स्थापित कर दीं, उनमें कहीं २०) कहीं ३०) रुपया मासिक के पढ़ाने वाले पण्डित नियुक्त किये गये और विद्यार्थियों को भी धनिक लोगों से अच्छे प्रकार अन्न-वस्त्र और पात्रादिक सर्वव्यय और पढ़ने-पढ़ाने की पुस्तकें दिलाईं। हेतु आपका यह था कि सद्ग्रन्थों को पढ़ बहुत से विद्यार्थी ऐसे विद्वान् होवें कि जो वेदों का अर्थ अच्छी प्रकार खुद आप ही लगाने लग जावें और औरों को भी बतावें व सुनावें और उनकी सहायता से सद्ग्रन्थों की पठन-पाठन प्रणाली समस्त भरतखण्ड में सुगमता से प्रचरित हो जाय और कपोल-कल्पित आधुनिक सब ग्रन्थों का प्रचार बंद हो, देश भर में फैला हुआ महा अन्धकार मिटे और मनुष्य मात्र को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तक के लाभ सुलभ हो जावें। एतदर्थ श्रीमान् ने पाठशालाओं

के बहुत समीचीन नियम भी बांधे और स्वयं आप भी अपनी प्रतिवार की आवृत्ति में प्रति पाठशालीय नगर में मास दो मास ठहर-ठहर कर उपस्थित दोषों की निवृत्ति करते रहे। परन्तु पढ़ाने-पढ़ने वाले तो वही पोप अर्थात् निन्द्य पण्डित और उनकी सन्तान। कहो, कैसे आशा फलित होती ?

अन्त को हड़ कर तीसरी युक्ति यह निकालनी पड़ी कि कुछ ग्रन्थ रच कर फैलाये जावें और सर्वत्र चल फिर कर प्रत्येक नगर में कुछ ठहर विज्ञापन द्वारा एकत्र हुए मनुष्यों को सदुपदेश सुनाया जावे जिससे सबको अपने देश दुर्दशा के सब कारण स्पष्ट विदित हो जावें और उनको देशोन्नति की कर्त्तव्यता सूझे और सर्वत्र आर्य समाज भी स्थापित हो जायं। परमात्मा की कृपा से यह आशा पूर्ण हुई। अर्थात् संवत् १९३२ से लेकर अब तक बम्बई, कलकत्ता, पश्चिमोत्तर देश, अवध, पंजाब, राजपूताना प्रान्तों के बहुत से प्रसिद्ध नगरों में आर्य समाज हो गये जिनकी कर्त्तव्यता के समाचार अब कहीं छुपे नहीं हैं। हाँ, कुछ उनके नियमादिकों का विस्तार प्रकाशित होना अवश्य (आवश्यक) है, वह आगे द्वितीय खण्ड में किया जावेगा।

प्रिय मित्रगण ! श्री जी महाराज केवल पाषाणादि मूर्तिपूजा वा पुराणों का खण्डन वेदों के द्वारा करते होयं ऐसा नहीं, किन्तु जितने जैनी, कुरानी और किरानी आदि मत इन दिनों प्रचरित हैं उन सबका खण्डन कर रहे हैं और उन्हीं के ग्रन्थों से उनकी असत्यता उन्हों के सम्मुख बराबर प्रकाशित कर देते हैं। इनके स्थापित किये समाज और व्याख्यानों में किसी के आने-जाने की रोक-टोक भी नहीं है। सब के सम्मुख पक्षपात छोड़ सिंहनाद से सर्वत्र खण्डन-मण्डनादि होता है। जब अगाड़ी यह ग्रन्थ देखोगे और कुछ सोचोगे तो अवश्य जान जाओगे कि निस्सन्देह परमात्मा की हम भरतखण्ड निवासी मनुष्यों पर बड़ी भारी कृपा है जिससे उसने हमारे देश में एक ऐसे महत्मा का निर्माण किया कि जिनकी विद्या और बुद्धि के आगे सबकी बुद्धि मलिन पड़ गई।

आर्यवृन्द ! हजारों वर्ष के पीछे परमेश्वर ने इनके द्वारा डूबे हुये वैदिक धर्म को फिर कर प्रदीप किया यद्यपि बीच में ऐसे श्रीमान् शंकराचार्य भी हुये परन्तु उनका प्रताप भूगोल भर पर प्रकाशित नहीं हुआ और न जब जैनियों के सिवाय ऐसे कोई कट्टर विरोधी इस मत के थे। अब तो एशिया, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका भर के लोग इस मत की निंदा करने लग गये थे, वे अपना ईसाई मत इस देश में प्रचरित किया चाहते थे। श्रीमान् ने यहाँ बैठ उन सबको परास्त किया। अब कुछ और ही हवा है। नेक

चेतो, आंख खोल कर देखो, कानों की डाट काढ़ सुनो, श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज के जन्म से आर्यावर्त का वह दिन सम्मुख है कि घर-घर ढोलक बजे और गीत व बधाई गाये जावें।

इति श्रीमद्दिग्विजयार्कीयप्रथमाङ्के जीवनचरित्रन्नाम
द्वितीयो मयूखः ॥ २ ॥

तृतीयो मयूखः

शास्त्रार्थ हुगली

जो संवत् १९२९ में स्वामी दयानन्द सरस्वती और पं० ताराचरण के बीच हुआ था।

पण्डित ताराचरण ग्राम भाटपाड़ा के निवासी हैं जो कि हुगली के पार है परन्तु आजकल श्रीयुत काशिराज महाराज के निकट रहते हैं। उन दिनों में पण्डित जी अपने ग्राम में गये थे और वहाँ से कलकत्ते जाकर राजा जोतीन्द्र मोहन ठाकुर के मकान में ठहरे थे। इन दिनों में स्वामी जी भी कलकत्ते में थे। पण्डित ताराचरण ने राजा जोतीन्द्र मोहन ठाकुर और राजा सौरीन्द्र मोहन ठाकुर के पास तीन बार जा-जा के प्रतिज्ञा की थी कि हम आज स्वामी जी से अवश्य शास्त्रार्थ करेंगे। ऐसे ही आज-आज करके टालते तो रहे शास्त्रार्थ करने को आये एक दिन भी नहीं। इससे वहाँ के सब बुद्धिमान् लोगों ने इनको झूठा जान लिया। जब स्वामी जी कलकत्ते से हुगली आकर बाबू वृन्दावनचन्द्र मण्डल के बाग में ठहरे तो एक दिन वहाँ के रईसों ने एक सभा की और उसमें स्वामी जी से व्याख्यान दिलवाया। बहुत से लोग व्याख्यान सुनने को आये। स्वामी जी कह ही रहे थे कि इतने में पण्डित ताराचरण भी वहाँ आ पहुँचे। उनसे बाबू वृन्दावन चन्द्र आदि ने कहा कि आप भी सभा में आइये और जो इच्छा हो सो कहिये। पण्डित जी सभा में तो न आये परन्तु उस स्थान के ऊपर जाकर दूर से गरजने लगे। उस समय उनके सभा में न आने से और ऊपर-ही-ऊपर गरजने से सब लोगों को विदित हो गया कि बस पण्डित जी देखने और कहने मात्र को हैं, जानते कुछ भी नहीं। क्योंकि जो कुछ जानते होते तो सभा में आते हुये क्यों डरते? फिर जब रात के नौ बज गये तब सभा विसर्जन की गई।

दूसरे दिन बाबू वृन्दावनचन्द्र जी मण्डल ने स्वामी जी से कहा कि कल पण्डित तराचरण भी आये थे। स्वामी जी ने कहा कि फिर सभा में क्यों नहीं आये? बाबू जी ने कहा कि वे तो बड़ा अभिमान करते हैं। स्वामी जी ने कहा कि अभिमान करना पण्डितों का काम नहीं है, मूर्खों का

है। जो पण्डित होता है वह कभी अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करता। जो पण्डित जी अभिमान के समुद्र में ही डूबे जाते हैं तो उनको एक बार मेरे पास ले आइये। डूबने से बच जावें तो अच्छा है। तब बाबू वृन्दावनचन्द्र आदि ने पण्डित जी से कहा कि आप बाग में स्वामी जी के पास चलिये, और जैसे आपकी इच्छा हो शास्त्रार्थ कीजिये। आप कुछ चिंता न करें, स्वामी जी किसी से वैरभाव नहीं रखते। इस बात को सुनकर पण्डित जी ने कहा कि अच्छा हम चलेंगे। मंगलवार को संध्या समय में शास्त्रार्थ के सुनने को बहुत से लोग इकठ्ठे हुये और पण्डित ताराचरण भी अपने ग्राम के लोगों को लेकर, कि जो उन्हीं के पक्ष के थे, वहाँ पहुँचे। तब पण्डित जी और स्वामी जी के बीच इस प्रकार से वार्ता होने लगी :

पण्डित जी—हम प्रतिमा पूजन स्थापन करने का पक्ष लेते हैं।

स्वामी जी—आपकी जो इच्छा हो सो लीजिये, परन्तु मैं तो इसका वेद-विरुद्ध होने से सर्वथा खण्डन ही करूँगा।

पण्डित जी—इस शास्त्रार्थ में वाद होना ठीक है अथवा जल्प और वितण्डा ?

स्वामी जी—वाद ही होना ठीक है क्योंकि जल्प और वितण्डा पण्डितों को कदाचित् करना उचित नहीं और वाद भी वही जो गौतम ऋषि ने लिखा है।

पण्डित जी—अच्छा, वाद ही होगा।

उस समय यह भी प्रतिज्ञा की गई कि इस शास्त्रार्थ में चार वेदों, छः अंगों और ६ शास्त्रों का ही प्रमाण स्वीकार किया जावेगा, अन्य का नहीं। इस नियम को दोनों ने स्वीकार किया।

पण्डित जी—पातञ्जलिसूत्रम्—चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्क इति व्यासवचनम्। भाषार्थ—पतञ्जलि का सूत्र है कि चित्त विना स्थूल पदार्थ के स्थिर नहीं होता। इसलिए उपासना में स्थूल पदार्थ प्रतिमा का ग्रहण किया जाता है। यह व्यास जी का वचन है।

स्वामी जी—पतञ्जलि के शास्त्र में ऐसा सूत्र कहीं नहीं है। हाँ, इस प्रकार का तो है—'विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी इति।' अर्थात्, मन की स्थिति का कोई विषय होता है। सो इस सूत्र के व्याख्या में व्यास जी ने (नासिकाग्रे धारयेत् इत्यादि) अर्थात् नासिका के आगे के भाग में मन को स्थिर करना लिखा है। आपके भ्रष्ट पढ़ने से जाना

जाता है कि आपने योगशास्त्र नहीं देखा और आपने पहले तो कहा कि यह पतञ्जलि का सूत्र है और पश्चात् जो "इति व्यासवचनम्" कहा, सो तो व्यास जी ने योग शास्त्र के व्याख्यान में कहीं नहीं लिखा है। जो यह पतञ्जलि का सूत्र होता तो व्यासजी का वचन नहीं हो सकता। और जो व्यासजी का वचन मानो तो पतञ्जलि का सूत्र नहीं। इससे आपका कहना परस्पर-विरुद्ध हुआ, और यह वचन तो दोनों में से एक का भी नहीं है।

पण्डित जी—"स्वरूपसाक्षाद्वतीप्रज्ञा आभोगः स च स्थूलविषयत्वात् स्थूलः' इत्यादि। एक पदार्थ एक आँखों से देखने से बुद्धि में साक्षात् होता है और जो कि आँखों से स्थूल पदार्थ ही देखा जा सकता है। इसलिये उपासना का स्थूल विषय होने से प्रतिमा आती है।

स्वामी जी—आप प्रथम ही प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि इस शास्त्रार्थ में केवल वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रमाण दिया जावेगा, फिर आपने जो यह वाचस्पति का वचन कहा सो क्यों कहा? देखो, जब तक जाग्रत अवस्था रहती है तब तक दृष्टि में सब पदार्थ स्थूल रहते हैं। स्वप्नावस्था में कोई पदार्थ स्थूल नहीं रहता। फिर स्वप्न में आपके कथनानुसार किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होना चाहिये, सो तो वात नहीं है। और आप यह भी प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि हम जल्प और वितण्डा न करेंगे तो फिर आपका जाति-साधन से प्रतिमा का स्थापन करना कैसा? क्योंकि देखो, आपके यह कहने से कि स्थूल पदार्थ में ही मन स्थिर होता है, यह दोष आता है कि स्थूल पदार्थों में सब संसार आता है। क्या गधे-घोड़े, क्या वृक्ष-वनस्पति, क्या ईंट-पत्थर इत्यादि। बतलाइये कि आप किसका ध्यान करेंगे। कुछ प्रतिमा ही तो केवल स्थूल पदार्थ नहीं है, कि जो आप इसी का ग्रहण करते हैं।

पण्डित जी—"यदुक्तं भवता तेनैव प्रतिमापूजनमेव सिध्यत्येवेतस्याः स्थूलत्वात्।" अर्थात् आपके कहने से ही प्रतिमा-पूजन सिद्ध होता है, क्योंकि प्रतिमा स्थूल है।

स्वामी जी—आपने जो यहाँ 'एव' शब्द तीन बार कहा सो इससे जाना गया कि आपको संस्कृत का यथावत् बोध नहीं है। और आपको पाण्डित्य का अभिमान होने का भी यही कारण है। और लोकान्तरस्थ अर्थात् दूसरे लोक में रहने वाले से जो आप चतुर्भुज विष्णु को लेते हैं सो वे तो वैकुण्ठ में सुने जाते हैं, फिर उनकी उपासना अर्थात् समीप स्थिति में इस मनुष्य-लोक में आप लोग कैसे कर सकते हैं? कदाचित् नहीं। और जो

पाषाणादि की मूर्ति शिल्पी की रची हुई है सो विष्णु कैसे हो सकती है ? बड़े आश्चर्य की बात है !

पण्डित जी—"अथ स यदा पितृनावाहयति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते ।" इस वचन से लोकान्तरस्थ अर्थात् इस लोक में रहने वाले की भी उपासना आती है ।

स्वामी जी—यह वचन इस प्रकरण से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता, क्योंकि इससे उपासना नहीं आती । इसका अभिप्राय यह है कि जिस योगी को अणिमादिक सिद्धि हो गई है वह सिद्ध जिस-जिस लोक में जाने की इच्छा करता है, उस-उस लोक में उसी समय प्राप्त होता है । सो जब पितृ-लोक में जाने की इच्छा करता है, तब वहाँ जाके आनन्द करता है । आप जो यह कहते हैं कि मर कर उस लोक में जाता है वा पितरों की उपासना इस लोक में करता है सो ये दोनों बातें इस वचन से सिद्ध नहीं होतीं ।

पण्डित जी—'तन्मध्ये प्रतिमाऽपि वर्तते' इत्यादि । उपासना का जो स्थूल विषय कहा था, उसमें प्रतिमा भी आ गई । आप देख लीजिये कि हम वाद ही करेंगे, जल्प और वितण्डा कभी नहीं ।

स्वामी जी—आप जो बार-बार स्थूलत्व साधर्म्य से ही प्रतिमापूजन का स्थापन किया चाहते हैं, सो अपनी इस प्रतिज्ञा को, कि हम वाद ही करेंगे आप ही नाश करते हैं ।

पण्डित जी—प्रथमत: अस्माभि: यत् ।

स्वामी जी—आपका यह संस्कृत भ्रष्ट और असम्बद्ध है । क्योंकि इस प्रकार होना चाहिये था कि प्रथमतोऽस्माभिर्यत् ।

पण्डित जी—जिस बात का दृष्टान्त दिया जावे उसमें सब बातों का मिलना अवश्य (आवश्यक) नहीं है ।

स्वामी जी—मैंने कब ऐसा कहा है कि सब प्रकार दृष्टान्त मिलना ही चाहिये । आपने जो वचन कहा था, उसका तो एक अंश भी आपके पक्ष में नहीं मिलता था । इसलिये उसका कहना और उसके साथ ही आपका पक्ष भी सब व्यर्थ हो गया ।

पण्डित जी—'उपासनामात्रेव भ्रममूलम् ।' अर्थात् उपासना सब मिथ्या ही है ।

स्वामी जी—देखिये आपका प्रतिमा पूजन स्थापन करने का जो पक्ष था सो जब सिद्ध न हो सका तो आप ही उसका खण्डन करने लगे कि भ्रम-मूलं अर्थात् प्रतिमा पूजन मिथ्या ही है ।

जब पण्डित जी ने अपने मुख से यह निकाला कि 'उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्' तब श्री बाबू भूदेव मुकर्जी, श्री पं० हरिहर तर्क सिद्धान्त, श्री बाबू वृन्दावनचन्द्र इत्यादि सब लोग यह कह कर खड़े हो गये कि पण्डित जी आये थे तो इस घमण्ड से प्रतिज्ञा करके कि हम प्रतिमा पूजन स्थापन करेंगे, और यहाँ लगे उल्टा उसी का खण्डन करने। इससे पण्डित जी का यही आशय सूचित होता है कि—

घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

इसके पश्चात् स्वामी जी ने पण्डित जी से कहा कि मैं तो खण्डन करता ही हूँ परन्तु यहाँ तो आपके कहने ही से प्रतिमा-खण्डन हो गया। इस पर पण्डित जी कुछ न बोले, चुपचाप ऊपर के मकान में चलने लगे। तब स्वामी जी भी उधर को ही चले और सीढ़ियों पर पहुँच कर पण्डित जी का हाथ अपने हाथ में लिया और ऊपर चले आये। ऊपर पहुँच कर बाबू वृन्दावनचन्द्र आदि लोगों के सम्मुख स्वामी जी ने पण्डित जी से कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं? पण्डित जी बोले कि मैं तो काक भाषा का खण्डन करता हूँ और पाषाणादि मूर्ति पूजन भी मिथ्या ही जानता हूँ, परन्तु क्या करूँ। मैं जो सत्य-सत्य कहूँ तो मेरी जीविका चली जाय। अर्थात् काशिराज महाराज जो सुनें तो मुझको तुरन्त निकाल बाहर कर दें। उससे मैं सत्य-सत्य नहीं कह सकता हूँ जैसा कि आप कहते हैं। इति।

आर्यगण! पण्डित ताराचरण जी जो अपने असत्य भाषण का कारण अपना पेट दिखाते हैं सो बहुत ही ठीक है। यही हाल देश भर के पण्डित और पुजारी वैरागियों का जानो कि बेचारे पेट के मारे असत्य को सत्य ठहरा रहे हैं परन्तु नहीं मालूम कि इनको छोड़ बाकी रहे लोग किमर्थ अंधे-बहरे बन रहे हैं। यह वही राजपण्डित हैं जो प्रथम काशी के शास्त्रार्थ में अगुआ बन बोले थे।

काशी के शास्त्रार्थ की व्यवस्था

संवत् १९२६ मिती कार्तिक सुदी १२ मंगलवार को काशी में दुर्गाकुण्ड के पास आनन्द बाग में महाराज काशी-नरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को पहुँचे। उनसे स्वामी जी ने पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आये हैं वा नहीं? महाराज ने कहा कि

वेद पण्डितों के कण्ठस्थ हैं, पुस्तकों का क्या काम ? स्वामी जी ने कहा कि यह ठीक, परन्तु बिना पुस्तक पूर्वापर-प्रकरण का विचार ठीक-ठीक नहीं हो सकता। अस्तु ! कहिये कि किस विषय पर विचार होगा ? पण्डितों ने कहा कि मूर्तिपूजा मण्डन में। स्वामी जी ने कहा बहुत अच्छी बात है। जो पण्डित आप लोगों में मुख्य हो वही एक मुझसे वाद करे। तब रघुनाथ प्रसाद कोतवाल ने यह निश्चय ठहराया कि पण्डित चाहे जो कोई आपसे वाद करें परन्तु उसके बोलने के समय दूसरा पण्डित न बोले। इसके अनुसार राज-पण्डित ताराचरण जी सन्मुख हुये। उनसे स्वामी जी ने कहा कि पाषाणादि मूर्ति पूजने में जो कोई वैदिक प्रमाण हो वह कहिये। पण्डित जी ने कहा—वैदिक प्रमाण हो वा न हो परन्तु जो केवल एक वेदों ही का प्रमाण मानता है, अन्य ग्रन्थों को नहीं, उससे क्या कहना चाहिये ?

स्वामी जी ने कहा—प्रथम वेदों ही का विचार मुख्य है क्योंकि सबको वेदोक्त ही धर्म मान्य है और मनुस्मृति आदि वेदमूलक ग्रन्थ भी प्रमाण-योग्य हैं। परन्तु वेद-विरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध किसी ग्रन्थ का प्रमाण नहीं हो सकता। पण्डित जी बोले कि मनुस्मृति का वेदों में कहाँ मूल है ? तब स्वामी जी ने उनके मतानुसार सामवेद के ब्राह्मण में बताया। तिस पर उन पण्डित जी को हटा कर स्वामी विशुद्धानन्द जी बोले कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान प्रतिपाद्य प्रधान जगत् का कारण नहीं। व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है। इस पर विचार करना न चाहिए। तब विशुद्धानन्द जी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो। इस पर स्वामी जी ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में बात जा रहेगी, उससे वह न कह कर यह कहा कि जिसको कदाचित् कोई बात कण्ठ न हो, क्या वह पुस्तक देख कर नहीं कही जा सकती ? तब विशुद्धानन्द जी ने कहा यदि कण्ठस्थ नहीं तो क्यों काशी में शास्त्रार्थ करने को आये ?

इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या आपको सब कण्ठस्थ है ? विशुद्धानन्द जी ने कहा—हाँ, है। स्वामी जी ने कहा—अच्छा कहो, धर्म का क्या स्वरूप है ? विशुद्धानन्द जी ने कहा कि जो वेद प्रतिपाद्य फल सहित अर्थ है वही धर्म कहलाता है। स्वामी जी ने कहा—यह आपका संस्कृत है। यह प्रमाण नहीं हो सकता। कोई श्रुति वा स्मृति कहिये। विशुद्धानन्द जी ने कहा—'चोदनालक्षणार्थो धर्मः' यह जैमिनि का सूत्र है। स्वामी ने कहा—मैं आपसे श्रुति-स्मृति का प्रमाण चाहता हूँ। उनमें से एक को

भी न कह कर सूत्र क्यों कहते हो ? क्या इसी को कण्ठस्थ विद्या कहना चाहिये ? यह सुन विशुद्धानन्द जी जब चुप रह गये तब स्वामी जी ने कहा—अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा, अब धर्म के कितने लक्षण हैं यही कहिये। विशुद्धानन्द जी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है। स्वामी ने कहा—सो कौन सा ? उसको भी विशुद्धानन्द जी न कह सके।

तब स्वामी जी ने मनुस्मृति के अनुसार उनको धर्म के दस लक्षण सुनाकर कहा कि कहो आप एक ही लक्षण का धर्म कैसे कहते थे ? इस पर बाल शास्त्री ने कहा कि हमको सब धर्मशास्त्र कण्ठस्थ हैं। उनसे स्वामी जी ने अधर्म के लक्षण पूछे। सो वे न कह सके तब बहुत से पण्डितों ने एक साथ हल्ला करके स्वामी जी से पूछा कि वेद में कहीं प्रतिमा शब्द है वा नहीं ? स्वामी ने कहा कि आपके मतानुसार सामवेदीय ब्राह्मण में 'प्रतिमा हसन्तीत्यादि वचनों में प्रतिमा शब्द आया है। उस पर उन लोगों ने कहा कि जब प्रतिमा शब्द वेदों में है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं ? स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्ति-पूजन का प्रमाण नहीं हो सकता। प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये और फिर वह सब अद्भुत शान्ति प्रकरण उन लोगों को स्वामी जी ने कह सुनाया और समझाया भी तब वे सबके सब चुप हुए और उनके बदले कुछ बाल शास्त्री जी बोले। उनसे स्वामी जी ने कहा बताओ इस प्रकरण में विघ्न दिखाने वाले कौन हैं ? उनने कहा—इन्द्रियाँ। स्वामी जी ने कहा ये तो देखने वाली हैं, दिखाने वाली नहीं। अस्तु। अब कहिये 'स प्राचीं दिशमन्वावर्ततेथ' यहाँ स शब्द का वाच्यार्थ क्या है ?

बालशास्त्री जी ने तो कुछ न कहा परन्तु पं० शिवसहाय जी कुछ असंगत सा बोले। उन को स्वामी जी ने उत्तर दिया कि अच्छा जो आपने वह प्रकरण देखा है तो आप ही आगे आकर किसी मंत्र का अर्थ कहिये। बस वे भी अवाच्य हुए और फिर विशुद्धानन्द जी बोले कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ? स्वामी जी ने कहा ईश्वर से। उनने कहा किस ईश्वर से ? तब स्वामी जी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुत से हैं ? विशुद्धानन्द जी ने कहा कि है तो एक ही परन्तु किस प्रकार के लक्षण वाले ईश्वर से वेद प्रकाशित भये। स्वामी जी ने कहा सच्चिदानन्द लक्षण वाले से। तब विशुद्धानन्द जी बोले अच्छा, ईश्वर और वेदों में क्या सम्बन्ध है ? स्वामी जी ने कहा कि कार्य कारण भाव सम्बन्ध है। विशुद्धानन्द जी ने कहा कि जैसे मन

और सूर्य में ब्रह्म बुद्धि करके प्रत्येक उपासना कही है वैसे ही शालिग्रामादि का भी पूजन करना चाहिये। स्वामी जी ने कहा उसका तो प्रमाण सत्य ग्रन्थों में है। यदि इसका भी होवे तो कहीं दिखलाइये? तब विशुद्धानन्द जी मूक हुए और माधवाचार्य बोले कि 'उद्बुध्यस्वाग्ने' इस वेद मन्त्र में पूर्ति शब्द है। इससे पाषाणादि मूर्तिपूजन लेना चाहिये। स्वामी जी बोले कि वापी कूप तड़ाग और आराम का ग्रहण तो पूर्ति शब्द से हो सकता है, मूर्तिपूजन का नहीं। यदि शंका होय तो अपने मंत्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये। तब माधवाचार्य ने उसको छोड़कर पुराण शब्द पर शास्त्रार्थ उठाया।* उसको स्वामी जी ने सर्वत्र विशेषण सिद्ध कर दिखाया। यद्यपि माधवाचार्य के पक्ष को स्वामी विशुद्धानन्द जी व बालशास्त्री आदि बहुत से पण्डितों ने अनेक प्रमाणों से पुराण शब्द को विशेष्य सिद्ध करना चाहा; परन्तु न कर सके। अन्त को ऐन संध्या समय पर जब कि उस स्थान पर अच्छे प्रकार अक्षर नहीं सूझते थे, माधावाचार्य ने दो पत्रा निकाल कर सब पण्डितों के बीच में रखे और कहा देखो यहाँ यज्ञ के समाप्ति पर यजमान १० वें दिन पुराणों का पाठ सुने ऐसा लिखा है। बताओ, यहाँ पुराण किसका विशेषण है?

उस पर स्वामी जी ने कहा कि पढ़ कर पाठ सुनाओ तो कुछ कहा जावे सो पाठ किसी ने नहीं सुनाया और विशुद्धानन्द जी ने वे दोनों पत्रा स्वामी जी के हाथ में देकर कहा कि आप ही खुद पढ़ लीजिये। स्वामी जी को वे पत्रा हाथ में लिए अनुमान पाँच पल भी न होने पाये थे। ज्यों ही उनके उत्तर देने का समय देखा स्वामी विशुद्धानन्द जी 'हमको देर होती है' ऐसा कह कर खड़े हो गये। साथ ही उनके और भी सब लोग ताली बजा कर चल दिये। अब बुद्धिमान् लोग विचार करें कि ठीक हार किसकी हुई।

---

*वेदों में पुराण नाम है यह बात सिद्ध करने के लिए नीचे लिखे हुए प्रमाण दिखलाये गये थे, इनमें से कोई एक भी विशेष्य न ठहरा—

१. एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यानुव्याख्यानानीति।

२. ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति।

३. इतिहास-पुराणः पञ्चमो वेदानां वेद इत्यादि।

४. दशमे दिने यज्ञान्ते पुराणविद्या वेदः। इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्यादिति।

निर्बुद्धि और पक्षपाती और मिथ्या-आडम्बरियों के सिवाय कौन ऐसा होगा जो कि स्वामी जी का पराजय हुआ कहेगा।

उन्हीं दिनों की बात है हमको माह अगहन में मुकाम जौन्हरी, परगना एतमादपुर जिला आगरा में दो अच्छे विद्वान् संन्यासी एक कुए पर बैठे मिले। वे काशी से आये थे, मथुरा को जाते थे। उनके मुख से प्रथम इस शास्त्रार्थ का समाचार वहाँ मिला था, उनने स्पष्ट काशी वालों की हार बताई और उन की विद्या तथा बुद्धि और चाल चलन पर उन लोगों ने अत्यन्त ही शोक किया। पीछे से मुकाम फर्रुखाबाद में एक महाराष्ट्र परमहंस आत्मानन्द जी मिले जो खुद इस शास्त्रार्थ के समय ऐन स्वामी जी के निकट बैठे थे। उनने ठीक वैसा ही सब हाल कहा जैसा कि पुस्तक में शास्त्रार्थ लिखा है और स्वामी जी की जीत बताई और बहुत कुछ काशी वालों के कर्मों पर बारम्बार धिक्कारते थे। तत्पश्चात् प्रसिद्ध साहूकार लाला पन्नीलाल जी मिले। उनने भी सब हाल ऐसा ही कहा। वे खुद खास इसी बात की तहकीकात को फर्रुखाबाद से काशी गये थे। अनन्तर जब हमको काशी जाने का प्रसंग हुआ तो वहाँ भी हमारे बहुत से मिलापी और रिश्तेदारों ने स्वामी जी की अति प्रशंसा के साथ जीत और काशी वालों की हार बताई और इस शास्त्रार्थ का पुस्तक जो २॥ आना में जहाँ तहाँ आर्यसमाजों और वैदिक यन्त्रालय में मिलता है अच्छे प्रकार सब हाल स्पष्ट करता है।

देखो इतने नामी विद्वान् इस शास्त्रार्थ में मौजूद थे। किसी एक ने भी कोई एक भी मन्त्र चारों वेदों की संहिता में से निकाल कर ऐसा न दिखाया कि जिससे मूर्तिपूजा सिद्ध होती। 'प्रतिमा' और 'पुराण' शब्दों से कि जो ब्राह्मण ग्रन्थों से चुनकर लाये थे, जो मनोरथ सिद्ध किया चाहते थे, सो भी हाथ न आया। मुख्य अपना पक्ष छोड़कर और प्रकरण विरुद्ध बातें छेड़कर जीत चाही; वह भी न पाई। बीच शास्त्रार्थ में चिढ़-चिढ़ कर असभ्य वाक्य भी कहे कि जिससे स्वामी जी बिगड़ें और गड़ बड़ कर दें। यह भी न हुआ। अर्थात् जब कोई युक्ति काम न आई तब धूरी संध्या दो पत्रा स्वामी जी के हाथ दे ताली और कोलाहल शब्द से अपनी जीत जताय ज्यों त्यों प्रतिष्ठा ले कर आये। इतने पर भी संतोष किया होय सो भी नहीं। एक पुस्तक दयानन्द पराभूति नाम की संस्कृत में दूसरी दुर्जन मत मर्दन नाम की भाषा में बनाकर महाराज काशी नरेश के यन्त्रालय में छपवाई। जिनमें निरी मिथ्या बातें और स्वामी जी को ठौर-ठौर असंख्य

दुर्वचन लिखे हैं। कहो इसी को सभ्यता और विद्वत्ता कहते हैं? धन्य है फिर भी स्वामी जी महाराज को कि इतना सब सहन करके फिर भी उनका कल्याण चाहते हैं। जब से अब तक छ बार और काशी में गये और प्रति बार सब काशी में विज्ञापन लगाये कि जो अब भी कोई वैदिक प्रमाण ढूँढ़ पाया होय तो सन्मुख आओ और पण्डिताई दिखाओ, नहीं तो सदैव के लिए दुराग्रह छोड़ो और सत्य मार्ग पकड़कर अनुपम सुख लहो परन्तु मतिमन्द कब सुनते हैं सत्य कहा है कि विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।"

सुहृद्गण, आगे एक विज्ञापन की नकल लिखी है। वास्तव में वह संस्कृत में दिये हुए विज्ञापन का भाषानुवाद है। निश्चय है कि उसको देख आप लोग विशेष आनन्दित होंगे।

विज्ञापन की नकल

संवत् १९३६ मिती कार्तिक सुदी १४ गुरुवार के दिन श्रीयुत स्वामी जी महाराज ७वीं बार काशी पधारे। उस समय उनके विद्यार्थी पण्डित भीमसेन शर्मा ने यह विज्ञापन दिया—

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराजे विजयानगर के अधिपति का आनन्द बाग महमूद गंज के समीप है, उसमें निवास करते हैं। वे वेदमत का ग्रहण करके उससे विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किन्तु जो जो ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव और वेदोक्त सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा अपने आत्मा की पवित्रता और उत्तम विज्ञान से विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्तिपूजा जल और स्थल विशेष में पाप निवारण करने की शक्ति, व्यास मुनि आदि के नाम पर छल से प्रसिद्ध किये। नवीन व्यर्थ पुराण नामक आदि ब्रह्म-वैवर्तादि ग्रन्थ परमेश्वर के अवतार ईश्वर का पुत्र होके अपने विश्वासियों के पास क्षमा करके मुक्ति देने हारे का मानना, उपदेश के लिए अपने मित्र पैगम्बर को पृथिवी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना, जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव, शाक्त, वैष्णव, गणपत्यादि सम्प्रदाय हैं, इन सबका खण्डन करते हैं।

इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े। अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में समर्थ हो, वह स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों का स्थापन करे। इससे विरुद्ध मनुष्य कभी नहीं कर सकता। इस शास्त्रार्थ में वेद मध्यस्थ रहेंगे। वेदार्थ निश्चय के लिए जो ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्व मीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी प्रतिवादी उभय पक्ष वालों को माननीय होने के कारण माने जावेंगे। और जो उस सभा में सभासद हों वे भी पक्षपात रहित, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक-ठीक जानने सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखने वाले हों। इनसे विपरीत नहीं। दोनों पक्ष वाले जो कुछ कहें उसको शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें। वादी और प्रतिवादी अपने-अपने लेख के अन्त में अपने-अपने लेख पर स्वहस्ताक्षर से अपना-अपना नाम लिखें। तथा जो मुख्य सभासद हों वे भी दोनों के लेख पर हस्ताक्षर करें। उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दे दिया जाय और तीसरा सब सभा की सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिए अत्यन्त लज्जा की बात है क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है कि सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को करा के आप आनन्द में रहना, औरों को भी रखना। इति।

कहिये, आर्यगण, इस विज्ञापन में कैसा स्पष्ट लिख दिया है कि यदि अब भी काशी के विद्वान् लोग मेरे सन्मुख हो स्वधर्म प्रतिपादन अर्थात् सत्य और असत्य का निर्णय न करेंगे तो उनके लिए अत्यन्त लज्जा की बात होगी। ऐसा लेख देख सुनकर भी जो ये लोग उद्यत न हुए तो क्या समझा गया वा समझना चाहिए। इस विज्ञापन के पीछे काशी भर में भूचाल अर्थात् हाहाकार तो पड़ गया परन्तु किसी को कुछ कर्त्तव्य न सूझा तब श्री जी महाराज ने कुछ दिन मार्ग प्रतीक्षा करके दूसरा विज्ञापन इस आशय का दिया कि प्रथम विज्ञापन काशी के पण्डित मात्र पर था। इस कारण यदि बड़े पण्डितों ने उस पर ध्यान देना उचित न जाना हो क्योंकि शिष्टातिशिष्ट ऐसे निमंत्रण में जाने की अपनी कुछ अप्रतिष्ठा समझते

हैं। एतदर्थ काशी के सब पण्डितों में शिरोमणि श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी व पण्डित बालशास्त्री जी अब अपना पृथक् निमंत्रण इस द्वितीय विज्ञापन द्वारा समझ कर मेरे प्रथम विज्ञापन में लिखे नियमानुसार मुझसे शास्त्रार्थ करने को अवश्य और अतिशीघ्र सन्नद्ध हो जावें। शोक कि इस तीक्ष्ण लेख को भी किसी ने कान पर न रखा। स्वामी जी महाराज ने यह भी बात किसी के कहने व लिखने को नहीं छोड़ी कि काशी के विद्वान् शास्त्रार्थ के लिए आने ही को थे इतने में स्वामी जी भाग गये क्योंकि इनकी स्थिति उनकी मार्ग प्रतीक्षा में कुछ कम ६ मास बराबर वहीं रही। हाँ! जब श्रीमान् वहाँ से देशाटन को चले आये तब काशी वालों का कलंक धोने के लिये कुशाग्रबुद्धि राजा शिवप्रसाद साहब ने अवश्य कुछ उद्योग किया। अर्थात् प्रथम एक निवेदन नाम की किताब छपवा कर बहुधा सर्वत्र आर्यसमाजों में भेजी उसके उत्तर में श्री स्वामी जी महाराज ने एक भ्रमोच्छेदन नाम की पुस्तक मुद्रित कराके उनके पास भेज दी वह भी देखने योग्य है। इसलिए उसके अन्तिम चार पृष्ठों की नकल सबके अवलोकनार्थ यहाँ आगे लिखी जाती है। उसको भी सज्जन लोग विचारपूर्वक अवलोकन करें।

ओ३म् नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय।

विज्ञापनपत्रमिदम्

समस्तान्धार्मिकान्प्रतीदम्प्रत्याय्यते। यच्छ्री ताराचरणप्रकाशितं वाराणसीस्थविदुषां स्वामिभिः सह शास्त्रार्थकरणाभिप्रायसूचकं सभ्यविद्वल्लेखविरुद्धं पत्रमस्ति तद् दृष्ट्वाऽत्यन्तमाश्चर्यं प्रतिभाति नः। यद्यत्रत्योदयान्नुरुपानहान्निर्माताऽन्त्यजोऽपि विद्वदुपमां विभर्ति तर्हि हेलयाः पण्डिताः खलु कस्योपमां दधतीति नहि योग्ययोर्विदुषोः समागमेन विना कदापि सत्यासत्यव्यवहाराणां सिद्धान्तो भवितुमर्हति। तस्माद्भाविनि समागमे विशुद्धानन्द सरस्वती स्वामिनो वालशास्त्रिणो वा संवादङ्कर्तुं प्रवर्त्तेरन्नेतरः किन्न यदैतेऽत्र प्रवर्त्स्यन्ति तदा स्वामिनोऽप्युद्यताः सन्त्येवेत्यलमतिविस्तरेण॥

विद्वांसः सुविचारशीलसहिता धर्मोपकारे रताः।
दुष्टं कर्म विहाय सत्यशरणा नौकेव पारायते।
क्रूराः कामसिताः किमत्र समलास्स्वार्था अहो मानवाः।
विघ्नान् कस्य नरस्य नैव वितलान् कुर्य्युः सदा दूषिताः॥ १॥
ऋतुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे मार्गशीर्षसिते दले।
चतुर्दश्यां शनौ वारे पत्रमेतदलेलिखम्॥ २॥

सब काशीस्थ धार्मिक विद्वान् महाशयों पर प्रकट हो कि श्री तारा चरण शर्मा ने एक विज्ञापन पत्र छपवाया जिसका अभिप्राय यह है कि काशी निवासी विद्वज्जन स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा करते हैं। यह पत्र विश्वास करने योग्य तो है परन्तु ऐसा लेख सभ्य विद्वानों का नहीं होता। इसके देखने से हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि जब जूते गांठने और बनाने हारा चमार विद्वानों की उपमा को धारण करता है तो पण्डित लोग किसकी उपमा को धारण करेंगे। भला बक और हंस की समता कहीं सम्भव है? यदि यह बात एक मूर्ख से भी पूछी जावे तो वह भी दृढ़तापूर्वक कहेगा कि सत्यासत्य का सिद्धान्त विना पण्डितों के समागम के कदापि नहीं हो सकता। अब इस काशी में सर्वोत्तम पण्डित दो हैं। एक स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी दूसरे बाल शास्त्री जो इन दोनों महाशयों में से कोई एक भी यदि शास्त्रार्थ करना चाहे तो स्वामी जी भी सर्वथा उपस्थित हैं। सिवाय इन दोनों के दूसरों को विज्ञापन पत्र देना और लिखना सर्वथा निरर्थक है।

श्लोक की भाषा

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के मनुष्य हैं एक उत्तम, दूसरे निकृष्ट। उत्तम वे हैं जो कि विचारयुक्त, सुशील धर्म और उपकार करने में संतुष्ट, दुष्टकर्मों से दूर, सत्य के प्रेमी, नौका के समान अविद्यादि दोषों और कष्टों से लोगों को पार उतारने वाले विद्वान् हैं। वे अपना शान्ति, परोपकार और गम्भीरतादि को कभी नहीं छोड़ते और जो क्रूर कामी अविद्यादि मलयुक्त स्वार्थी, दूषित मनुष्य हैं। वे श्रेष्ठ मनुष्यों को बड़े-बड़े विघ्न सदा क्या नहीं करते हैं? यह बड़ा आश्चर्य है कि आप्त लोग असभ्य लोगों पर कृपा करके सदा उनका उपकार ही किया करते हैं परन्तु वे अपने दोषों से उपकार को अनुपकार ही माना करते हैं। इसलिए हम प्रार्थना करते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी कृपा से उन मनुष्यों को सब बुरे कामों से हटा कर सत्य मार्ग में सदा प्रवृत्त करें। संवत् १६३६ मि० मार्ग० शुक्ल १४ शनिवार

हस्ताक्षर : पं० भीमसेन शर्मा

[नकल पृष्ठ १६ से लेकर २२ तक पुस्तक भ्रमोच्छेदन]

इस किताब को देख फिर राजा साहिब ने दूसरा निवेदन[1] नाम की

१. इस दूसरे निवेदन का उत्तर अनुभ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक से दिया गया है।

किताब रच कर सर्वत्र आर्य समाजियों के पास भेजी। उसके देखने से बड़ी हंसी आती है। कहाँ स्वामी जी का वह प्रबल लेख, कहाँ इनकी ये सफाई की बातें। इस बार राजा साहिब ने अपनी पूर्व किताब के सम्मतिकार श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी का तो नाम नहीं लिया, पण्डित बालशास्त्री जी के पास जाना इस रीति से लिखा है कि निदान मैंने जब स्वामी जी महाराज की प्रबल इच्छा यही देखी कि एक बार पं० बाल शास्त्री जी से शास्त्रार्थ होवे। सज्जनों का धर्म ही है कि पराई आशा पूर्ति करने में जहाँ तक बने यत्न करें।[1] मैं शास्त्री जी महाराज के चरणों में पहुँचा और भ्रमोच्छेदन दिखलाया। आज्ञा की कि भला आपके एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से कुछ बना ही नहीं। उत्तर के बदले दुर्वचनों[2] की वृष्टि की। यदि काशी में पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी

---

१. इस लेख से राजा साहिब खुद सज्जन बन कर पं० बाल शास्त्री जी को असज्जन ठहराते हैं। क्योंकि उनने इनकी आशा पूरी नहीं की।

२. आर्य गण, यदि जगत् पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के यथार्थ लेख को राजा साहिब वा उनके तरफदार अथवा क्षुद्र सम्पादक लोग दुर्वचन वा दुर्वचन पुष्पाञ्जलि समझें और बतावें तो कुछ दोष नहीं। परन्तु पं० बालशास्त्री जी ऐसे विद्वान् यदि वैसा ही कहें तो अतीव विस्मय और शोक का विषय होगा। देखो, कितना भारी यह दोष है कि जो अब किसी प्रकार निवृत्त नहीं हो सकता। गंवार तक जानते हैं कि सच्ची बात अवश्य ही कड़वी होती है। शास्त्र में भी ऐसा ही कहा है कि "प्रियवक्ता भवति धूर्त जनः" अर्थात् मीठा बोलने वाला धूर्त ही होता है; न कोई सत्पुरुष। और भी सुनो—

सुलभा पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोतातिदुर्लभः॥

इस महाभारत के वचन का यह अर्थ है कि सदैव प्रिय बोलने वाले खुशामदी लोगों का लाभ सहज है परन्तु कडुआ और हितकारी वचनों का कहने वाला संसार में नहीं। वह भी होय तो उनकी वैसी बातों का सुनने वाला कहाँ? यह प्रत्यक्ष दृष्टान्त यहाँ फबता है। पर न मालूम कि ऐसे वचनों को इस प्रसंग पर शास्त्री जी क्यों भूल गये?

हों। उत्तर के स्थान में उन्हें वैसा ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलि का लाभ होगा।[1] इसके अतिरिक्त और कुछ सार उसमें से नहीं निकलेगा। सिवाय इसके सं० १९२६ में जो कुछ शास्त्रार्थ हुआ था उसी को उक्त स्वामी जी नहीं मानते तो आगे उनसे क्या आशा है? निदान, स्वामी जी महाराज से तो अब काशी के पण्डित लोग फिर शास्त्रार्थ करते नहीं दिखलाई देते किन्तु स्वामी जी महाराज यदि अपने किसी गुरु को आगे खड़ा करके शास्त्रार्थ करना चाहें तो क्या आश्चर्य है कि फिर भी यहाँ के पण्डित लोग बद्ध परिकर हो जावें।

बलिहारी है, पण्डित बाल शास्त्री जी महाराज के चतुराई भरे हुए इस उत्तर की। वाह! खूब ही निश्चिन्त हुए जन्म भर को। यदि स्वामी जी के गुरु विद्यमान होते तो निस्सन्देह शास्त्री जी महाराज को स्वामी जी महाराज के दादा गुरु का नाम लेना पड़ता। कहिये आर्यगण, उपरोक्त (उपर्युक्त) लेखों को अवलोकन किए पीछे कौन ऐसा न्यायाधीश होगा जो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को दिग्विजयी हुए नहीं कहेगा? क्योंकि भूगोल भर में विद्या का घर आर्यावर्त और आर्यावर्त में काशी और काशी भर के पण्डितों में स्वामी विशुद्धानन्द जी और श्रीयुत बाल शास्त्री जी समझे जाते हैं। तो बस सिद्ध हुआ कि इनको परास्त करने वाला अवश्य दिग्विजयी कहावेगा। सुहृद्गण! हार दो प्रकार की होती है। प्रथम यह कि लड़ कर परास्त हो जाय, दूसरी यह कि डरकर सम्मुख न आवे तो दोनों प्रकार की हार श्रीमान् स्वामी जी महाराज इनको दे चुके। प्रथम हार संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ से और दूसरी बारम्बार के विज्ञापन और भ्रमोच्छेदन के १० प्रश्नोत्तर और पण्डित बाल शास्त्री जी महाराज के दिए उत्तर द्वारा अच्छे प्रकार प्रसिद्ध है। प्यारे भारतवासियों, वेदों में लिखा है—

सत्यमेव जयते नानृतम्

अर्थ—कि सदैव सत्य ही कि जय होता है, कभी असत्य का नहीं। सो सब चमत्कार आप लोग यहाँ अपने नेत्रों से देख चुके कि श्री जी महाराज का मत सत्य है। इसीलिए उनका विजय और मिथ्यामत वालों

---

१. जब कि सं० १९२६ का शास्त्रार्थ साक्षी है तो कभी यह दूषण स्वामी जी पर नहीं आ सकता और वास्तव में दुर्वचनों का ही डर शास्त्री जी को था तो पक्के कागज पर इसकी शर्त (प्रतिज्ञा) लिखा लेने से दूर हो सकता था। सत्य तो यही है कि महाराज जी में साहस और सामर्थ्य स्वामी जी के सम्मुख बैठ शास्त्रार्थ करने का नहीं और लाभ इस शास्त्रार्थ से वे होते जो स्वामी जी ने ऊपर सातवें प्रश्नोत्तर में लिखे हैं।

का पराजय सर्वत्र सर्वकाल हुआ और होता ही रहेगा। एतदर्थ सब लोगों से बारम्बार यही प्रार्थना की जाती है कि जिस प्रकार हो सब लोग सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करने में पुरुषार्थ करें जिससे दोनों लोक बनें।

इति श्रीमद्दिग्विजयार्कीयप्रथमाङ्के पौराणिक मतखण्डनं नाम तृतीयो मयूखः ॥ ३ ॥

चतुर्थ मयूखः

जैनमतमिथ्यात्वप्रदर्शनम्

विदित हो कि श्रीयुत दिग्विजयी महाराज सर्वत्र अपने व्याख्यानों में जैनियों के मत का भी खण्डन बराबर करते हैं। परन्तु अब तक कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया कि उन लोगों ने कहीं सम्मुख बैठ शास्त्रार्थ किया हो। इस संवतसर में जैनियों के पुजारी लाला ठाकुरदास, नगर गुजरांवाला मुल्क पंजाब वाले ने कुछ छेड़-छाड़ की थी। उसका कुछ बृत्तान्त अनुष्टुप् प्रकार से सबको विदित होने के लिए यहाँ लिखा गया है और दो आर्य समाचार पत्र मेरठ का सार है।

इसी एक साल से हमारे एक जैनी भाई लाला ठाकुरदास जी आपे से बाहर हो गये हैं। अपना समय निरा बेमतलब तू तू मैं मैं में खोते हैं और दूसरों का भी उसका देखने सुनने से खराब कर रहे हैं। कभी तो सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास के लेख का सबूत तलब करते, कभी नालिश तौहीन मजहबी की धमकी देते, कभी अखबारों के द्वारा यह प्रकाशित करते हैं कि स्वामी दयानन्द जी रूपोश (गायब) हो गये। हम उन पर इस हफ्ते में अवश्य नालिश करेंगे।

पहिले तो हम लोग खामोश रहे। जब उनके अत्याचार से चुप बैठना और ही कुछ भाषित (भासित) होने लगा तब लाचार उत्तर देना ही पड़ा। वहाँ क्या था, वे यह समझते थे कि हमारी मत सम्बन्धी किताबें जब हमीं को बमुश्किल मिलती हैं तो स्वामी जी क्यों कर पावेंगे? आखिरकार मजबूर होकर अपना लिखा खुद काटेंगे। दूसरे यह भी जानते होंगे कि इस नाहक की तू तू मैं मैं से मेरा नाम भी मतहितैषियों में गिना जावेगा। इनका पहिला मनोरथ तो सिद्ध न हुआ, रहा दूसरा वह अच्छा न सही तो खैर, बुरे ही नाम से प्रसिद्ध हो गया। जब पहिले पत्र का उत्तर इनको मिला तो इधर से मुंह मोड़ दूसरा ही जोड़ तोड़ लड़ाया, अर्थात् अखबारों

पर दांत निकाले और उसी के साथ आनन्दलाल मंत्री आर्य समाज, मेरठ पर भी क्रोधित हुए और इश्तिहार इस मजमून का दिया कि स्वामी जी तो हमारी तौहीन मजहबी के कारण बमुजिब दफा २९५ ताजीरात हिंद अपराधी ठहर चुके, जो तुम और दूसरे समाजी लोग भी इस तहरीर में शरीक हों और इसको सच मानते हों तो तुम लोग भी उस अपराध में शामिल किये जाओगे। पहिले तो हमने इस पर भी चुप होना उचित जाना परन्तु फिर चंद बातों से अनुचित जान उनके प्रश्नों के उत्तर नीचे लिखे अनुसार दिये।

प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश में जो श्लोक लिखे हैं वे जैनियों के किन शास्त्र अथवा ग्रन्थ के हैं ?

उत्तर—यह सब श्लोक आप लोगों के बृहस्पति के मानने वाले चार्वाक मत के शास्त्र और ग्रन्थों के हैं। इसी प्रकार जो-जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है जान लो कि वह सब ठीक-ठीक है।

पहिली पत्री के उत्तर में ठाकुरदास आदि को लिख दिया गया था कि यदि आप जैन मत के सब शास्त्रों का ब्यौरा जानते होते तो सत्यार्थ-प्रकाश पर सन्देह न करते और आप लोगों के उत्तर में देर इस कारण हुई कि अगर कोई सत्पुरुषों की भाँति लिखता तो उत्तर तुरन्त दिया जाता। लुधियाना के सरावगियों ने मुनासिब तौर पर लिखा तो उत्तर भी तुरन्त दिया गया, वरन् यह भी लिख दिया कि सब प्रश्न एक ही बेर लिखो तो सब उत्तर एक साथ दे दिये जावें और स्वामी जी ने यह भी लिखा कि अगर चिट्ठी की जगह आमने-सामने बातें हो जावें तो बहुत ही उत्तम है। लेकिन उन लोगों ने भी इसके उत्तर में वही ठाकुरदास के प्रश्न लिख भेजे और आत्माराम जी ने समागम से इन्कार कर दिया। ठाकुरदास जी का यह हाल है कि उनके प्रथम ही पत्र में संस्कृत और भाषा में अनेक दोष थे। और प्रति पत्र में ऐसी बातें लिखते हैं कि जो सत्पुरुषों के योग्य नहीं। उनके यहाँ एक आत्माराम जी योग्य हैं। वे खुद लिखा-पढ़ी आदि कामों से बच कर न मालूम क्यों ठाकुरदास जी से ही स्वामी जी का सामना कराते हैं। यह बात सत्पुरुषों का कर्त्तव्य नहीं, अब भी समझें और अपने मत के किसी योग्य पण्डित को इसमें शामिल करें जिससे सत्यासत्य विचार हो जावे। इस प्रकार ठाकुरदास जी को लिखे पीछे आत्माराम जी से भी जो लिखा-पढ़ी हुई उसमें से हम एक पत्र का ठीक आशय आगे लिखते हैं—

पत्र श्री स्वामी जी का बनाम पण्डित आत्माराम जी

पण्डित आत्माराम जी नमस्ते !

पत्र आपका ४ नवम्बर का लिखा हुआ १० नवम्बर सन् १८८१ को संध्या समय मेरे पास पहुँचा। देख कर आनन्द हुआ। अब आपके प्रश्नों का उत्तर लिखता हूँ—

[ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन]

अखबार आफताब १२ फरवरी सन् १८८१ ई० में जो आखिरी नोटिस गुजरावांला की कौम जैनी की तरफ से छपा है उससे प्रकट हुआ कि वह पुराना झगड़ा जो उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के उस लेख पर जिसमें कि उन्होंने जैनियों के पुस्तक और उनके सिद्धान्त पर नुक्ताचीनी की अर्थात् दोष लगाये। एक छोटी बात का बड़ा भारी तूमार बांध के कोर्ट में फैसला उचित समझा है। देखिये, इन्होंने नोटिस का उत्तर जो ६ दिसम्बर को इसी अखबार में छापा था कुछ लिहाज न किया और शर (झगड़ा) बढ़ाने पर मुस्तैद रहे। मुकाम इन्साफ है कि जब दयानन्द सरस्वती जी ने इस कौम के सवालों का जवाब बतफसील सुफा व सतर लिखा फिर कौन सी बात बाकी रह गई। यह मुकदमा इस वजह का है कि स्वामी दयानन्द जी ने जो हमारे मजहब की नुक्ताचीनी की है वह गोया हमारी तौहीन मजहबी है। मगर हम कहते हैं कि जिस मजहब व मिल्लत पर खूब पक्की बहस की जावे वह एक तरह की पक्की नुक्ताचीनी है न तौहीन मजहबी है। हाँ, जो बनावटी दलील केवल कपोल कल्पित हो तो जरूर हो सकता है। आया यह कि जो किसी खास मजहब पर बहस करे वह तौहीन मजहबी इल्जाम का मुलजिम (दोषी) ठहर सकता है ! नहीं तो हरगिज नहीं।

बाज पाठक जन और दूसरे लोग जैनियों के विज्ञापनों से यह समझ सकते हैं कि स्वामी जी उनसे फैसला क्यों नहीं करते। यह ख्याल केवल उनको असली बात के न जानने के कारण है क्योंकि स्वामी जी ने सब पर जैनी मत की सत्यता और असत्यता प्रकट कर दी। बाज लोग कहते हैं कि जैनी कौम ऐसी वैसी नहीं जो जरा सी बात पर मुकद्दमा करे। पर इसकी कुछ और वजह होगी। यकीनन खास सबब यह है कि एक ही आदमी अपना नाम करने को यह जाल करता है और अपने तमाम मत वालों को इसमें शामिल करता है। गो कि बाकी तमाम मत वाले इसे बुरा ख्याल

करते हैं। अब हम सबसे कहते हैं कि बार-बार नालिश की धमकी न दें वरन् जो कहते हैं सो कर दिखावें और उसका नतीजा पावें।

स्वामी जी के द्वितीय पत्र का संक्षेप

[ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन पृ० सं० २६६]

जब स्वामी जी ने सब प्रश्नों के उत्तर जो आत्माराम ने ठाकुरदास के द्वारा प्रकट किये लिख दिये और साफ लिख दिया कि और पूछना होय तो सामने होकर पूछ लें। जब कि वे न सामने आते और न प्रश्नों के उत्तर मानते तो मालूम होता है कि अब कायल हो गये या आयन्दा हो जाने का खौफ करते हैं। अगर ऐसा न होता तो स्वामी जी की रूपोशी आदि के झूठे नोटिस न छपवाते इससे तो एक प्रकार की उन लोगों की बदनामी और हंसी होती है। जब स्वामी जी ने लिख दिया कि १७ नवम्बर सन् १८८० देहरादून और बाद उसके आगरा और आगरे में स्पीच देना प्रकट है तो कैसे रूपोशी का गुमान हो सकता है। और मेरठ से भी पता साफ-साफ लिख दिया लेकिन ठाकुरदास ने नोटिस न देहरादून भेजा न आगरा वरन् गुजरांवाला में भेजा, इससे जरा शर्माना चाहिये था न कि और भी धूल उड़ाना। पूज्य साहिब जो सामने होकर वार्ता नहीं कर सकते तो उनके पण्डित हर जगह मौजूद हैं। उनके द्वारा फैसला क्यों न कर लिया। अखबार आम और मित्रविलास में झूठी और निरी असत्य बातें उनकी तरफ से बहुत कुछ छपती हैं। वह उनकी कौम को बदनाम करती हैं, क्योंकि जो एक भी सारे कौम में बुरी बात करे तो सारी कौम बदनाम हो जाती है कि इस पर खुद ध्यान धरेंगे।

अखबार लाहौर १६ मार्च सन् १८८१ ई०

लो और सुनो

लाला ठाकुरदास ने एक इश्तहार के द्वारा अपना मन्शा नालिश तौहीन मजहबी का जाहिर किया और पूछा कि सब आर्य-समाज सत्यार्थ-प्रकाश के लेख को सत्य मानते हैं या नहीं। अगर मानते हों तो वह भी इस इलजाम में शरीक हैं। इससे ऐसा मालूम होता है कि यह सब आर्य-समाजों में भेजा गया। इसलिए सबकी इत्तिला के वास्ते यह छापा जाता है। प्रकट तो कि जब स्वामी जी यहीं थे तभी ठाकुरदास ने यह पूछा था कि सत्यार्थप्रकाश में जो जैनी मत की बातें लिखी हैं वह किस पुस्तक से लेकर लिखी हैं और जैनी व बौद्धों का एक होना कहाँ से साबित ? इसके

उत्तर भेजे गये और लिखा कि कोई वक्त नियत करके बात कर लो। उसका आखिरी जवाब यह दिया कि हम नालिश करेंगे। खैर यह उनकी मर्जी। हमारे समाज से यह जवाब मिला कि हम लोग सब स्वामी जी के हर तरह से साथी हैं और उनके कहे की पुष्टि भी अपनी शक्ति के अनुसार करेंगे। सत्यार्थप्रकाश के पृ० २९६ से पृ० ४०७ तक जो देखेगा साफ लाला साहब की भूल जान लेगा, इससे प्रकट है कि उन्होंने उसको बुद्धिमानी के सूर्य के सामने तो नहीं परन्तु मत पक्ष के अंधेरे में पड़कर देखा। कुसूर माफ, लाला साहब, सत्यार्थप्रकाश के समझने के अलावा कानून भी खूब समझ सकते हैं। देखिये जिसमें बहुत सजा इस बारे में लिखी है, उसी को ढूंढ़ लिया। नहीं मालूम कि लाला साहब ने हम लोगों को दोषी ठहराने से अपना क्या मनोरथ सिद्ध समझा? वे क्या यह नहीं जानते कि अगर कोई किसी को सच्चा समझे और इससे उसकी झूठी तहरीर पर (कि जिससे किसी को खिलाफ कानून कुछ रंज पहुँचा हो) सच्चा खयाल करे तो वह दोषी नहीं हो सकता हो। शायद इंगलिश ला अर्थात् सरकारी कानून का कोई पुराना मसला हो जिससे हम पर भी कानून का असर पहुँचे या कोई जैन मत की राजनीति।

आश्चर्य की बात कि नालिश किया चाहते हैं तिस पर भी स्वामी जी की तौहीन करते हैं हाँ शायद वह अपने आपको कानूनी असर से बाहर समझते हों। खैर वह जाने हम अपनी सभा के नियमानुसार चिताते हैं।

देखिये हमको दोषी ठहराने में किसकी खता है। अगर स्वामी जी की तहरीर गलत समझते होते तो क्या उस पर ऊलजलूल लिखना भले आदमियों का काम था? खैर जो जैन मत बौद्ध की शाखा केवल ठाकुरदास के कहने से नहीं तो न सही। हमने तो राजा शिवप्रसाद साहब सी० एस० आई० की इतिहास तिमिरनाशक तृतीय खण्ड पृ० ८ के लेख का जो खुद जैन मत के हैं और चंद दलीलों से मान लिया है जो झूठ हो तो कोई खण्डन लिखे। अगर ठीक होगा तो कोई न कह सकेगा। अगर डरा कर झूठ बुलवाना चाहे तो यह जीते जी होता नहीं क्योंकि सच बोलना हमारा प्रथम धर्म है, और यों तो हम खुद अपनी खाकसारी का इकरार इस शेर के मुआफिक करते हैं—

जबां खोलोगे क्या हम मुद्दई बदशापुरी से।
कि हमने खाक भर दी उनके मुंह से खाक सारी से।

सारांश—बे मतलब शेखी लाला साहब की तरह मारना हमसे नहीं हो सकता। जिसको जो अच्छा लगे करे, हम तो अपने देश वालों को झूठों के झूठे दोष से जानकर करते हैं, अगर अब भी न मानोगे तो पछताओगे।

द० आनन्दलाल मंत्री, आर्यसमाज, मेरठ।

राजधानी मजूदा जिला अजमेर—में एक पाखण्डी ढोंढिये नाम की जाति जो मुख पर कपड़ा डाले रहती है बहुत बसती है। उन लोगों ने अपने दो पुजारी श्री स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को बुलाये। वे सात दिन तक टाल बटाल करते रहे राम बाग की तरफ का मार्ग छोड़ दिया। आठवें दिन स्वामी जी ने दूसरे मार्ग पर जा घेरा। उतने में कई सवारों समेत महाराजे बहादुरसिंह भी आ गये और कहा कि आज जैन मत पर निर्णय कर लो। पीछे से बहुत बका करते हो। उसी दिन स्वामी जी खण्डन करने लगे तब तो बहुत घबड़ाये और कहा कि ऐसे हम नहीं बोलते। तुम भी मुख पर कपड़ा बांध लो, तब शास्त्रार्थ करेंगे। स्वामी जी ने कहा कि उसके लाभ सिद्ध करो तो बांध लेंगे। निदान, कुछ न कह कर प्राण ले भागे, पीछे से स्वामी जी ने बहुत खण्डन लिख भेजे। उन्होंने ३२ ग्रन्थों का नाम लिखकर लिखा कि इनमें हमारे मत का विवरण लिखा है देख लीजिये। उन्होंने जाना न स्वामी जी को यह ग्रन्थ मिलेंगे न अगाड़ी बात चलेगी। स्वामी जी ने उसी दम कई पुस्तकें राजा साहब के पास भेज कर कहला भेजा कि आप उनको सामने बुलाकर उनसे लाभ देखिये। तब से उनके छक्के छूट गये। घर से बाहर नहीं निकलते। उसका असर और उस मत का मिथ्यात्व उस मत वालों पर ऐसा प्रकाशित हुआ कि जब से बहुत लोग स्वामी जी के व्याख्यानों में आने लगे और आते ही जाते हैं। ईश्वर सदैव सत्य धर्म की जय करे।

इति श्रीमद्दिग्विजयार्कीयप्रथमाङ्के जैनमतमिथ्यात्वविवरणनाम चतुर्थो मयूखः ॥ ४ ॥

पञ्चमो मयूखः

यावनीमतखण्डनम्

नगर जालंधर के मुसलमानों के साथ श्री स्वामी जी महाराज का शास्त्रार्थ—

फकीर मुहम्मद मीर जामू (मिर्जा ?) जालंधरी सभ्यगणों को इस रिसाले के तैयार होने के कारणों से आगाह करता है कि ता० १३ सितम्बर

१८७७ को दयानन्द सरस्वती जी साहब जालंधर में भी बतौर दौरे के तशरीफ लाये और जनाब फैजमाब सरदार बावकार विक्रमसिंह साहब अहलूवालिया की कोठी में फरोकश होकर वेद के मुताबिक, जिसको वह कलाम इलाही तसब्बुर करते हैं, कथा सुनाने लगे कि फकीर ने सरदार साहब समदह की खिदमत आलिया में दरखास्त की कि स्वामी साहब और मौलवी अहमद हुसैन की गुफ्तगू की किसी माकूली मसले में सुननी चाहिए। जनाब समदह ने पसन्द किया और स्वामी जी ने भी कुबूल करके २४ सितम्बर के ७ बजे सुबह का करार दिया। मौलवी साहब वक्त मुअय्यन हर खास व आम हिन्दू व मुसलमान शहर के आ गये। मुबाहसा अर्थात् शास्त्रार्थ हस्ब ख्वाहिश मौलवी साहब मसले तनासुख और स्वामी जी की मर्जी के मुताबिक मसले करामात मुकर्रर हुआ। यानी स्वामी जी तनसुख (पुनर्जन्म) को साबित करें और मौलवी साहब उसकी तरदीद (खण्डन) करें। और मौलवी साहिब अहल अल्लाह करामात साबित करें और स्वामी साहिब उसकी तरदीद (खण्डन) करें।

गुफ्तगू शुरू होने से यह बात भी करार पाई कि तुर्फैन (दोनों तरफ) से कोई शख्स खिलाफ तहजीब (सभ्यता) गुफ्तगू न करेगा। और स्वामी जी की तरफ से यह भी प्रकाशित हुआ कि कोई साहब इस गुफ्तगू खतम होने पर हारजीत तसब्बुर न करें। अगर करेगा तो मुतअस्सिब (पक्षपाती) और जाहिल समझा जायेगा, क्योंकि यह मसाइल ऐसे नहीं हैं कि दो तीन दिन की गुफ्तगू में तस्फिया हो जाय, या हार जीत तसब्बुर हो। मगर हाँ, जब रिसाला गुफ्तगू बाहमी तबै होगा (छपेगा) तो खुद हाथ के कंगन को आरसी का मसला होगा और आकिला खुद मेदान्द का जहूर जो सवाल जवाब होंगे वह बाद दस्तखत लाला अमीचन्द साहब और मुन्शी मुहम्मद हुसैन महमूद तबा होंगे (छापेंगे) बाद खतम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब की तरफ से अम्ल आलमा सरजद हुआ और वह यह है कि बादतमाम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब इमाम नासीरुद्दीन के दरवाजे पर गये और कुछ फखरिया बाज सुना कर मुसलमान हाजदीन से अपने नमूद के बेवजूद की शुहरत के तलबगार हुए। अर्थात् मुसलमानों से कहा कि आप लोग अभी कोई ऐसी तजबीज करें कि जिसमें मैं जीता नहीं तो भी मेरी ही जीत प्रसिद्ध हो जाय। अगर्चे अहिलइल्म और वजादार मुसलमान इस शुहरत (मिथ्या प्रसिद्धि) की ख्वाहिश को जाहिलों का खेल समझकर किनारा कश हो गये। मगर जुलाहे आदि वे लोग जो मुर्ग, लाल और बटेर और अगन

वगैर, की लड़ाई के आदी और हारजीत के शुहरत के शायक हैं, उन्होंने मौलवी साहब को बाजी याफता करार दिया और घोड़े पर चढ़ाकर शहर के गली कूचों में खूब फिराया और जीत हार का गुल मचाया। मगर खास वजादार और मुअज्जिज आदमियों ने इसे बहुत नापसन्द किया।

इस मुबाहिसे की 'सवाल जवाब' नाम की एक किताब है। उसकी दीबाचा अर्थात् भूमिका की यह नकल है जो ऊपर लिखी है। चूंकि इसके देखने ही से असल हाल खुल जाता है। इसलिए अगाड़ी के सवाल जवाब नहीं लिखे गये। उक्त किताब के अन्त में बडे दो प्रतिष्ठित रईसों ने यह इबारत लिख दस्तखत किये हैं कि हमारे रौबरू जो मरातिब गुफ्तगू मुअय्यन हुए थे, वह वाकई यही थे जो दीबाचः में दर्ज हैं।

द० लाला अमीरचन्द साहब, द० मुहम्मद हुसैन महमूद।

आर्यगण देखिये, मौलवी साहब कैसे एक निराले ढंग से विजयी प्रसिद्ध हुए, पर यह नहीं जानते थे कि सरदार विक्रमसिंह इस मुबाहिसे की किताब छपवा कर सब ठौर भेजेंगे। उसके साथ कभी मौलवी साहब का घोड़ा और ताशों की आवाज नहीं पहुँचेगी।

मेरठ नगर के मुसलमानों की धूमधाम

सन् ७८ ई० में स्वामी जी महाराज ने मुकाम मेरठ में मुसलमानी मत पर बहुत सी बातें अपने व्याख्यानों में सुनाईं। उस पर एक रोज मौलवी मुहम्मद अब्दुल्ला साहब साकिन मेरठ मुहल्ले शामी पाड़ा ने स्वामी जी को यह लिख भेजा कि आप मुसलमानी मत पर बहुत कुछ एतराज करते हैं और यह भी कहते हैं कि जिसका दिल चाहे हमसे बहस करे, हम उसको तुरन्त जवाब देंगे। सो इस मुबाहिसे में बहुत सी शर्तें हैं उनमें से पांच मुख्य हैं। अव्वल यह है कि कोई सालिस अर्थात् मध्यस्थ जरूर हो, दोयम यह कि जब तक मुबाहिसा पूरा होवे आप कहीं चले न जावें। सोवम यह कि हमारे तुम्हारे बीच में और कोई न बोले, चहारम यह कि खुदा को हाजिर नाजिर समझ पक्षपात छोड़ बातचीत होवे। हारे सो अपनी हार कबूल कर लेवे। पंजुम यह है कि कोई रईस बंदोबस्त करने वाला रहे। ३ बजे से ४ बजे तक मुबाहिसा होगा बाद हमारे रोजे का वक्त आ जावेगा परन्तु बातचीत जबानी हो। लिखी न जावे। जो यह सब बातें आपको मंजूर होवें तो जवाब इसका इसी खत की पीठ पर लिखिये तो मुबाहिसा रहेगा। फ़कत।

इस खत का जवाब स्वामी जी की तरफ से बनाम मौलवी साहब यह गया कि आप अपनी मर्जी मुआफिक बजरिये मुअज्जिज रईसान शहर बसदर सिलसिलां जुम्बानी कीजिये। मुझको कुछ उज्र नहीं। लेकिन जुम्ला मामलात तहरीरी हो न तकरीरी। ७ सितम्बर सन् ७८ ई०।

इस पर मौलवी साहब ने लिखा कि मुबाहिसा तकरीरी होवे न तहरीरी। तिस पर स्वामी जी ने सभा में जवाब दिया कि और सब बातें मौलवी साहब की मंजूर हैं। मगर मुबाहिसा तहरीरी होना चाहिये, तकरीरी नहीं। यह सुन मौलवी साहब ठंडे हो बैठे और उनके तरफदार मुसलमान अखबार नवीस मनमाना झूठ लिख मुंह उजाला करते रहे।

रुड़की नगर के मुसलमानों की बहस की धूमधाम

इस मुकाम पर जब स्वामी जी मौजूदा थे वहाँ मौलवी कासिम साहब जो तीन हजार आदमियों के बीच चांदापुर में भारी हार खा चुके थे।[1] और और भी कई मुकामों में धूमधाम मचाते रहे और बड़े-बड़े हिन्दू, मुसलमान ईसाई आदि सरकारी मुअज्जिज उहदेदारों के बीच तय पाई हुई बातों पर झट से पलट भी जाते थे, मगर शेखियाँ बघारे बिना नहीं रहते थे, तशरीफ लाये। कप्तान स्टुअर्ट साहब के रू-बरू स्वामी जी के साथ मुबाहिसा करने की तारीख और शर्तें मुकर्रर हुई। प्रथम यह कि जिस कोठी पर स्वामी जी ठहरे हैं वहीं मुबाहिसा होवे। दोयम यह कि दोनों तरफ से मिल कर चार सौ से ज्यादा मुबाहिसे में आदमी जमा न हों। तीसरे यह कि मुबाहिसे में आने वाले आदमियों को टिकट दिया जावे जिससे मुबाहिसे के अहाते के भीतर तादाद से जियादा आदमी न बढ़ जावें। चौथे यह कि मुबाहिसा तहरीरी होगा। पाँचवें यह कि ६ बजे शाम से ९ बजे रात तक मुबाहिसा रहेगा। इस प्रकार पांच शर्तें और तारीख पक्की ठहर जाने के बाद मौलवी साहब हस्ब, आदत बदल गये और कहने लगे कि एक तो जलसे में आने वाले आदमियों कि तादाद मुकर्रर न की जावे, दोयम यह कि मुबाहिसा तहरीरी न होवे। फिर दो तीन दिन बाद साहब मजिस्ट्रेट के यहाँ अर्जी दी कि छावनी या सदर में वास्ते मुबाहिसे के सरकार से कोई जगह बताई जावे। हुक्म मिला कि कबरिस्तान में जाकर मुबाहिसा करो।

यह सुन कर इधर मौलवी साहब दिली मुराद को पहुँचे, उधर पक्षपाती मुसलमान अखबार नवीसों ने दूसरा ही मजमून बनाकर उड़ाया कि

---

१. इसका विस्तार आगे ईसाई मत खण्डन मयूख के मेला चाँदापुर प्रकरण में लिखा है।

स्वामी जी मुबाहिसे से मुंह मोड़ गये। कहते हैं कि हम अरबी फारसी नहीं जानते। मुन्शी इन्द्रमणि को वास्ते मदद के बुलाया था व वजह बीमारी नहीं आये। आर्यगण दरोग को फरोग कहाँ। असल हाल मौलवी साहब के कायली का लोगों पर खुल ही गया। आफरी है इस जात को कि होवे कुछ भी नहीं पर शेखी जरूर ही बघारे। अफसोस साहब मजिस्ट्रेट का हुक्म मौलवी साहब को ऐसा खुदाई फरमान हो लगा कि उनको थोड़े ही दिन बाद हमेशा के लिए कबरिस्तान ही में जा बैठना पड़ा। इसी प्रकार की और भी कितनी ही जगह मौलवी लोगों ने स्वामी जी के जाने पर धूम-धाम दिखलाई। लेकिन सामने आकर कभी कोई नहीं बैठा। न किसी ने अपने मजहब (मत) को सच्चा कर दिखाया। लनतरानियाँ और शेखी मारना मुसलानों की जाति का एक स्वभाव है। वही सब जगह देखा गया। इसी-लिए नमूने के तौर पर तीन नजीरें (उदाहरण) इस मयूख में लिख दिखाई। उनको देख श्रीमान् स्वामी जी महाराज का प्रताप सब सज्जनों को भली-भाँति मालूम हो जावेगा।

आर्य गण, आदमी हिन्दू हो या आर्य, मुसलमान हो या ईसाई। जिसने ठीक-ठीक इन्साफ अर्थात् न्याय को अच्छी तरह पहिचाना, उसकी जात ही जुदी है। यह दिखलाने के लिए एक मुसलमीन साहब का दिया हुआ लेक्चर अर्थात् व्याख्यान आगे लिखा जाता है। वह दो बातों को स्पष्ट कर दिखावेगा। प्रथम इस बात को कि सनातन धर्म बिगड़ जाने के कारण अक्सर लोग उसको छोड़ मुसलमान या ईसाई हो जाते हैं। दोयम यह कि अब उस किस्म के आदमी स्वामी जी के व्याख्यान सुन सुन कर अपने प्राचीन मत की महिमा जान अत्यन्त शोक करते हैं। उनमें से जिनमें कुछ शक्ति और न्याय होता है वे अपने पहिले भाइयों को चिताने और होशियार करने को सन्नद्ध (तैयार) हो जाते हैं।

नाजरीन पुरतमकीन व सामईन आदलीन की राय बैजा जियाय पर मुबररहन व मुवय्यन (प्रकाशित) हो कि साबिक में बंदह को भी मजहब हिन्दू से तअल्लुक था। जो अब एक अर्सादराज गुजरा कि मैंने व जात खास खुद उसका किता कर दिया (छोड़ दिया) फिलहाजा ब मिसदाक कुल्ल शय्यन अर्जे वे असलह बराय (वास्ते) जियाफत तबअ बिरादरान साबकहन व तरदीद अकायद लाहिकह हाशा कुल्ली कुद्दा गुजारिश किया चाहता हूँ कि फिलवाकै (वास्तव में) और फिलहकीकत अगर तअस्सुब (पक्षपात) को कि जिस मर्ज में हम.रे बिरादरान अकसर मुब्तिला (फंसे)

हैं। बालाय ताक धर के और इन्सान को कि जो कुल जौहरों में आला जौहर है पेश नजर करके गौर किया जाय और येनसाफ (अन्याय) को साफ छोड़ दिया जाय कि दयानन्द सरस्वती जी मजहब हिन्दू में ऐसे आदमी हैं कि जिनकी निस्बत बावजूदे कि हम उनके मजहब से कुछ लगाव नहीं रखते और इख्तिलाफ अकायद जाहिर तो भी हम कह सकते हैं कि वे जात खास हिन्दुओं में अव्वल दर्जे के मोहद्द (ज्ञानी) हैं और परमेश्वर को जिसको हम खुदा कहते हैं बेशक एक जानने वाले और हल्ल माहद्दूस से मुकद्दस और मुवर्रह अर्थात् जैसा कि चाहिए वैसा निर्विकार मानने वाले हैं। यह बात कि वे क्योंकर इस दर्जे को पहुँचे। फिर वाकै ऐसी है कि जिसने हमको तअज्जुब के समुद्र में डाल दिया। यकीनकुल्ली दिलाती है कि उनने अपने दिल से तालीम पाई है। वे खुदा बहिदहू लाशरीक (अनुपम और अद्वितीय) जानते हैं। वे उसकी वहदानियत पर वहमे वज़ूह साबित और रास खुल एतकाद अर्थात् पक्का निश्चय रखते हैं। उनने इस बात को अच्छी तरह जांच लिया है कि इस जहान का पैदा करने वाला वह है जो वह न गुमान से बाहर है उसकी जात पाक में चंवचरा को दखल बिलकुल नहीं वे अपनी औकात अजोज को और नीज उमर गिरां वहा (अमूल्य समय) को इसी काम में सर्फ करते हैं कि खुदा की वहदानियत (अद्वैतता) का बीज बहुत से परमेश्वर हैं ऐसा मानने वालों के हृदय में जमावें और अपनी राय के फूलों की जो खिजां मशरक से मसऊन हैं, हार सबके गले में पहनावें वे अपने ताबेदारों को खसूसत और अहल आलम को उमूमन खास इसी बात की तरफ तवज्जुह दिलाते हैं कि खुदा एक है। वे पत्थरों से सिर टकराने को हर्गिज पसंद नहीं करते हैं। वे उन किताबों को जो खास किसी एक फिर्के नादान वकार खुद होशियार ने अपने गरज नफसानी (स्वार्थ तत्परता) और इल्हाम लायानी (निर्मूलता) से तसतीफ करके शाये और रायज अर्थात् प्रचरित की हैं। तकबीम कुहन: और अलहफरेबी का ढकोसला समझते हैं। वे हर चार वेद को जिनको खास कर उनने और तमाम उकलाय हिन्द ने किताब रब्बानी और कलाम आस्मानी तसलीम किया किया है। हक और निजात का वसीला और मुक्ति का हीला ठहराते हैं। वे उन मजखर फातों (कपोल कल्पितों) को जो वेद से खिलाफ हैं दयाबुर्द और गाव खुर्द समझते हैं। वे इस बात को कि सिर्फ गंगा के स्नान से गुनहगार आदमी मुक्ति यानी निजात हासिल करता है। नकशबर आब और प्यासे के हक में जो या सुएब (मृगतृष्णा) जानते हैं वे ब्राह्मण की परतिश्त को खुदावन्द वहदहू लाशरीक की इबादत नहीं गिनते वे झूठी

बातों से बिलकुल मुतन्नफिर घिन करते हैं। उनके दिल में हवा व हवस दुनयवी व किसी तरह के लालच ने हरगिज हरगिज जगह नहीं पाई। वे बेशक इलमदीनी में दर्या हैं। यह क्योंकर हो सकता है कि ऐसे शख्स सलीम उलत बअ्र और मुतवस्सित उल मिजाज (शान्त स्वभाव) फरेबी हो। हरगिज नहीं। अगर वे अपने दावे में झूंठे होते तो यह क्योंकर यकीन किया जाय कि वे एक अर्से दराज से कि जिसको बहुत जमाना गुजरने के करीब है, अपने उस दावे पर कि खुदा एक है कायम रह सकते और वे लोग जो इल्म व अक्ल से बहिरा रखते हैं क्योंकर इकबारगी उनकी बात को मान लेते और ऐसे वक्त में कि अविद्या यानी जहालत ने मुल्क हिन्द में अच्छी तरह अपना तसल्लुत (दखल) कर लिया क्यों कर वे अपनी कोशिशों को पूरा कर सकते। क्या बालू की दीवार एक पानी से जियादा कायम रह सकती है? बहुत मुश्किल है। और क्या उस मकान में कि जिसकी नींव पानी पर है लाखों आदमी गुजर कर सकते हैं। हरगिज नहीं। बल्कि वह मकान कभी का मिसमार हो औंधे मुंह गिर चुका होता और रहने वाले उस मकान के कभी के नष्ट हो चुके होते। लेकिन मेरी दानिस्त में इस मकान के बानी यानी दयानन्द सरस्वती जी ऐसे होशियार मैमार हैं कि उनने बहुत गहरी उस मकान की बुनियाद कायम की है। वह बरसाती नालों के चढ़ाव से हरगिज नहीं गिर सकता। अगर वे इस बात पर कि दुनिया का मालिक एक है भरोसा पूरा-पूरा रखते होते तो कभी के उनके पांव उखड़ गये होते। दर हालत कि वे पक्के दाना हैं, वे नादानों की गीदड़ भभकियों से कब बन्द हो सकते हैं। एक जमाना उनकी दानाई पर आँखों से स्वाद करता है। क्या यह बात कि वे हिन्दुओं के धर्म का नाश करते हैं या अपने मतलब यानी फायदे के लिए जैसी कि पण्डित लोगों ने कोशिशें की हैं दम भरते हैं काबिल एतबार है। हरगिज हरगिज नहीं। बल्कि वे भूले हुओं को राह बतलाते हैं और अंधों को कुए में गिरने से बचाते हैं। वे वेद के अहकाम के पक्के आमिल हैं उन्हें इस बात की बिलकुल तमन्ना (इच्छा) नहीं है कि मुझे कोई कुछ दे और न उनकी यह गरज है कि जब हिन्दुओं में कोई काम हो तो अव्वल मेरी फीस निकाल दें। वे हर चीज पर पण्डितों की तरह टैक्स लगाना हरगिज नहीं मांगते। वे इन्हीं हरकतों पर ब्राह्मणों से नाराज हैं। मजा यह कि वे खुद ब्राह्मण हैं, लेकिन ऐसे नहीं जैसे कि उनके हम असर हैं। हमको तअज्जुब है उन लोगों की समझ पर जो ऐसे शख्स मुहज्जिब (सभ्य) खुदापरस्त को गुनह इलजामन् बल्कि महज इतहामन् मिथ्यावादी का खिताब देवें और ऐसे

धर्मात्मा पुनीत मनुष्य को चर्क दुर्वचनों से मुलव्विस करें या यह कहें कि वे बातिन में ईसाई हैं। इस्तगफुर अल्लाह (ईश्वर सुबुद्धि दे) या यह कि वे सरकार से हिन्दुओं के बहकाने की कुछ तनख्वाह पाते हैं। लाहौलविला कुव्वत। अय वाजिन बिल्लाह छोटा मुंह बड़ी बात है। यह गुफ्तगू महज वाहियात है। हमको इस मुकाम पर सादी की कहावत बहुत मौजूं मालूम होती है कि चु हुज्जत नुमानद जफा जोयराब पर खाश दर्हम कशदरुपरा अर्थात् जब हठधर्मी दलील में हारता है तो लड़ाई पर मुस्तैद होता है और यह बात तो खुद जाहिर है कि हिन्दुस्तान में कोई शख्स अजकिस्म पण्डितान् ऐसा नजर नहीं आता जो उनके रूबरू अपनी जबान को हरकत में ला सके। हाँ! वह शख्स जो दो हिस्सा पढ़कर इल्मियत में पास कर चुका हो शायद उनकी तालीमात का मतलब समझ सके फिर मुकाबला कैसा? जिसने वेदव्यास को न देखा हो वह इनको यानी दयानन्द सरस्वती जी को देख ले। कितै नजर दीगार उलूम फनून के हुस्न जबान और तर्ज बयान इस दानाय अदीमउल मिसाल का ऐसा है, सुभान अल्लाह-वलहम्दह्, हाय-हाय मुखालिफ यह लब व लहजा किसके घर से लायेंगे जो उनके मुकाबिल आवेंगे। सब गलत है क्योंकि ई सआदत बजोर बाजूनेस्त तानबखशद खुदाय बख्शंदह। हम बावर करते हैं कि उन शागिर्दों में बाज बाज ऐसे हैं कि काशी का कोई अव्वल दर्जे का पण्डित न होगा। इनकी मिसाल ऐसी है जैसे कि आफताब जहां वह रोशन हुआ और चिमगादरों की बीनाई काफूर हुई, कोई उनके मुकाबिल क्यों कर हो। सूरज के सामने चिराग की क्या वकअत है? चाँद खाक डालने से कब छिप सकता है? इसी तरह जो आदमी कि खुदगर्जी और खुदमतलबी और खुदपसन्दी और खुदसिताई में सखाया (सिर से पैर तक) गर्क है वह कब उनके रूबरू फरोग पा सकता है? भला यह कोई अक्ल की बात है कि गंगा का स्नान या गाय का पूजन या नाम के ब्राह्मण का दान किसी मजहब का उसूल हो, उसूल वह है कि हर काइल का मकबूल व हर मुनिकिर मरदूद है।

हम देखते हैं कि बहुत से मुसलमान गंगा में स्नान करते हैं तो क्या वे हिन्दू हो गये? या अकसर मुसलमान ब्राह्मणों को कुछ देते हैं तो क्या वे इसलाम से खारिज होकर दायरह हिन्दू में आ गये। कोई नहीं कोई नहीं। अगर कोई ब्राह्मण परस्त यह जवाब दे कि एतकाद शर्त है तो हम कह सकते हैं कि फिर किसी खास शै की शर्त कब रही। बकौल शख से कि "मन चंगा तो कठौती में गंगा"। जब एतंकाद ही पर है तो एक नाले से मुक्ति

हो सकती है। हम इस बहस को ज्यादा तूल नहीं दे सकते क्योंकि हमारा मतलब खत्म हो जायेगा। देखो ब्राह्मणों ने खुद को किस कदर बुजुर्ग बना रक्खा है। क्या खुदा भी किसी कौम का जानिबदार है? नहीं। फिर जिस कदर काम फख्र (प्रतिष्ठा) के हैं वह उस कौल के मुताबिक कि दस्त खुद वदहान खुद अपने ही नाम दाग करके इल्म कि जो खास खुद शनासी का अव्वल रुकन है सिवाय अपने हर कौम पर हराम कर दिया हते कि सिवाए जबान ब्राह्मण और किसी जबान में यह तासीर नहीं रक्खी कि सुनने वाला सवाब हासिल कर सके। मगर वह कि जो ब्राह्मण के हाथ पर दो पैसे रख दे बहर कसे बाशद किसी पर बन्द नहीं। फिर देखिये कि तीर्थ किस कदर मुकर्रर कर लिये हैं और हर तीर्थ में ब्राह्मणों का ही इन्तिजाम। यह बात वह बात टका धर मेरे हाथ। आफरीं सद आफरीं दयानन्द सरस्वती जी महाराज को कि जिनने इस कौम की अय्यारी (मक्कारी) जो अपने हिन्दुओं पर जाहिर कर दी और कान खोलकर कह दिया कि होशयार हो जाओ और ख्वाब खरगोश से बेदार-वरना तुम्हारा माये (पूंजी) धर्म यह किता इतलरीक एजद परस्ती।

दिन दहाड़े मथुरा वृन्दावन के जंगलों और अयोध्या नीमवार के मैदानों में लूट लेंगे फिर अब भी बाज आओ और इनके पंजे ताइर (पक्षी रूप) ईमान को बचाओ। इस पर भी बाज-बाज अशखास बिरहमनान अवलह फरेब की ताजीम से हाथ नहीं उठाते और इन हादी बरहक की राह पर नहीं आते। वह पछतावेंगे पर ऐसे शख्त को यानी दयानन्द सरस्वती जी को हमारे और तमाम हमारे खयालात की तरफ से हजार शाबाश और लाख बार शाबाश हैं। (धन्य) किस्मत उन हिन्दुओं की जो ऐसे शख्स की सइक मशकूर है और जहे तकदीर उन भरत खण्ड वासियों की जो इनकी तालीम पर ब दिलो जान अमल करते हैं। आयन्दह वह जानें और उनका काम। बाकी आयन्दह जियादह व उल सलाम।

बन्दह इन्साफ पसंद सिद्दीक हुसैन

देखिये आर्यगण, मुसलमान लोग भी श्रीयुत का कितना सम्मान और प्रशंसा करते हैं। परन्तु शोक कि हमारे देश निवासी नेंक लज्जित नहीं होते। चारों तरफ से इन पर बौछार पड़ रही है। सब इन्हीं के हितार्थ इतना परिश्रम उठा रहे हैं परन्तु इनको बिलकुल सत्यासत्य नहीं सुझाई देता। जैसा कि यह ऊपर लेख है इससे अधिक चमत्कारी व्याख्यान आप लोग आगे ईसाई मत खण्डन नामक मयूख में पावेंगे सारांश यह है कि

समस्त भूमण्डल में वैदिक मत की स्तुति और उस पर न चलने वालों की निन्दा श्रीमान् के प्रताप से इन दिनों हो रही है।

इति श्रीमद्दिग्विजयार्कीयप्रथमाङ्के यावनीमत-
खण्डनं नाम पञ्चमो मयूखः ॥ ५ ॥

षष्ठो मयूखः

किरानीमतखण्डनम्

शास्त्रार्थ—श्री स्वामी जी महाराज का अजमेर के पादरी साहब के साथ

विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कार्तिक सुदी १३ के दिन अजमेर पहुँचे थे। थोड़े दिनों के पीछे वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्म विषय में व्याख्यान देने लगे। ईश्वर विषय के पीछे दूसरा वेद विषय का व्याख्यान था। उस दिन अजमेर के बड़े पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड भी आये थे। उसमें स्वामी जी ने शास्त्र और युक्ति से यह सिद्ध किया कि ईश्वर कृत पुस्तक केवल चार वेद ही हैं अन्य कोई नहीं। इसके पीछे एक बड़ा सूचीपत्र तौरेत, इञ्जील और कुरान की अशुद्धता का पढ़कर सुनाया और कहा कि मैंने यह सूची-पत्र किसी को चिढ़ाने के लिए नहीं सुनाया है किन्तु इसलिए कि सब लोग पक्षपात रहित होकर विचारें कि जिन पुस्तकों में ऐसी ऐसी बातें लिखी हों वे ईश्वरकृत हो सकते हैं वा नहीं? इस बात पर पादरी ग्रे साहब ने कहा कि आपने जो तौरेत और इंजील की बातें सुनाईं इनमें प्रश्न लिख कर आप मेरे पास भेजें। मैं इनका उत्तर दूंगा। स्वामी जी ने कहा कि मैं तो यही चाहता हूँ और सदैव मेरी यही इच्छा रहा करती है कि आप जैसे बुद्धिमान् पुरुष मिल के सत्यासत्य का निर्णय करें। पादरी साहब ने कहा कि सत्य का निर्णय जब होगा कि आप मेरे पास प्रश्न भेजेंगे और मैं उत्तर दूंगा। स्वामी जी ने कहा कि लिख कर दोनों ओर से प्रश्नोत्तर भेजने में काल बहुत लगता है और मनुष्यों को भी इससे लाभ नहीं पहुँचता। इसीलिये यही बात अच्छी है कि आप यहाँ ही आवें और मैं प्रश्न करूँ और आप उत्तर दें।

तब पादरी साहब ने कहा कि आप प्रश्न मेरे पास भेज देवें। जब मैं दो चार दिन में उनको विचार लूंगा तब पीछे आपको उत्तर यहाँ आकर दूंगा। स्वामी जी ने कहा कि प्रश्न तो मैं नहीं भेजूंगा परन्तु मुझको जहाँ जहाँ इंजील और तौरेत में शंका है उनमें से थोड़े वाक्य लिख कर भेज

दूंगा। उनको जब आप विचार लेंगे तो उन्हीं में मैं प्रश्न करूंगा आप उत्तर देना। फिर इतमिनान होने के पीछे पादरी साहब चले गये। उसके दूसरे दिन स्वामी जी ने तौरेत और इंजील के ६० वाक्य लिख कर पण्डित भागराम साहब एक्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर के द्वारा पादरी साहब के पास भेज दिये फिर नौ दस दिन पीछे जब पादरी साहब ने उनको विचार लिया और व्याख्यान हो चुके तब एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए नियत हुआ। इस दिन नोटिस दे दिया था इस कारण से बहुत लोग आये थे।

सरदार बहादुर मुंशी अमीनचंद साहब, जज पं० भागराम साहब, एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर, सरदार भगतसिंह इन्जीनियर इत्यादि प्रतिष्ठित पुरुष आये थे। जब समय हुआ तब स्वामी जी चारों वेदों के पुस्तक साथ लेकर आये। पादरी साहब के साथ डाक्टर हसबैण्ड साहब भी आये। प्रथम स्वामी जी ने कहा कि मैंने कितनी ही जगह पादरी लोगों से बातचीत की है। कभी किसी प्रकार का गड़बड़ नहीं हुआ। आज मैं जानता हूँ कि पादरी साहब से वार्तालाप निर्विघ्नता से पूरा होगा। फिर पादरी साहब ने भी निर्विघ्नता से बातचीत होने की आशा प्रकट की और कहा कि स्वामी जी ने जो वाक्य लिखकर हमारे पास भेजे हैं वे बहुत हैं और समय केवल दो अढाई घण्टे का है। इसलिए प्रत्येक वाक्य पर दो चार प्रश्नोत्तर होना ठीक है। इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर होने लगे और तीन लेखक भी बिठला लिये। इन तीनों को स्वामी जी और पादरी साहब बोलते समय अक्षर-अक्षर लिखवाते जाते थे।

(शास्त्रार्थ विवरण के लिए द्रष्टव्य—दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह
सम्पादक—डा० भवानीलाल भारतीय पृ० ११८-१२८)

खुलासा हाल मेला चांदापुर जिला शाहजहाँपुर

यह मेला कबीर पन्थी मुंशी प्यारेलाल रईस कौम कायस्थ ने अपना हजारहा रुपया लगा कर सत्य धर्म के निर्णयार्थ अपने ग्राम चांदापुर में लगाया था। इसकी मंजूरी जनाब मिस्टर एवर्ट साहब हाकिम जिला से लेकर इश्तिहार बहुत दिन पहले से सर्वत्र भेजा गया था कि जो साहब इस मेले में आयेंगे उनका बहुत अच्छे प्रकार आतिथ्य होगा। तदनुसार चारों तरफ से हजारों आलिम व फाजिल आर्य व मुसलमान व ईसाई आदि लोग एकत्र हुए थे। उनमें से विशेष प्रसिद्धों का नाम अन्त में लिखा है।

मिती चैत्र सुदी चौथ व पंचमी संवत् १९३४ विक्रमी मुताबिक तारीख १९ व २० मार्च सन् १८७७ ई० को यह अपूर्व मेला बड़ी धूमधाम

और आनन्द के साथ हुआ था। प्रथम दिवस मेला के प्रबन्ध और नियम इस प्रकार बांधे गये कि ईसाई व मुसलमानों में से पांच-पांच और आर्यों में से केवल दो मनुष्य अर्थात् श्रीयुत स्वामी जी व मुन्शी इन्द्रमणि जी शास्त्रार्थ करने को प्रधान सभासद् रहें। और ये लोग मुन्शी प्यारेलाल जी के अधोलिखित पांचों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार अपने-अपने मतानुसार प्रीतिपूर्वक देवें कि जिससे हाजिरीन जलसा तृप्त होवें और इन तीनों में से किसका मत (मजहब) सत्य है, यह अच्छे प्रकार सबको प्रतीति हो जावे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्रथम पादरी नोबिल व स्काट साहब आदि, बाद मौलवी कासिम साहब आदि पश्चात् स्वामी जी महाराज देवें। जो कोई किसी पर प्रश्न करे वह १० मिनट में करे और हर एक का उत्तर आधे घण्टे में पूरा हो जाया करे।

दूसरे दिन बाग में दिन के साढ़े सात बजे से ११ बजे तक और १ बजे से ४ बजे तक शास्त्रार्थ होकर मेला समाप्त हुआ। स्वामी जी चाहते थे कि और भी कुछ दिन इसकी यथेच्छ चर्चा रहे परन्तु पादरी व मौलवी लोग न जमे। तथापि उतने ही अवसर में सबको निश्चित हो गया कि सच्चा धर्म वैदिक ही है सब लोग स्वामी जी के गुणों की तारीफ करते व उनको अन्त:करण से अपरिमित धन्यवाद देते हुए निज-निज स्थान को गये। समाप्ति के समय मौलवी लोगों ने बड़ा गड़बड़ डाल दिया था, इसलिए कि गंवारों को अपनी जीत प्रकाशित होवे परन्तु तारीफ है पादरी लोगों को कि जिनने सिर तक ऊपर नहीं किया बल्कि शास्त्रार्थ के समय मौलवी लोगों से स्पष्ट कहा कि भाई मौलवी लोगो स्वामी जी ऐसी बातों का उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं। हम तुम हजारों मिल कर भी इनसे बातें करें तो भी इनके बराबर नहीं हो सकते। इसलिए इस विषय में अब अधिक खींचा-तानी करना सभ्य धर्म नहीं। इसके बाद पादरी लोग रात्रि को स्वामी जी के डेरे पर गये। वहाँ अपनी तरफ से पुनर्जन्म पर चार घण्टा वार्ता करके निस्सन्देह होकर चले गये।

तारीख २१ व २२ को २ खत बनाम मुन्शी इन्द्रमणि जी मोती मियाँ साहब रईस शाहजहाँपुर ने इस मजमून के भेजे कि आप स्वामी जी को साथ ले इसी जगह तशरीफ लावें तो आपसे मौलवी अहमद अली साहब पुनर्जन्म के बारे में बहस करेंगे। इसके अनुसार ये दोनों साहब ता० २२ के दोपहर शाहजहाँपुर पहुँच कर डिप्टी साहब के मकान पर ता० २३ के दोपहर तक ठहरे, और इन्तजार किया, परन्तु कोई भी सामने नहीं आया। क्या

आते, वह तो केवल मुसलमानों की गीदड़ भभकी थी ।। इति ।।

प्रश्न पञ्चक

१. सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज से किस समय और किसलिए बनाया ?
२. ईश्वर सबमें व्यापक है या नहीं ?
३. ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?
४. वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण हैं ?
५. मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

नाम शख्श मोतबिरान हाजिरीन मेला चाँदापुर

शाहजहाँपुर के बाबू हरगोविन्द साहब, हेडक्लर्क कलक्टरी, मौलवी मोती मियाँ साहब व लाला रामप्रसाद साहब आनरेरी मजिस्ट्रेट, लाला बनवारीलाल, बाबू बिहारीलाल, मुन्शी सोहनलाल, मुहम्मद हैदरअली मुखत्यार। हाफिजउल्ला खाँ, मुहम्मद अलीसाहब व सखावत हुसैन साहब वकील आदि बहुत से ।

लखनऊ के राजाराम खजानची आदि बहुत से रईस ।

मुरादाबाद के मुन्शी जगन्नाथ प्रसाद साहब रईस आदि ।

अमरोहा के पण्डित बद्रीदास साहब आदि रईस ।

अलीगढ़ के कुंवर मुकुन्दसिंह आदि रईस ।

बरेली के पं० मथुराप्रसाद आदि रईस ।

बनारस के मुन्शी दयाशंकर साहब डिप्टी आदि ।

देहली के मौलवी अब्दुल मनसूर आदि ।

इसी प्रकार और भी कानपुर व फर्रुखाबाद आदि नगरों के बहुत से सभ्य लोग मौजूद थे जिसको इस मेले की कैफियत विस्तारपूर्वक देखनी हो वे वह दो आना भेज कर इसकी जुदी बनी हुई किताब वैदिक यंत्रालय इलाहाबाद से मंगवा लेवे जो देखने लायक और नागरी लिपि की भी मिलेगी ।

इसी प्रकार सन् १८७९ ई० में तीसरा तहरीरी शास्त्रार्थ मुकाम बांस बरेली में तीन रोज अर्थात् ता० २५, २६ व २७ अगस्त को स्वामी जी और पादरी टी० जी० स्काट साहब से हजारों आदमियों के बीच कुतुबखाने बरेली में बैठ कर हुआ था ? इस सभा के सभापति लाला लक्ष्मीनारायण साहब खजानची व रईस आजम बरेली थे । पहले दिन शास्त्रार्थ आवागमन पर अर्थात् पुनर्जन्म पर और दूसरे दिन इस बात पर कि परमेश्वर कभी देह

धारण करता है वा नहीं ? और तीसरे दिन इस बात पर कि परमेश्वर मनुष्यों के किये अपराध क्षमा करता है वा नहीं ? हुआ था।

इस शास्त्रार्थ में तीन लेखक इसलिये बिठाले गये थे कि एक स्वामी जी के पास, दूसरा पादरी साहब के पास, तीसरा सभापति के पास बैठ कर जो कुछ वादी और प्रतिवादी के मुंह से निकले तुरन्त हरफ ब हरफ लिखते जावें और उठते समय प्रतिदिन तीनों परतों पर वादी, प्रतिवादी और सभापति के हस्ताक्षर हो जाया करें। जब तीनों दिनों के शास्त्रार्थ हो चुकें तब शास्त्रार्थ की एक प्रति वादी को, दूसरी प्रतिवादी को मिले और तीसरी सभापति के पास सदैव के लिए अच्छी प्रकार बनी रहे कि जब कभी इन दोनों में से कोई पुरुष शास्त्रार्थ की बात में कुछ घट बढ़ करे तो सत्यता के अर्थ उसका लेख इससे मिलाया जावे। इस शास्त्रार्थ में पादरी साहब का पक्ष था कि मनुष्य का फिर जन्म नहीं होता और ईश्वर अवतार लेता और मनुष्यकृत अपराधों को भी बिना दण्ड दिये क्षमा भी कर देता है परन्तु स्वामी जी महाराज इन तीनों बातों को मिथ्या कहते थे और इसी प्रकार उन्होंने सिद्ध कर दिखाया ि इस शास्त्रार्थ की भी किताब उर्दू में सत्यासत्य विवेक नाम से आर्य दर्पण यंत्रालय शाहजहाँपुर में तैयार है जिसको अपेक्षित हो वह साढ़े चार आने भेज कर मंगवा लेवें॥ इति॥

इसी प्रकार और भी बहुत ठौर पादरी और ईसाई लोगों से बहस हुई। सर्वत्र स्वामी जी महाराज ने उनका खण्डन करके मूक ही कर दिया है यह बात आर्यावर्त के उन नगरों के सब छोटे बड़ों को भलीभांति मालूम है जहाँ कि इसका प्रसंग हुआ है—सत्य है वैदिक धर्म ऐसा ही है।

पत्री अमेरिका वालों की बनाम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज—

स्वामी जी महाराज—चंद लोग अमेरिका व और और देशनिवासी तालिबइल्म जो कि इल्म परमेश्वर व आत्म ज्ञान होने का अत्यन्त शौक रखते हैं वे अपने आपको आपके चरणों में डालकर यह प्रार्थना करते हैं कि आप उनका उद्धार करें। यद्यपि अन्य अन्य देश निवासी और पृथक्-पृथक् पेशा व नौकरी करने वाले हैं, लेकिन सबके सब एक ही मनोरथ सिद्ध करने और उत्तमोत्तम हो जाने के लिए दृढ़ चित्त सम्मिलित व मुसम्मत हैं। इसी कारण तीन बरस पेश्तर से उन्होंने अपनी एक सभा स्थापित की है और उसका नाम परब्रह्म परिज्ञान समाज (थियोसाफिकल सोसाइटी) रक्खा है जो कि उन्होंने अपने ईसाई मत में कोई ऐसी बात न

देखी कि जिससे स्वार्थ व परमार्थ ज्ञान प्राप्त करके अपना चित्त संतुष्ट करते। बल्कि हर चहार तरफ से खराब करने वाले उसके निश्चयों के अति बुरे फल देखे और ऐसे बड़े-बड़े पादरी आदि पाये कि जाहर परस्त और घाऊ घप्प और बुद्धिनाशक हैं। उन पर विश्वास लाने वाले लोग भी बहुत बुरी रीति व अपवित्रता से कालक्षेप करते हैं और यह भी देखा गया कि पादरी लोग भलाई व दानाई को ताक में रखकर दोषों को छुपाते और ऐबों को मुआफ कर देते हैं जो कि उनकी यह सब हालतें इन मुल्कों के मनुष्य मात्र को खराब खस्ता करने वाली हैं। लाचार हम उनके मत से जुदे होकर रोशनी पाने के लिए हिन्दुस्तानाभिमुख होते हैं। हमने अपने तईं खुले मैदान पुकार कर ईसाई मत का दुश्मन प्रसिद्ध कर दिया है। हमारे इस चलन व साहस को देख सब की नजर हमारी तरफ से फिर गई। अर्थात् बड़े-बड़े अधिकारी व अखबारनवीस (कि जिनकी भ्रष्ट बुद्धि और विषयासक्त प्रकृति है और ईसाई भिन्न मत वालों से द्वेष रखते हैं) हमको धिक्कार देते और काफिर व गंवार कहते हैं। हमने अठारह महीना पेश्तर के मरे हुए आदमी की लाश को कब्र से निकालकर पुराने पुरुषों यानी आर्यों की रीति से जलाया। हम केवल तरुण आदमियों की ही सहायता नहीं चाहते बल्कि उसकी चाहते हैं कि जो बड़े दाना और ब्रह्मनिष्ठ हैं। इसलिए हम आपके चरणों में सिर नवाते हैं जैसे कि बच्चे मां बाप के पैरों पर गिरते हैं और कहते हैं कि आप हमारे गुरु हमारी ओर देखिये और बतलाइये कि हम क्या करें और हमको अपनी शिक्षा व सहायता पात्र बनाइए। यहाँ लाखों आदमी ज्ञानरहित, विषयासक्त, झूठे मत रूप अंधकार में पड़े हुए हैं और इतने पर भी उन गुमराहों को संतोष होय सो नहीं। अपनी चुस्त अकली व अति निन्दक उमंग से अपना धन खर्च कर जाहिल आदमियों को अपना शुद्ध मत कबूल कराने में तत्पर हैं।

हमारी रसाई अखबारों तक बखूबी है। उसके द्वारा हम वैदिक मत के सही-सही खयालात तमाम ईसाई मुल्कों में फैला देना चाहते हैं और जिन लोगों को जे (ये) ईसाई महामूर्ख बतलाकर अपने मत में लाना चाहते हैं उनको चिताना, उन पर ईसाई मत की भ्रष्टता व मिथ्यात्व प्रकाशित कर देना हमारा ऐन मनोरथ। इसी तरह आर्यावर्त के प्राचीन ग्रन्थ वेद शास्त्रों का जो इन दुष्टों ने विपरीत अर्थ प्रकाशित किया वह अब हम सत्य-सत्य छपवा कर इनकी चालाकी और दुष्टता स्पष्ट करना चाहते हैं। अगर आप हमारी सभा की मेम्बरी की सनद स्वीकार कर लेवें तो हमको बड़ी प्रतिष्ठा और इज्जत मिलेगी और आपकी कृपा व मेहरबानी

और सहायता से हमको बड़ा ही जोर बंधेगा। हम अपने तईं आपके शिष्यगणों में स्थापित करते हैं। जिस पाक काम में आप संयुक्त हैं शायद आप को भी हम से कुछ सहायता उसमें पहुँचे, क्योंकि हमारा मैदान जंग कन्या कुमारी से हिमालय तक फैला हुआ है। अर्थात् सारे हिन्द में जो हम चाहेंगे वह कर सकते हैं। स्वामी जी महाराज, आप अपने सहशील व्यसनियों के स्वभाव को खूब पहचानते हैं। इसलिए निश्चय है कि हमारे दिल का भी हाल आप पर छुपा न रहा होगा। हम बार-बार प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी तरफ परम कृपा व दया दृष्टि से निहारिये। हम सच कहते हैं कि हम आपके शरणागत आप की चरण रज बन कर होते हैं न किसी अहंकार व कपट से हमारी यह दीनता है। निश्चय जानिये कि हम आपकी शिक्षा लेने और उस कर्त्तव्य के करने को मुस्तैद व उपस्थित हैं। जिसकी कि आप हमको आज्ञा करें। जो आप हमको एक पत्र लिखेंगे तो जान लेवेंगे कि हम लोग ठीक-ठीक क्या जिज्ञासा रखते हैं। निश्चय है कि जो हम चाहते हैं वह आप हमको जरूर अर्पण करेंगे। १५ मई सन् १८७८ ई०।

अय परम प्रतिष्ठित साहब मैं हेनरी एस. आल्काट ईश्वर परिज्ञान समाज का सभापति यह पत्र सभा की तरफ से आपको बड़ी नम्रतापूर्वक लिखता हूँ। इति।

इसी प्रकार के और सात पत्र इन लोगों के हैं वे सब पाखण्ड तिमिर नाशक पत्र चन्द्रिका में मुद्रित हैं। जिनको अपेक्षित हो दो आना भेज कर मंगवा लेवें क्योंकि वे सबके सब पत्र योग्य पुरुषों के अवलोकन करने के योग्य हैं।[1] एक में इनका लेख है कि स्वामी जी महाराज आपका पत्र पाकर हमको ऐसी खुशी हुई जैसी कि जंगल में जंगली पशुओं से घिरे हुए मनुष्य को किसी बचाने वाले मनुष्य का शब्द सुन कर होती है और एक में लिखा है कि हमारा उतना ही काल सफल होता है जितने में हम भरतखण्ड को पत्र लिखते हैं वा वहाँ के आये हुये पत्र को पढ़ते हैं।[2] और फिर लिखा कि हम भरतखण्ड को आते हैं। तदनुसार यहाँ आये और मई ७९ में प्रथम देहरा-

१. इस पुस्तक की प्रशंसा में प्रायः सब हिन्दी समाचार वालों ने अपने पत्र के एक दो पृष्ठ भर के इस देश निवासियों पर शोक प्रकाशित किया है।

२. ऐसी ही प्रशंसा भरे पत्र लंदन और जर्मन आदि देशों के परम प्रतापी महाराज के नाम बराबर आते हैं। सारांश यह है कि इनके सुयश से समस्त भूमण्डल प्रकाशित हो रहा है, यह सिद्ध है।

दून और द्वितीय बार उसी सन् के दिसम्बर मास में काशी में श्रीमान् से मिले थे और १५ तारीख को काशी में पहुँचे थे और वहाँ के विद्वज्जनों की सभा में कई व्याख्यान देकर इनने प्रकाशित किया था कि वेद ऐसा प्राचीन और ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ कोई ग्रन्थ दूसरा नहीं है। इसी वेद से सब जगह ज्ञान फैला है। यहाँ के दर्शनशास्त्र सब के शास्त्रों से श्रेष्ठ हैं। इन्हीं वेद शास्त्रों के सीखने के लिए हम अपना घर द्वार और बाल-बच्चे तथैव समस्त सुखों और लाभों को त्याग कर यहाँ आए हैं, परन्तु परम शोक हमको यहाँ के देश-वासियों पर हैं कि जिनने आलसी हो अपनी सब प्राचीन विद्या त्याग दी है [1] हमने आर्यावर्त को अपना देश समझ यहीं मरना ठाना है। इस-लिए कि आर्यों को नींद से जगावें। [2] और उन्हें उनके प्राचीन महत्त्व और ऋषि गणों के कामों की याद दिलावें कि जिससे प्रत्येक पुरुष विद्वान् हो। समस्त मनुष्यों को अपना भाई समझ उनका हितकारक होवे और कहा कि हमारी सभा में सब धर्म वाले शामिल हो सकते हैं परन्तु वे नहीं जो ईश्वर और पूर्व जन्म को नहीं मानते। इस पर काशी के विद्वानों ने उनको बहुत-विध धन्यवाद देकर कहा कि हम लोगों के प्राचीन वेदादिक ग्रन्थों पर इन दूरस्थ और भिन्न धर्म वालों की इस प्रकार निष्ठा होने के मूल कारण विद्वन्मण्डली भूषण भारत रत्न स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को समझना चाहिए। यद्यपि कई विषयों में हम लोगों की राय उनसे नहीं मिलती तथापि हम लोग उनको असंख्य धन्यवाद देते हैं।

आर्यगण, जिस प्रकार काशी के विद्वानों ने मात्सर्य भाव छोड़ इस सभा में श्रीमान् उग्रप्रतापी स्वामी जी महाराज के गुणों को मान उनको असंख्य धन्यवाद दिया उससे कुछ अधिक धन्यवाद उन काशी वालों को यह ग्रन्थकार देता है, क्योंकि उनकी इस गुणज्ञता से यह ग्रन्थ जो दिग्विजय नाम से होना चाहिए था, वह दिग्विजयार्क नाम पाकर प्रचरित हुआ। ❀ सर्वान्तर्यामी श्री जगदीश्वर इसी प्रकार की सुबुद्धि उनको सदैव

१. देखिए दूसरे देश निवासी हमारे भाइयों पर शोक करें पर ये किञ्चिदपि लज्जित न हों।

२. ये लोग जगें तब जब इनका कुछ बननहार हो। कहावत है कि "सोवे सो खोवे जागे सो पावे।"

❀ जिसका प्रताप भरतखण्ड मात्र में फैले वह दिग्विजयी और जिसका भूगोल भर में विस्तृत हो वह दिग्विजयार्की कहाता है। और अर्क नाम सूर्य का है वह मिला दिग्विजय शब्द से तब दिग्विजयार्क नाम सिद्ध हुआ।

के लिए देवे जिससे वे लोग दुराग्रह छोड़ सनातन मार्ग स्वीकार करें और औरों को भी करावें। रही बात पेट की, सो निश्चय जानें की जिसने दांत दिये हैं वह अन्न भी देगा। लिखा भी है कि शेषवृत्तिविधानार्थं स वा सुप्तोऽथवा मृतः' सब विद्वानों को ऐसे वाक्यों पर सर्वकाल पूर्ण विश्वास रख पुरुषार्थ के साथ सद्धर्मारूढ़ होना चाहिए क्योंकि उसका नाम विश्वम्भर बहुत ही सत्य है। विज्ञेषु किमधिकमित्यलम्।

इति श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य-दयानन्दसरस्वती दिग्विजयार्कीय-प्रथमाङ्के षष्ठो मयूखः

समाप्तोऽयं प्रथमाङ्कः मङ्गलानि भवन्तु। सन् १८८१
वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासे सिते दले।
नवम्यां चन्द्रवारे च ग्रन्थोऽयं पूर्णमागतः॥

विज्ञापन

विदित हो कि श्रीमदिग्विजयार्कीय प्रथमांक तो समाप्त हुआ परन्तु आगे इसके द्वितीयांक मुद्रित हो चुका है उसमें भी ६ मयूख हैं। उनके देखने से सबको श्रीमान् स्वामी जी महाराज की विशेष कर्त्तव्यता अर्थात् समाजों की स्थिति व कृति और ग्रन्थ रचना तथा आर्यावर्त के देशान्तरों में भ्रमण करके बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों और राजा महाराजाओं आदि से मिलना उनको सदुपदेश करना और वर्णाश्रम धर्म की मुख्यता और जन्म जन्मान्तर होने के कारण और मोक्षमार्गादि का वृत्तान्त प्रकाशित होगा जिन पुरुषों को अपेक्षित होवे वैदिक समाज वा मुझको मुकाम फर्रुखाबाद के पते से पत्र भेजें और इससे दूना तीसरे खण्ड को जानो।

ह० पं० गोपालराव हरि पूर्व सभासद।
मीमांसक सभा, आर्य समाज नगर, फर्रुखाबाद।

।। ओ३म् तत्सत्यम् ।।

वसुरामाङ्कभूवर्षे श्रावणस्य सिते दले ।
नवम्यां गुरुवारे च ग्रन्थारम्भः कृतो मया ।।

अथ श्रीमद्दयानन्द-दिग्विजयार्कीयः द्वितीयोऽङ्कः

मन्त्र

ओम् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।
शं नो वातः पवताᳩ शन्नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः
पर्जन्योऽभिवर्षतु ।।

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

प्रार्थना

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वाद्यो विश्वकृद्विभुः ।
भूयात्तमां सहायो नः सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ।।
श्रियं बिभ्रद्वर्णैः सुपदवृतवृत्तैर्विरचयन्
धराध्वान्तध्वंसा न बुधविधुबोधं विधुरयन्।
समुद्यन् गोपालादनुगपदराजाद्धरिजत-
स्सदञ्जमोदे दिग्विजयकलितार्को विजयताम् ।।

प्रिय भ्रातृ-गण

श्री जगदीश्वर की स्तुति-प्रार्थना के पश्चात् विदित हो कि प्रथमाङ्क द्वारा पूर्ण प्रतापी श्रीमान् स्वामी जी महाराज की दिनचर्या और सर्वत्र

पुराणी, जैनी, कुरानी आदि मतवादियों पर विजयी होना आदि बहुत सा वृत्तान्त संक्षेप रीति से वर्णन हो चुका है। अब इस द्वितीय अङ्क द्वारा ग्रन्थ-रचना आदि उनके बहुत से अद्भुत चरित वर्णन किये जाते हैं। निश्चय है कि इस ग्रन्थ को देख सत्पुरुषों को बड़ा ही हर्ष और लाभ होगा, जिनका पूर्वार्जित अच्छा होगा उनको बहुत-कुछ कर्त्तव्य भी सूझेगा।

द्वितीयाङ्क ग्रन्थ सूची

आर्य गण,

अब हम उन सद्ग्रन्थों का नाम संक्षेप व्याख्या-सहित लिख सूचित करते हैं जिनको श्रीमान् दिग्विजयी ने सनातन रीत्यानुसार महत्परिश्रम और व्यय से सर्वोपकारार्थ रच कर मुद्रित कराया वा करा रहे हैं। ये सब ग्रन्थ वैदिक यंत्रालय, प्रयाग और सर्व आर्यसमाजों में मिलेंगे—

अथ ग्रन्थ-सूचना

१. समस्तवेदभाष्यभूमिका
२. ऋग्वेद-भाष्य
३. यजुर्वेदभाष्य
४. संध्योपासन (संस्कृत और भाषा)
५. संध्योपासन (संस्कृत)
६. सत्यार्थप्रकाश
७. आर्योद्देश्यरत्नमाला
८. आर्याभिविनय
९. संस्कारविधिः
१०. भ्रान्तिनिवारण
११. सत्यासत्यविवेक (उर्दू)
१२. सत्यधर्मविचार (हिन्दी)
१३. गौतम-अहल्या की सत्य कथा
१४. शास्त्रार्थ काशी (संस्कृत व भाषा)
१५. शास्त्रार्थ काशी (भाषा व उर्दू)
१६. भ्रमोच्छेदन
१७. वर्णोच्चारण शिक्षा
१८. संस्कृत-वाक्य-प्रबोध
१९. व्यवहारभानु
२०. गोकरुणानिधिः
२१. अनुभ्रमोच्छेदन
२२. सन्धि-विषयः
२३. नामिकः
२४. तद्धितः
२५. सामासिकः
२६. अव्ययार्थः
२७. आख्यातिकः
२८. कारकीयः
२९. सौवरः
३०. पारिभाषिकः
३१. उणादिगणः
३२. गणपाठः
३३. अष्टाध्यायी
३४. निघण्टुः

प्रिय सुहृद्गण !

ये ऊपर लिखे सब ग्रन्थ अति सरल और सुगम होकर भी बड़े अद्भुत और विचित्र हैं। विशेषकर वेद-भाष्यभूमिका में तो व जिसके

गुण जानो जो कभी महाराज युधिष्ठर की मय-रचित सभा के सुने हों। अर्थात् उसको देख-सुन श्री जी महाराज के अनुरागी जन तो निःशंक हो अनुपम सुख लहते हैं, परन्तु विरोधियों की यह कैफियत हो जाती है कि वे उसको देखते ही निश्चय होने के पलटे अधिक भ्रम-जाल और महाविकट विस्मयावर्त में पड़कर बेढब प्रकार करते हैं; अर्थात् कहते हैं कि भाई, भाष्यभूमिका के देखनेवालो, खबरदार हूजियो। हम उसको हाथ में थामते ही अथाह नरक-कुण्ड में गिरे। तुम तो भी अपनी बुद्धि को काम में लाना, अथवा उन पण्डितों की सम्मति लेना जिनकी हम अपनी तिमिरनाशक तृतीय खण्ड आदि कई पुस्तकों के द्वारा अब तक बहुत कुछ धूल उड़ा चुके हैं।[1] सारांश यह कि भूमिका बड़ी ही चमत्कारी वस्तु है। इसलिए अब हम उसका कुछ आशय आगे प्रकाशित करते हैं। विशेषकर उतना प्रकाशित होगा जितना कि वेदों के विषय में आर्यों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए, क्योंकि बहुत से विरोधी लोग उन विषयों पर शंका कर बैठते हैं।

विदित हो कि श्रीमान् स्वामीजी महाराज ने प्रत्येक विषय प्रथम संस्कृत में फिर उसी को भाषा में लिखा है, परन्तु हम केवल भाषार्थ यहाँ लिखते हैं। अन्त में संस्कृत सहित भी कुछ लिख दिखावेंगे।

इति ग्रन्थ-सूचना

१. अथ वेदोत्पत्तिविषयः
२. अथ वेदानां नित्यत्वविचारः
३. अथ वेदसंज्ञाविचारः

अब देखिये आर्यगण,

भरतखण्ड से लेकर यूरोप व अमेरिका तक इस ऋग्वेद-भाष्य और भूमिका के लेने व देखने और सहायता करने वाले एक से एक विशेष गुणज्ञ गुणवान् विद्वान् बुद्धिमान् और धार्मिक राजे-महाराजे और बड़े-बड़े राज्याधिकारी आदि हजारों सत्पात्र और सत्पुरुष हैं। उनमें से थोड़ों का नाम यहाँ नीचे इसलिए लिखा जाता है कि इस ग्रन्थ के अवलोकन करने वालों को इन्हें देख ऐसों की बुद्धि में भ्रम डालने वालों की योग्यता भली-भाँति प्रकाशित हो जावे।

---

१. यहाँ तक जो मजमून ऊपर से आया है वह राजा साहब की प्रथम निवेदन नामी किताब को पढ़कर समझ लेना चाहिये, नहीं तो जैसा कि चाहिये, समझ में नहीं आवेगा।

ग्राहकाभिधान सूचीपत्रम्

नम्बर शुमार	नम्बर मुन्दर्ज भूमिका	नाम	पता
१	१	राजमान्य राजे श्री गोपाल राव हरि देशमुख	जज दक्षिण नासिक त्रिम्बक बम्बई हाता
२	४९	कृष्णराव बिट्ठल विंचरकर	जज दक्षिण सितारा
३	४७२	महादेव गोविन्द रानडे	जज पूना बम्बई हाता
४	२५	रामचन्द्र गोपाल देशमुख	जज गायकवाड़ गुजरात दक्षिण बड़ौदा
५	४०१	लालशंकर उमाशंकर	सबार्डिनेट जज पंडरपुर गिरगांव बैंक रोड बम्बई हाता
६	५०	प्राणलाल मथुरादास	डिप्टी कलक्टर, भड़ौच (गुजरात)
७	१६०	रा० रा० भास्कर बालकृष्ण निमये	डिप्टी इन्सपैक्टर नासिक
८	१५३	रा० रा० शिवराय बापूजी पराजपे बी० ए०	हैडमास्टर अंग्रेजी स्कूल, नासिक
९	२२	बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि	फोटोग्राफर बम्बई
१०	३८०	डाक्टर पाण्डुरंग गोपाल	गिरगांव बम्बई हाता
११	१४९	रावबहादुर विष्णु मोरेश्वर भिड़े	नासिक
१२	२४०	अण्णा साहब पटवर्धन	रईस आजम पूना बम्बई
१३	२४३	भाऊसाहब मेंउत्कर	रईस आजम पूना बम्बई
१४	१६०	रा० रा० श्रीधर वासुदेव टकले	दीक्षित जागीरदार नासिक
१५	५१२	रेवरेंड पिटास नर्डि फोर्स	छांदवारा सी० पी०

अथ चतुर्थो मयूखः

आर्यगण, पिछले तीन अध्यायों के द्वारा आपको श्री जी महाराज रचित वेद-भाष्यभूमिका का नमूना दिखा चुका। कहिये किस प्रकार प्रबल

आप्त प्रमाणों से वेदों का माहात्म्य और उनका नित्यत्वादि प्रकाशित किया है। धन्य है उनकी इस लोकोत्तर विद्या और परिश्रम को। श्री जगदीश्वर उनको पूर्णायु करे जिससे सृष्टि सुधरे।

अब आपको थोड़ा चत्मकार श्री जी-रचित भाष्यों का और दिखाता हूँ। यद्यपि यह आरम्भ मात्र ही यहाँ लिखा है। तथपि बहु लाभदायक होगा और इतने ही से समस्त ग्रन्थ की कैफियत और दोनों वेदों का आशय और विस्तार इस ग्रन्थ के अवलोकन करने वालों पर भली-भाँति प्रकाशित हो जावेगा। इतना ही नहीं, किन्तु और भी बहुत सी ऐसी आवश्यक बातें विदित होंगी जितनी कि वैदिक मत वालों को जानना परमावश्यक है। अब यह देखना चाहिये कि जिस ग्रन्थ के एक मन्त्र की व्याख्या पढ़ने से इतना लाभ है, तो समस्त के देखने, सुनने और पढ़ने से कितना लाभ न होगा।

अथ ऋग्वेद-भाष्यारम्भः

आर्य गरग—इसी प्रकार परम प्रवल प्रमाणों सहित (अग्निः पूर्वेभिः) इस दूसरे आदि मंत्रों का भाष्य होता गया है। ऐसा ही स्वरूप यजुर्वेद-भाष्य का भी जानो जितना कुछ कि उसका निदर्शन अवश्य (आवश्यक) है उतना आगे देख लीजिये।

इति ऋग्वेद-भाष्य-प्रदर्शनम्।

अथ यजुर्वेद-भाष्यारम्भः

आर्य गरग, इसी प्रकार के साम और अथर्ववेदों के भी भाष्य बनेंगे। कदाचित् कहो कि इन सब वेदों के भाष्य प्रथम ही से बहुत से आचार्य बना गये हैं, फिर इस नवीन भाष्य की क्या आवश्यकता थी? तो इसका उत्तर यह है कि निःसन्देह और अवश्य इन वेदों पर प्राचीन काल में ब्रह्मादिक ऋषि-मुनियों ने जो व्याख्यान अर्थात् ऐतरेय-शतपथ आदि नामों से ब्राह्मण-ग्रन्थ बनाये हैं वे सब उत्तम और परतः प्रमाण करने के योग्य हैं, परन्तु अब अर्थात् पुराण-मत-प्रवृत्त भये पीछे उव्वट रावण सायण, महीधर आदि आचार्यों ने अपनी आधुनिक विद्या के अनुसार जो व्याख्यान अर्थात् वेद-भाष्य रचे हैं वे अत्यन्त गर्हित और तुच्छ हैं क्योंकि उन्होंने अपनी तुच्छ बुद्धि और निन्दित मत के अनुसार उनका ऐसा घृणित अर्थ लिखा है कि जिससे संसार में अनर्थ फैल गया है। इन्हीं को देख ऐसे ही अनर्थकारक भाष्य यूरोप में प्रोफेसर विलसन और मैक्समूलर आदि कई एक विद्वानों

ने भी रचे हैं। जिसकी प्रवृत्ति से सर्वत्र वेदों पर शंका होने लगी और बहुतेरे लोग वेदों को आधुनिक ग्रन्थ बताने लगे। इस महान् अन्धकार के मिटाने के लिए परम दयालु पूर्ण प्रतापी श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने सनातन रीति के अनुसार यह परम श्लाघ्य वेदभाष्य रचा है जिसके अभ्यास और अवलोकन से वेदों का यथापूर्व महत्त्व प्रकाशित होता है। इस प्रशंसनीय भाष्य पर भी कितने ही आधुनिक विद्वान् पूर्वापर विचार किये बिना शंका कर बैठे, उन सबको श्री जी महाराज ने अच्छे प्रकार शान्त किया है। जो समाधान भ्रान्ति-निवारण, भ्रमोच्छेदन आदि पुस्तकों के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, वे सर्वत्र मिलते हैं, इसलिए उनको छोड़कर आगे हम उस एक समाधान को उदाहरणार्थ यहाँ और लिखते हैं जो अगस्त सन् १८७७ ई० में काशी और कलकत्ता कालिजों के संस्कृतज्ञ विद्वान् प्रिन्सिपल आदि की शंकाओं पर अंग्रेजी में लिखा गया था।

अथोदाहरणम्

सकल विद्वज्जन-शिरोमणि श्रीमान् स्वामीजी महाराज कहते हैं कि मुझे वकील हिन्द और यूनीवर्सिटी कालिज पंजाब के पत्रों से ज्ञात हुआ है कि कई एक साहबों ने मद्रचित वेद-भाष्य पर प्रतिकूल अनुमति दी है इसलिए मैं उनकी शंकाओं का उत्तर क्रम से निवेदन करता हूँ। प्रथम उन शंकाओं का उत्तर है जो मिस्टर आर० ग्रिफिथ, एम० ए०, प्रिन्सिपल, बनारस कालेज ने की है। पाँच हजार वर्ष के लगभग से वेद-विद्या जाती रही। महाभारत से पहले इस देश में सब विद्या ठीक-ठीक प्रचरित थीं परन्तु पीछे से पढने-पढाने के ग्रन्थ और रीति बिलकुल बदल गई। जब से अब तक वही अशुद्ध प्रणाली प्रचरित है, यद्यपि कहीं-कहीं के लोग वेदादिक सत्य ग्रन्थों को कण्ठ कर लेते हैं, परन्तु उसके शब्दार्थ को कोई भी नहीं जानता; न ऐसे कोई व्याकरणादिक ग्रन्थ अर्थ-सहित पढ़ाये जाते हैं जिनसे वेदों का अर्थ हो सके। आधुनिक जो महीधर आदि के बनाये हुये वेद-भाष्य देखने में आते हैं वे महाभ्रष्ट और अन्धकार को बढ़ाने वाले हैं। उनके देखने वालों को मद्रचित भाष्य ठीक समझ में नहीं आता। मेरा भाष्य शुद्ध वेदार्थ-बोधक और प्राचीन भाष्यों के ठीक अनुकूल है। वह तभी समझ में आवेगा जब लोग प्राचीन भाष्यादिक ग्रन्थों की सहायता स्वीकार करेंगे। मैंने प्रत्येक मन्त्र का अर्थ सत्य प्रतीत होने के अर्थ बहु प्राचीन आप्त व्याख्यानकारों का प्रमाण बहुत स्पष्ट पतेवार लिख दिया है। यदि ग्रिफिथ साहब ने प्राचीन भाष्य वा मेरे लिखे प्रमाणों और उदाहरणों को पढ़ा होता तो

कभी उनकी ऐसी विरुद्ध सम्मति न होती जैसी कि उनने हाल में दी है। उव्वट, सायण, महीधर, रावण आदि के रचे हुए भाष्य प्राचीन भाष्यों से समस्त स्थानों में विपरीत हैं। केवल इन्हीं भाष्यों का उल्था अंग्रेजी में विलसन और मैक्समूलर आदि प्रोफेसरों ने किया है। इसलिए मैं इनके भाष्यों को भी शुद्ध और न्यायकारी नहीं कह सकता। इन्हीं ग्रन्थों के कारण ग्रिफिथ साहब आदि लोग भी सन्देह मार्ग में पड़े हैं और मुझको यह कहकर दूषित करते हैं कि स्वामीजी ने अर्थ पलट कर अपने प्रयोजन के सिद्धार्थ दूसरे ही अर्थ नियत किये हैं। परन्तु उनका यह तर्क सर्वथा निर्मूल है। मैंने सर्वत्र ऐतरेय और शतपथादि नामक ब्राह्मण-ग्रन्थ और निरुक्त तथा पाणिनीय व्याकरणादि सत्य ग्रन्थों का प्रमाण देकर प्रत्येक मन्त्र का सत्य-सत्य अर्थ लिखा है। यदि ग्रिफिथ साहब उसको देखते तो कभी ऐसा न लिखते। विचार करता हूँ कि उनने मेरा भाष्य बिना ही देखे-भाले अपनी मनमानी अनुमति प्रकाशित कर दी है।

मैं नहीं समझ सकता हूँ कि क्यों ग्रिफिथ साहब मेरा वृथा श्रम समझते हैं, जब कि मेरे भाष्य लेने वाले हजार से अधिक बडे-बडे सत्पुरुष हैं और प्रत्यह नवीन जनों के निवेदन-पत्र मेरी पुस्तक लेने के विषय में बराबर चले आते हैं। मेरे ग्राहकों में से बहुत से अच्छे-अच्छे संस्कृतज्ञ और बहुतेरे अंग्रेजी और संस्कृत में पूरे-पूरे विद्वान् हैं। ग्रिफिथ साहब का यह अन्तिम लेख कि वेदों की ऋचाओं से बहुत से देवताओं के नाम प्रकाशित होते हैं, सो उनकी यह बात मुझको तब प्यारी लगे और विद्वानों के समीप प्रामाणिक ठहरे जब वे उस मतलब की कोई ऋचा मुझको लिख भेजें।

(अ) यद्यपि वेदों को शीघ्र दृष्टि से देखने से, देवताओं के नाम उतने दीख पड़ते हैं जितने कि स्तुति करने वाले हैं परन्तु पुराने व्याख्यात ग्रन्थों के अनुसार (कि जो ठीक आर्य धर्म विषयक हैं), वे अनेक नाम देवता वा मनुष्यों और वस्तुओं के नहीं ठहर सकते। अर्थात् वे सब तीन देवताओं ही के नाम से सम्बन्ध रखते हैं और फिर वे तीनों नामों की देवता भी पृथक्-पृथक् नहीं हैं, अर्थात् वे तीनों नाम एक ही परमेश्वर के हैं। निघण्टु अर्थात् वेदों के शब्दकोश के अन्त में तीन नामावली देवताओं की हैं। उनमें से पहली में अग्नि के दूसरी में, वायु के, तीसरी में सूर्य के पर्यायवाची नाम हैं। निरुक्त के अन्त भाग में जिसमें केवल देवताओं का वृत्तान्त है, यह दो बार कथन किया गया है कि देवता केवल तीन हैं (तिस्र एव देवताः)। इनसे अधिकतर अनुमान सिद्धान्त यह निकलता है कि केवल एक ही देवता है, यह

बात वेद के अनेक वाक्यों से भी सिद्ध होती है और यही आशय निरुक्त और वेद के प्रमाण के अनुसार अति सुगम और संक्षेप रीति से ऋग्वेद के सूचीपत्र में वर्णन किया है। इससे यह निर्णय होता है कि आर्यों के पुराने धर्ममार्ग की पुस्तकें केवल एक ही ब्रह्म को गाती हैं और सूत्रों से भी ऐसा ही सिद्ध होता है।

(ब) वेदों से ज्ञात होता है कि आर्य ऋषियों का धर्म-मार्ग केवल एक बड़े ब्रह्म के पूजन और श्रद्धा व भक्ति में था जिसको वे सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानते थे और जिसके सम्बन्धी गुणों को वे अत्यन्त पूजनीय वाक्यों में प्रकट करते थे और वे सम्बन्धित गुण उसकी तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। इनमें से प्रथम उत्पादक, दूसरी पालक, तीसरी संहारक नाम से वर्णन की जाती है।

(स) इन अति सत्य ध्यानों से पूर्ण विश्वास होता है कि चारों वेद एक ही ब्रह्म को गाते हैं जो सर्वशक्तिमान्, अनन्त, चिरस्थायी, स्वयंभू, संसार का द्योतक और पालक है। मैं इसके संग एक और ऋचा लिखता हूँ जिससे एक ही ब्रह्म निश्चित होता है। उससे आपकी शंका निवृत्त होगी। खूब जानिए कि आर्य लोग स्वाभाविक बुद्धि से सदैव अद्वैत-सेवी अर्थात् केवल एक ईश्वर ही को मानते थे।

(द) उसी उक्त ऋचा का एक चरण यह है जिससे निस्संदेह केवल एक ही ब्रह्म का निरूपण होता है ऋग्वेद की पहिली और १६४ और ४६ वीं ऋचा को देखो। स्पष्ट लिखा है कि उसी एक परब्रह्म को ज्ञानवान् इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि के नाम से पुकारते हैं। कोई कहते हैं कि वह आकाश में सपक्ष गरुत्मान् है और कोई कोई बुद्धिमान् उसी के अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नाम मानते हैं।

ऋग्वेद में प्रथम मंत्र है उसमें अग्नि शब्द आया है। उसका उल्था सी. एच. टानी साहब, एम. ए., प्रिन्सिपल, प्रेजीडेन्सी कालेज, कलकत्ता ने आग के अर्थ में अपने उस प्रथमोक्त ध्यान से किया है कि अग्नि भी एक पदार्थ प्रतिष्ठा का वेद में है। परन्तु अग्नि को तत्त्व मानकर किसी प्राचीन ऋषि-मुनि ने पूजन व आवाहन नहीं किया और अग्नि शब्द का जो स्वाभाविक अर्थ है वह केवल उन वाक्यों से लिया जाता है जिनमें लौकिक सम्बन्धी बातें हैं, परन्तु ऐसे वाक्यों में जहाँ ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, निवेदन आदि का प्रसंग होता है, वहाँ अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर का घटित किया जाता है। यह अर्थ कुछ मैंने मिथ्या कल्पित नहीं किया। इस प्रकार के युक्तार्थ ब्राह्मण और निरुक्त नामी ग्रन्थों में बराबर वर्णन हो आये हैं।

अन्त पर टानी साहब की जो यह सम्मति है कि मैंने जो भाष्य बनाया है वह इस कारण से रचा कि सायण और अंग्रेजी उल्थाकारों के भाष्य कट जावें अर्थात् अशुद्ध ठहरें। तो इस विषय में मैं कभी दूषित नहीं हो सकता हूँ। अगर सायण ने भूल की है और अंग्रेजों ने उसको अपना मार्ग-प्रदर्शक मान कर अंगीकार कर लिया तो भले ही करें, मैं जानबूझ कर भूल का काम नहीं कर सकता। परन्तु मिथ्या मत बहुत काल तक नहीं ठहर सकता। केवल सत्य ही ठहरता है और असत्य सत्यता के सम्मुख शीघ्र धुमैला हो जाता है। पण्डित गुरुप्रसाद हैड पण्डित, ओरियंटल कालेज, लाहौर ने यह बात कह कर कि स्वामी जी के भाष्य में कोई अशुद्धि छापे की कहे, सो नहीं है। मेरे प्रत्येक आशय को दूषित ठहराया है तथापि मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। उन्होंने मेरे भाष्य के छापने वाले का विश्वास माना, यह क्या थोड़ी बात है! परन्तु मैं कहता हूँ कि उसका भी दोष वे मेरा ही जानें लेकिन थोड़ा मुँह खोलकर कहें तो कैफियत खुले, नहीं तो क्या जान पड़े और जो वे मुझे दूसरे स्थल पर यह दोष लगाते हैं कि अपने ही पंथ का प्रचार किया चाहता हूँ, सो मैं ऐसी बातों को सुन अति पश्चात्ताप से कहता हूँ और समझता हूँ कि वे वेद-विद्या से बिलकुल अजान हैं। यदि उन्होंने प्राचीन भाष्यों का अवलोकन किया होता तो कभी ऐसा न कहते।

और तीसरा कलंक जो वे मुझे यह लगाते हैं कि इन्द्र, मित्र और त्वष्टा आदि शब्दों के अर्थ स्वामीजी ने अपनी ओर से गढ़े हैं, सो उनकी इस शंका के उत्तर में मैं उनको वेद-भाष्य के विज्ञापन का प्रमाण देता हूँ और एक प्रति साथ ही इस उत्तर के ऐसी लगाये देता हूँ कि जिसमें उन शब्दों का यथावत् वर्णन है। फिर भी इन सब बातों के परिणाम में मुझे निस्सन्देह हो यही कहना पड़ता है कि उनमें पुरातन संस्कृत विद्या अत्यन्त ही कम है।

चौथा दोष जो वे मेरे व्याकरण में यह आरोपण करते हैं कि परस्मैपद के स्थान में आत्मनेपद लिया है सो अब मैं इस बात का निश्चय कराने को कि खुद पण्डितजी व्याकरण-ज्ञान नहीं रखते, कैयट और नागेश आदि ग्रन्थों के कई एक प्रामाणिक उदाहरण पृथक् लिखता हूँ और उन स्थानों की नकल भी हूबहू उनको भेज सकता हूँ जिससे मेरा किया प्रयोग कैसा शुद्ध है यह प्रतीत यथेच्छा हो जाय और मैंने मौके पर पाणिनीय व्याकरण के प्रथमाध्याय के तीसरे पाद का ४७ वाँ सूत्र भी लिखा है, परन्तु बिना व्याकरण-बोध क्योंकर उनके समझ में आवे?

पाँचवीं शंका उनको मेरे एक छांद के प्रयोग पर उपस्थित हुई। वह अत्यन्त ही हास्यजनक है जो मैं उसका इस संक्षिप्त उत्तर में वर्णन करूँ तो असार विस्तार होगा। उनका समाधान, सो उसके लिये पैङ्गल सूत्र और उसके भाष्यकार हलायुधभट्ट का एक स्पष्ट प्रमाण पृथक् लिखता हूँ उसे देख शान्त होवें।

ज्ञान होता है कि पं० हृषीकेश भट्टाचार्य, द्वितीय पण्डित, ओरियंटल कालेज, लाहौर सर्वत्र पं० गुरुप्रसाद जी के ही अनुगामी हुए हैं। इससे उनकी शंकाओं का उत्तर वही समझना चाहिए जो पीछे लिख आए हैं। 'उपचारक' शब्द में उनकी एक शंका पृथक् है सो उन्हें यह बात सुझाने का कि मेरा अर्थ बहुत ही निर्मल है, मैं केवल पाणिनीय व्याकरण के प्रथमाध्याय के तीसरे पाद के ३२ वें सूत्र का प्रमाण देता हूँ। उसको देख पुष्ट होवें।

अब रहे पं० भगवानदास असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत, गवर्नमेंट कालेज लाहौर, सो उनकी कोई नवीन शंका नहीं है; इसलिए जो कुछ मैंने ऊपर कहा वही बहुत है, वे भी शांत होवें। इति। आर्यगण, इस प्रकार इन सब सशंकितों की 'शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु' करके श्रीमान् दयानिधि स्वामीजी महाराज ने इस आशय का उल्था अंग्रेजी में कराय उसकी बहुत सी प्रति छपवा उक्त सशंकितों के सिवाय बहुत से प्रतिष्ठित अंग्रेज व आर्यों के पास भेज गवर्नमेंट को प्रतिज्ञापूर्वक निश्चय कराया कि मेरा भाष्य यूरोप आदि के भाष्यों के विरुद्ध होने पर भी पुरातन भाष्य-सम्मत होने के कारण सर्वत्र आदरणीय होना चाहिए। इसके प्रचार से समस्त पाठशालाओं को भी बड़ा लाभ होगा। सम्पूर्ण सत्य विद्याओं की वृद्धि के सिवाय अपरिमित देशोन्नति के साथ अधर्म की निवृत्ति सत्य धर्म-कर्म की प्रवृत्ति और मोक्षान्त सुख की प्राप्ति होती रहेगी। तब से कोई दिग्गज तो चिंघाड़ा नहीं, श्वानोक्ति बहुत ठौर सुनने में आई उनको धुतकार भी हो गई और होती रहेगी। अस्तु!

"यथाकृतिस्तथाफलम्"। हमको अपने काम से काम, सो करते हैं; अर्थात् आगे इसके आपको आधुनिक आचार्यों के रचित वेदभाष्यों का कुछ निदर्शन दिखलाना बहुत अवश्य (आवश्यक) है, क्योंकि 'लोकापवादात् भयम्' अर्थात् लोग कहेंगे कि अपनों की स्तुति, औरों की निन्दा करना जनरीति है, सो वहाँ लेशमात्र को भी नहीं है, हम ज्यों का त्यों दिखा रहे हैं।

देखिये महीधराचार्य जी की यजुर्वेद-भाष्य-रचना को पृष्ठ ७०८ से लेकर ७३२ तक। कैसा भ्रष्टार्थ अश्वमेध-प्रकरण में मंत्रों का किया है। सत्य पूछिये तो ऐसा असम्भव आशय बाल-भाषणों का भी कभी किसी ने न सुना होगा। और आचार्य जी ने तो ग्रन्थ ही पूरा किया है। पोप लोग भी इन्हीं का दम भरते हैं। हा, कितना खेद ?

अथ महीधरभाष्यम्—इति महीधरभाष्यनिर्देशनम्

आर्यगण, देखा आपने महीधर भाष्य ! कहिये जैसा ऊपर लिख चुके उससे अधिक निंद्य है वा नहीं ? जिन पाठकगणों को संस्कृत में अभ्यास न होवे पैसा टका दक्षिणा देकर किसी नामी पोपदेव जी से इसका अर्थ सुनकर महीधरादि भाष्यकारों को साष्टांग नमस्कार करें। वाह, धन्य है उनकी विशाल बुद्धि को। उनके सिवाय कौन ऐसा वेदों का गुप्त भाव बतावे। मैंने बहुतेरा साहस इसका भाषार्थ प्रकाशित करने में किया, परन्तु लेखनी न चली। यजमान की स्त्री घोड़े के साथ बीच यज्ञशाला में हजारों मनुष्यों के सम्मुख अश्वमेध नाम के यज्ञ में मैथुन करवा रही है। उस समय उससे पुरोहित हँसते हैं और वह भी उनको वैसा ही उत्तर देती है—इत्यादि जो-जो अश्लील और असम्भव कर्म इन महात्मा जी ने वर्णन किया है, ऐसा कभी कोई मूर्ख मनुष्य भी मुँह से नहीं निकाल सकता। कहिये, कैसे किसी को वेदों पर श्रद्धा होवे ? और जो ऐसे भाष्य हों तो क्यों वेद सर्वथा सर्वत्र भ्रष्ट न कहावें ? इसीलिए श्रीमान् वेदोद्धारक महाराज ने अति प्राचीन रीति का नवीन अपना भाष्य रचकर सब जगत् का भ्रम और अंधकार दूर किया है। देखिये, इन्हीं मन्त्रों का अर्थ श्रीमान् ने परमेश्वर और राजा-प्रजापालन विषयों में कैसा सर्व सत्य प्रमाणों से सिद्ध किया है। तभी हम उनको बहुविध धन्यवाद देते हैं। ऐसा ही समझना और करना सबको सदैव उचित है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदयानन्दसरस्वती-दिग्विजयार्कीय-द्वितीयाङ्के श्रीभाष्यप्रदर्शनं नाम चतुर्थो मयूखः ॥

अथ पञ्चमो मयूखः

तत्रादौ सामाजिकचरित्रम्

आर्य गण, पिछले चार मयूखों के द्वारा आप लोगों को श्रीमान् सकल-विद्या-निधान श्री स्वामी जी महाराज की ग्रन्थ-रचना भली-भाँति दर्शा चुका। इतना ही नहीं, किन्तु इस एक प्रसंग से बहुत सी परमोपयोगी बातें सब पर प्रकाशित कर दी गई हैं।

प्रसिद्ध है कि ग्रन्थ-रचना जैसी कि चाहिये थी, वैसी बिना एकान्त स्थिति के नहीं बन सकती, परन्तु परम प्रतापी श्रीमान् बराबर देशाटन करते हुए इस काम को कर रहे हैं। सहस्रशः धन्यवाद है उनके पुरुषार्थ को। देखिये, प्रतिदिन सम्मुख आये हुए सैकड़ों मनुष्यों को यथेच्छा उत्तर देकर तथ्य समझाना, नियमित समय पर सभा में जाकर तीन घण्टा व्याख्यान देना, और ऐसे-ऐसे अतुल ग्रन्थों को बताना—ये तीनों देशोपकारी काम वे सतत करते हैं। सिवाय इसके दैहिक, आत्मिक और सर्व सामाजिक कार्य भी प्रत्यक्ष यथावत् होता है। परन्तु सदैव एकरस और निरालस्य ही देखे गये, उनके समीप कोई राजा आये चाहे रंक। वह उत्साही हो या विरोधी, एक हो अथवा अनेक—परन्तु हमने श्रीमान् को उन सबके साथ एक ही सा कृपालु और आनन्दमग्न पाया।

विक्रमी संवत् १९३२ से लेकर अब तक अर्थात् सात वर्ष के भीतर लाखों मील चले, करोड़ों मनुष्यों से मिले और पूर्वोक्त सब ऐसे ग्रन्थ बनाये कि जिनके प्रकाश और प्रभाव से हजारों वर्ष के भूले लाखों मनुष्य सुमार्ग लगे। और बम्बई, लाहौर, फिरोजपुर, अमृतसर, गुरदासपुर, रावलपिण्डी, वजीराबाद, गुजरात, गुजरांवाला, झैलम, मुलतान, लुधियाना, सहारनपुर, रुड़की, मेरठ, मिर्जापुर, दानापुर, पिशावर, देहरादून, मुरादाबाद, फर्रूखाबाद, बरेली, रामगढ़, कानपुर, बदायूं, बनारस, प्रयाग, मैनपुरी, आगरा, देहली, एटा, नरसिंहपुर, आदि बहुत से नगरो में आर्यसमाज स्थापित हुए और होते जाते हैं।

सन् १८८० के आरम्भ में पायनियर अखबार वाले ने कुल ५० समाज और तीन लाख आर्य संख्या लिख प्रकाशित की थी। पश्चात् एक परिवत्सर के थियोसोफिकल सोसाइटी के सभापति अमेरिका वाले कर्नल आल्काट साहब ने (जो कि २० मास से इस भरतखण्ड में आ बसे हैं) जहाँ-तहाँ अपने व्याख्यानों में ६० समाज और बेशुमार उनके अनुयायी वर्णन किये हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन दिनों ७० समाज और पाँच लाख के लगभग उनकी मनुष्य संख्या है। आगे जैसा काल बढ़ता जाय वैसी ही ये दोनों संख्या बृद्धिगत समझते रहो। इन समस्त समाजों की कर्त्तव्यता का जानना सो आगे लिखे उनके नियमों से प्रकाशित होगा।

अथ सामाजिकनियमाः

कहिए आर्य गण, कितने निर्मल और श्लाघ्य ये सब नियम हैं। यदि ठीक-ठीक इन पर लोग चलें तो क्या करना बाकी रह जाय। भाई हो, मनुष्य

जन्म भी सफल होगा, जब इन परम प्रशस्त और सर्वमान्य नियमों पर तन-मन-धन से आरूढ़ होंगे। जिनको अपने और अपने देश के कल्याण करने की इच्छा होवे, अणुमात्र अब विलम्ब न करें, क्योंकि जितनी देर करेंगे उतनी ही हानि होगी और जानबूझ के हानि कर लेना बुद्धिमत्ता नहीं। इसलिए चेतो, चेतो, चेतो और झटपट छुटो पोपों के जाल से। देखो, ऊपर जो हम पाँच लाख आर्य-संख्या लिख चुके हैं, ये कोई इस सात वर्ष के भीतर इतर देशों से नहीं आ गए। न आकाश से आकर गिरे हैं। ये सब के सब तुम्हारे ही देश-निवासी, इष्ट-मित्र और सुजन-सम्बन्धी हैं। काल की बात है कि ये सब लोग मूर्तिपूजक ही थे। टुक देखो, और सोचो कि ये क्यों अपने बाप-दादों की चाल-ढाल त्याग क्षणमात्र में और के और हो गए। यदि कहो कि अज्ञानता से तो हो नहीं सकता, क्योंकि यह धर्म ऐसी वस्तु है कि इसका परित्याग सहसा कोई भी नहीं कर सकता। कहो, संवत् १९२४ के गदर का क्या कारण है? देखो, मुसलमानों ने अपने समय में बड़े-बड़े राजा-रईस और ब्राह्मणादिक को परधर्म छोड़ने के अर्थ कैसा कैसा जोरोजुल्म किया। लोगों ने अपने प्राण गँवाए, पर धर्म नहीं छोड़ा। पादरी और ईसाई लोग सोचो, कैसे-कैसे यत्न करते और नाना प्रकार के लोभ-लालच दिखाते हैं। परन्तु उनका सब रुपया, प्रयत्न तथा परिश्रम व्यर्थ जाता है। यदि हजारों में कोई एक निर्बुद्धि या लालची वा कृतघ्नी वा कुसंस्कारी फँस भी गया तो वह दूसरे ही दिवस रोता और जन्मभर पछताता है। जब देखता है कि अब मैं किसी प्रकार इधर नहीं मिल सकता, तब लाचार हो उन्हीं में कालक्षेप करने लग जाता है। ऐसों में जो मूर्ख निर्लज्ज होते हैं वे मनादी भी करने लग जाते हैं; परन्तु ऐसे बहुधा वही होते हैं जो अल्पावस्था में किसी प्रकार ईसाइयों के हाथ पड़ गए वा कोई चाण्डाल जाति के हुए। अब इस प्रकार बलवत्तर यह धर्म-संकट है तो फिर कहो कि आप लोग वृथा आर्यों की तर्फ से भ्रम में पड़े हो। कोई कहे कि आर्यसमाजियों में कोई विद्वान् तो अब तक हुआ ही नहीं, सो भी अत्यन्त भूल है। नेंक नीची[1]

---

१. **नोट**—थोड़े दिन हुए तब मुकाम कलकत्ता में पण्डितों की एक सभा हुई थी। सभा क्या थी मानो, ठीक कुहक लोगों का एक जलसा था। कैफियत इसकी यह थी कि जो-जो पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न पूछते गये, उस-उसको सुब्रह्मण्य शास्त्री उनकी प्रसन्नता के अनुसार वैसा ही साधते गए। जैसा कि उक्त पण्डितजी महाराज को अभिमत था और शास्त्री जी जो शब्द मुँह से निकालते थे उसको सब पण्डित लोग वाह वा जी, वाह वा,

दृष्टि कर देखो, और इस पुस्तक के पृष्ठ से लेकर तक लौटो पलटो।

बहुत ठीक, अद्भुत ही ठीक कहते गए। बस थोड़ी ही देर में सिद्ध कर प्रसिद्ध किया कि स्वामी दयानन्द जी का कहना सब अशुद्ध और पण्डित महेशचन्द्र जी का विचार परम शुद्ध है। इस पर अखबार बिरादर हिन्द भी बहुत कुछ उछले उनको जामे से बाहर हुए देख मेरठ समाज ने फिर लौट उसी पिंजरे में किया जिसमें कि वे प्रथम थे।

खुलासा उसका यह है, कि 'मेरठ-समाचार' कहता है कि हम मानते हैं एडीटर साहब बिरादर हिन्द की इस बात को कि मूर्तिपूजकों में सब नर एक ही साँचे के ढले और बेईमान नहीं हैं। परन्तु यह कहना तब ठीक था जब कोई ईमानदार मूर्ति-पूजक श्री जी महाराज-रचित ग्रन्थों को पढ़ डाले उस प्रकार के इतर ग्रन्थों से मिलाकर काइल हो आर्यसमाजी न बन गया होता। इन दिनों जो विद्वान् हमारे समाजों में हैं, सोचें कि वे कहाँ से आये। उनमें से बहुतेरे स्वामी जी के वेद-भाष्य बनने से प्रथम मूर्ति-पूजक थे। बहुत से ऐसे हैं कि जो उक्त भाष्य-रचना से पूर्व ही अपनी पूर्ण विद्या-बल से वेदों का मुख्यार्थ समझ मूर्ति-पूजा त्याग चुके थे। परन्तु ये सब कुल-परम्परा से मूर्तिपूजक थे और बहुत काल तक खुद भी मूर्ति-पूजा करते रहें। जब चित्त में संदेह उत्पन्न हुआ तब विचारार्थ उद्यत हुए। निदान जान गये कि मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है। यों तो आर्यसमाजों में संस्कृत विद्या के सैकड़ों उत्तमोत्तम विद्वान् हैं परन्तु बाज साहब तो ऐसे हैं जिनको अपने देश का अलंकार कहना चाहिए। जैसे बम्बई आर्यसमाज के सभापति श्रीयुत रावबहादुर गोपाल राव हरि देशमुख, लंदन के संस्कृत-विश्वविद्यालय के मेम्बर श्रीयुत श्यामजी, कृष्ण वर्मा, हैदराबाद सिंध के रानडे साहब, बम्बई के कुंठे साहब, मुरादाबाद के मुन्शी इन्द्रमणि जी, सहारनपुर वाले पं० लक्ष्मीदत्त जी, मुलतान के पं० कृष्णनारायण जी आदि।

असल मतलब यह है कि 'जिन खोजा तिन पाइया पर गहरे पानी पैठ'। भला, जिन बेचारों ने कभी खोजा ही नहीं, न इसका उनको कुछ ध्यान, न उतनी विद्या, वे क्या पावेंगे? बस खण्डन हो गया परन्तु और भी सुनो। बहुत से मूर्तिपूजक विद्वानों से जिन्हें हम पोप कहते हैं हमको प्रसंग पड़ा जिससे यह बात खुल गई कि उनको अन्तःकरण से पूर्ण निश्चय हो गया कि स्वामी जी जो कुछ कहते हैं व लिखते हैं वह सब सत्य है। कितनों ही ने तो स्पष्ट कह भी दिया कि भाई स्वामी जी महाराज की प्रशंसा हमसे हो नहीं सकती, परन्तु जो हम अपना निश्चय सर्वत्र प्रकाशित करें तो सेर भर

कपाट खुल जायेंगे और जान जाओगे कि इन समाजों में बहुत से ऐसे बड़े-बड़े विद्वान् और वेदशास्त्र के जानने वाले सत्पुरुष मौजूद हैं कि जिनके सम्मुख पोप तो क्या, किसी पोपराज को भी साधारण बात न कहते बनेगी। फिर शास्त्रार्थ करना कैसा ? सिवाय इसके, परमात्मा ने आप हिन्दू नामधारियों को भी आँख, कान, मुँह और बुद्धि दी है। थोड़ा काल खर्च कर इन समाजियों के पुस्तक देखो। व्याख्यानों को सुनो। जी में आवे वह पूछो और उनके दिये उत्तरों को एकान्त बैठ विचारो कि कौन सा पक्ष सत्य है और ठीक मार्ग न जानने से अब तक अपने देशवासियों को क्या-क्या हानि हुई और जो अब भी सत्य-मार्गालम्बी न होंगे तो क्या-क्या दुर्दशा न होगी। परन्तु यह ठीक समझ में तभी आवेगी जब पक्षपात छोड़ विचार करोगे और जो पोपों ही की बहकावट में पड़े रहे तो अवश्य सड़ते और बहते कहीं तो भी जा डूबोगे। इसलिए जो किनारे लगना है तो शीघ्र सत्य-रूपी नौकाश्रित हो कर जगद्विख्यात श्रीजी महाराज की आज्ञा पर चलो, नहीं तो गंधर्वसेन की कहावत सिद्ध होगी।

वह कथा इस प्रकार है कि एक नगर के चौकीदार ने प्रातःकाल चौकी पर जाकर रपट दी कि रात सब मेरे मुहाल (मुहल्ला) में खैर सल्ला रही, पर गंधर्वसेन मर गए। जमादार ने शोक के साथ तुरन्त वैसी ही रपट कोतवाल को जा सुनाई। उसने बड़े दुःख के साथ दीवान रियासत तक वह खबर पहुँचाई। वे वैसे ही बहुत उदास दरबार में पहुँचे। दरबारियों ने दीवानजी को उदास देख अपनी सूरत उनसे भी अधिक गमगीन बना कर उनसे बाइस-उदासी पूछा। उन्होंने भारी उसाँस खींच वह हाल कह सुनाया।

आटे से भी जायें। बिरादरी में काला मुंह हो सो जुदा। पं० नन्दकिशोर साहब भरतपुरी और पं० कुंदनलाल साहब नजीबाबादी यद्यपि अभी मूर्तिपूजक ही हैं, परन्तु स्वामी जी की बात को मिथ्या कहने वालों से जुट जाते हैं। पं० इश्कलाल साहब का जो कुछ मासिक किसी समाज में नियत हो जाय तो देखो कैसा जी खोलते हैं। पं० श्यामदास जी अमृतसरी साफ कहते हैं कि कोई आकर हमको स्वामी जी की अशुद्धि दिखावे तो सही। इसी प्रकार के हम चालीस एक से पण्डितों का नाम बता सकते हैं कि मूर्तिपूजक तो हैं, पर हठधर्मी नहीं। कनाऊँ वाले बाबू पृथिवीसिंह साहब, शपथपुरस्सर कहते हैं कि हमसे काशी के स्वामी विशुद्धानन्दनजी ने स्पष्ट कहा है कि निस्संदेह पं० दयानन्दजी का वेदभाष्य बहुत ठीक, सर्वांग-शुद्ध और अतिमान्य है; परन्तु ऐसा सब के सामने कहें तो सारी प्रतिष्ठा धूर में मिल जाय। बस, अब बुद्धिमान् विचारें कि इस जगत् की क्या लीला है।

सुनते ही दरबारी लोग झूठसच आँसू बहाने लगे। यह खबर धीरे-धीरे राजा साहब के भी गोशजद (कर्णगोचर) हुई। सुनते ही बोले, हाय बड़ो गजब भयो। घण्टा भर सन्नाटा रहा, फिर हुक्म हुआ कि दीवान जी से कहो कि दरबार बरखास्त कर दें और जल्दी भद्र कराने को नाऊ पठवें। निदान, क्या राजा, क्या प्रजा, सबने खूब भद्र कराया। चार दिन बाद किसी दूसरे राज्य के कोई प्रतिनिधि (एलची) आए। उन्होंने मुलाकात के समय सब का कुरूप देख बड़े अदब के साथ पूछा कि हुजूर, इस दरबार के भद्र का कारण क्या हुआ? राजा साहब ने चौंककर कहा 'एं' क्या अब तक आपके वहाँ गंधर्वसेन की खबर नहीं आई? वाह, तुम्हारी रियासत में तो बड़ा ही अंधाधुंध है। इधर दरबारियों ने भी हँसकर दाद दी। बेचारे प्रतिनिधि साहब प्रथम तो कुछ लज्जित से हुए, फिर ढीठ हो बोले कि हुजूर गंधर्वसेन कौन थे? राजा साहब बोले, "जे हम का जाने", दीवान जी से पूछो। दीवान जी बोले कि हुजूर, ठीक हाल तो मोऊ को नहीं मालुम। मो से तो कोतवाल ने कही थी। यों होते-होते फिर लौट चौकीदार के सिर आई। उसने भकुश धोबी पर उतारी। वह रोबरू दरबार के हाजिर किया गया। पूछा गया, क्यों रे धोबीवाले, गंधर्वसेन के मरने की खबर तूने इस चौकीदार से कही थी? वह हाथ जोड़कर बोला कि हाँ हुजूर, कही तो जरूर हती। कोतवाल ने घूमकर कहा, अच्छा तो बता वे को हते? बोला, हते तो कोऊ नहीं, वो तो हुजूर के गुलाम को गधा हतो। यह सुनते ही प्रतिनिधि साहब ने मुँह को रूमाल लगाकर अपनी हँसी रोकी। राजा सहित दरबार चुप और आँखे तले धरती की ओर।

कहिये आर्यगण, क्यों यह दरबार इस प्रकार आज लों बदनाम, क्यों इसकी मूँछ मुँडा और क्यों दूसरों के आगे इसको ऐसा लज्जित होना पड़ा। केवल बिन सोचे विचारे काम कर बैठने से वा कुछ और? बस, यही दशा पोप प्रचारित धर्म की जानो! सैकड़ों वर्ष से मुसलमान, जैनी और ईसाई इनके धर्म की धूल उड़ावें और वे चुप सुनें। यों होते-होते सर्वत्र वैदिक धर्म घृणित हो गया। हजारों अपने हकीकी भैया हाथ से निकल गये। अर्थात् वैदिक धर्म छोड़ जैनी, मुसलमान और ईसाई हो गये और होने को थे। हाय, कैसा शोक और अपार यह दुःख था कि जिसको श्रीमान् परम दयालु स्वामी जी महाराज ने नरसिंह-रूप धारण कर दूर किया। नहीं तो न मालूम, अब तक और कितने हमारे भाई-बेटा हमसे न बिछुड़ जाते। अर्थात् जितने ये नवशिक्षित युवा इन दिनों पढ़कर स्कूल, कालिज छोड़ते उनमें से बहुत कम अब लों घर के रहते। खैर, गुजरी जो वह बला। बूट,

कोट, पतलून और चुरट तक ही रही। अब तो हमारे दस वर्ष के लड़के ईसाइयों के नाक में दम करते हैं। इसलिये कहा जाता है कि यारो, चेतो और आंख से बंधी अपनी पट्टी खोलो। अपने गये दिन फिर कर फिरे समझो। देखो अखबारों को, वही जैनी आदि लोग अब धड़ाधड़ तुम्हारा वैदिक धर्म स्वीकार कर रहे हैं। कहो, यह किस का प्रताप, जिनका तुम अब लौं विश्वास करते और दम भरते हो वे तो डुबो ही चुके थे। अर्थात् धन, विद्या, बुद्धि, चतुराई और राजपाट तो खो ही चुके थे। भाई, बेटा और जानहार (जाने वाले) थे सो बच गये। यदि इन पोपों में कुछ सत्य होती तो अवश्य उसके द्वारा वे लोग वेदद्वेषियों का मुख ध्वंस करते। जब कहीं कोई एक भी ऐसा न कर सका तो फिर क्यों कर ये लोग विद्वान् वा बुद्धिमान् कहे जा सकते हैं? उन्होंने तो वेद-रक्षा के ठौर अपनी तोंद-रक्षा को मुख्य धर्म समझ रक्खा है। जब उसकी रक्षा में बाधा दीखी तभी आर्य-समाजों के मिटाने की धुन रचते। और उनका नाम धर्म सभा रख; हाय-तोबा मचाने लगे। पर मारते मर्द का सामना करना बहुत दुर्घट होता है। दूर से ही बहक कर छूंछो सन के गोले चलाने लगे। भला क्योंकर आफ और बम्ब के गोलों के आगे वे ठहर सकते थे। सब उड़ गये और उनके ठौर बड़े-बड़े गार पड़ गये। निदान चार दिन की टर फिस करके सबके सब घायल से घर पड़े। "हाय टका! हाय टका!" पुकार रहे हैं और उपकार मानने के वदले हजारों दुर्वचन श्रीमान् को सुनाते हैं। अनेक मिथ्या दोषों से आर्यों की सभा और सभासदों को दूषित करते हैं। उनके चलन, व्यवहारों और विवाहादि कार्यों में हानि पहुँचाने में प्रयत्न करते हैं। बहुतों ने अपने मेली कुछ आदमियों को ले उनका शबल (बनावटी) आर्य बनाय, उनको सर्वत्र घुमाय, उनसे पश्चाताप करवाय, प्रायश्चित देना प्रसिद्ध किया है।[1] इसलिए जिससे फिर कोई आगे लोग ब्राह्मणादिक

१. देखिये आर्यगण, इनका बुद्धि-वैचित्र्य! सर्वजगत् के उपकारक, सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रचारक आर्यों को प्रायश्चित के योग्य ठहरावें और नीचे लिखे समस्त दुराचारियों को, लीन, कुलीन और परम प्रवीण बनावें। "आँखों के अंधे नाम नैन सुख वा कमल नैन।" इस कहावत को भला सिवाय ऐसों के और कौन सत्य कर दिखावे! वाह पोपजी, वाह, धन्य है! आप की विद्या और चतुराई। उसी का यह प्रभाव है कि इतर जातीय सभ्यों के सदृश तुम्हारे सजातीय और स्वदेशीय भी तुमसे घृणा करने लगे। तुम लोग तो आयुधारा के किनारे जा लगे, परन्तु बड़ा भारी खेद है हमको तुम्हारे सन्तान का; सोचो; उनकी क्या दशा होगी?

उत्तम वर्ण के कहावें, परन्तु पशु-पक्षियों को स्वहस्त से मारें और खायें तथा होटलों में भी खाते पकड़े जावें और बहुतेरे अफर-अफर कर मद्य पियें। गांजा, चरस और चंडू की नींद में उड़ावें। महाभ्रष्ट, कामी, कुचाली और कुपात्रों को आचारी, पुजारी और कुल पूज्य कुलाचार्य गुसाईंकह कर उनकी जूठन और मूत्राबृत वस्त्र के निचोड़न को महाप्रसाद मानें और पावें और उनको अपनी स्त्रियाँ समर्पण करें तथा भंगी, चमार, बोहरे और मुसलमान मूँड मुंड़ाय, संत महन्त बन इनके माल खावें और अपने हस्त का इनको भी खवावें तथा यहाँ से कारे पानी तक रहकर सातों जात का खाय आवें, परन्तु घर आये पीछे ज्यों के त्यों बाजपेयी बन जावें। जुवा खेलें, चोरी करें और करवावें, धनिकों के यहां भड़ुओं का सा काम देवें। नाचें, मटकें, गावें और नकलें करें तथा उनकी गाली, जूती और वेश्याओं की भी दस्तूरी खावें तथा त्रिवेदी और चतुर्वेदी ही बनकर पुजें। बुड्ढों को अबला कन्या ब्याह कर रोकड़ लेवें और उनकी शादी करवाय, आयु भर सारा कुटुम्ब उसका माल खावें परन्तु पवित्र ही जाने जावें। रूप की खानि विवाहिता को छोड़ चमारी, चूहरी और यवनी को भी उसके स्थान यावज्जन्म बिठा लें और विधवा-सधवा, अपनी, पराई, मातृ-सम चाची, भाभी, बुआ, मौसी, गुरु-स्त्री और बहन-बहू-बेटी को भी न बचावें। मंदिरों और तीर्थ-स्थानों में परस्त्रियों को घूरें और दाँव परे वहीं धर मारें, तथापि भगत जी कहावें। लड़कों के साथ वृथा ही अपना अमूल्य वीर्य बहावें, अनन्त गर्भ गिरावें और तुरंत के हुए लड़का-लड़की और चलते-फिरते आदमियों को मार फेंके पर बुरे न जाने जावें। प्रतिदिन गंगा, तुलसी, शालिग्राम उठाकर हजारों मिथ्या गवाही देवें और सत्य गवाही आ पड़े पर मुंह छिपावें। अनेक जाल फंद फरेब कर घात-पात करें और अनेकविध लोगों का धन धरती-जोरू छीन अपनी कर लेवें, पर कदापि दूषित न ठहरें। कसाइयों के हाथ गौ बेचें, कटवावें तथापि गंज के अग्निहोत्री और गंगा-यमुना के प्यारे पुत्र ही बनें और मानें पूजे भी जावें। ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के सब घातकी और महापातकी पोपों को टका देने के कारण उनके मत में लीन और उसी टका न देने के कारण आर्यसमाजी अतिशुद्ध होने पर भी मलिन ठहराये जावें। वाह रे न्याय! इनके समाजों में न जा मिले और जो हैं वे डरकर इधर आ जावें बाज और फौजदारी आकर बैठे। अन्त को कोई जुर्माना देकर आये। कोई जुर्माना देने और मुचलका लिखने के सिवाय कारागार-सेवी भी हुए, यहीं तक नहीं, किन्तु ये लोग श्रीमान् के प्राण-हरणार्थ भी बहुविध बल कर चुके हैं और यह काम नगर फर्रुखाबाद तथा

काशी आदि कई स्थानों में हुआ। निदान जब कोई उपाय काम न आया तब हार मान चुप हुए। इस प्रकार के स्वार्थी कृतघ्न पातकी लोगों के समागम से किसका कल्याण हुआ वा होगा वा होने को है? और जो ऐसे लोग सभ्य कहावें तो कहिये, राक्षस किनका नाम धरा जावे? मूर्तिपूजा को परम धर्म बतावें परन्तु उस मत के पुष्टि करने वालों पर उस विषयक कोई विपत्ति आ पड़े तो कभी उसके सहायक न होवें। देखो, मुरादाबाद के मुन्शी इन्द्रमणि जी पर पारसाल मुसलमानों ने कैसी विपत्ति ला डाली थी कि जिससे भरत खण्ड भर में हलचल पड़ गई। वृथा उन पर ५०० रु० जुर्माना हुआ। सैकड़ों रुपया मालियत के पुराण और मूर्तिपूजा-पुष्टि करके उनके बनाये हुए सब ग्रन्थ जलाये गये परन्तु किसी पापोक्त धर्म सभा वाले ने उनकी मदद न की। धन देना तो दूर, तन वा मन तक किसी ने उस तरफ न लगाया।

आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने एक प्रार्थना-पत्र अपनी गवर्नमेंट को इस विषय में न्याय होने के लिये लिखा था। उस पर समस्त आर्यसमाजियों के हस्ताक्षर हुये। पीछे विचार हुआ कि इस पत्र पर पोप धर्म सभा वालों के भी हस्ताक्षर हो जायँ तो अच्छा है। निश्चय है कि वे लोग कर भी देवेंगे क्योंकि अनर्थ वास्तव में उन्हीं के मत पर है, परन्तु विचार हीनों ने हस्ताक्षर न किये। मुख्य सभासद ने वह पत्र द्वितीय सभासद के पास ले जाने को कहा, द्वितीय ने तृतीय के। इसी प्रकार सब पंचों ने पत्र दर्शन करके उलटा दिया। इस सभा एक के पंच साहब तो पत्र देख ऐसे चौंके मानो पत्र नहीं वह सर्प था। चट पीछे दोनों हाथ समेट कर बोले कि मुझको इससे कुछ वास्ता नहीं, चाहे हिन्दू मरें चाहे मुसलमान।

कहिये भ्रातृगण, इसी का नाम धर्म सभा है? यदि इस समय आर्यसमाज सर्वत्र बन गये होते तो इस न्यायकारी में गवर्नमेन्ट के भी राज्य में यवनों के हाथ से भरतखण्ड का धर्म बचना अति कठिन हो जाता। अब यहाँ और कुछ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि हजारों अखबारों के द्वारा यहाँ से विलायत तक प्रसिद्ध हो चुका है कि सब आर्य-समाजों से हजारों रुपया चन्दा एकत्र हुआ और तीन दर्जे तक यह मुकद्दमा आर्य समाजियों ने तन-मन-धन से पहुँचाकर मुसलमानों से विजय प्राप्त की। यद्यपि इस प्रबल चिन्ता में एक वर्ष से अधिक दिन व्यतीत तो हुये, परन्तु भरतखण्ड-वासियों का धर्म रहा। यदि किसी प्रकार यहाँ मनोरथ-सिद्धि न होती तो अवश्य यह मुकद्दमा लंदन पहुँचाया जाता।

अब कहें कि सत्यधर्म-रक्षक विचारशील लोग कि आर्यसमाजों की स्थिति से कैसा क्या लाभ अपने देश को हुआ और होगा। सैकड़ों बल्कि हजारों वर्ष पीछे यह एक नया एक्यता का उदाहरण हाथ आया।

मैं लिख चुका हूँ कि प्रथम खण्ड के प्रथम मयूख में कि वेदों की आज्ञानुसार सर्वत्र सभाओं का नियत होना परमावश्यक है, क्योंकि एक्यता जो देशोन्नति की भारी जड़ है, वह बिना ऐसी सभाओं के ठहर नहीं सकती और देशोन्नति अर्थात् संसार का उपकार करना—इन समाजों का मुख्य उद्देश्य है। ऐसा इन समाजों के छठे नियम में भी स्पष्ट लिखा हुआ आपको दिखा चुका। फिर यह कब हो सकता था कि आर्यसमाजी देश पर आती विपत्ति देख धर्म सभा वालों की नाईं अलग हो जाते ? और जो ऐसा करते तो उनका भी धर्म बनावटी कहा जाता और जो धिक्कार अब मूर्तिपूजकों पर चारों ओर से पड़ रहा है उससे अधिक इन पर पड़ता, और जब कभी आगे चूकेंगे तब पड़ेगा। भाई हिन्दूलोगो, यह मुन्शीजी वाला प्रसंग कोई सामान्य बात नहीं थी। न जाने उस समय आप लोगों ने क्यों चूड़ी पहन लीं। लज्जित हो, अब भी लज़्जित हो और आगे को चेतो ! यद्यपि प्रसिद्ध है कि तुम्हारा उक्त धर्म सब जाल और सरासर बनावट है, तथापि धर्म इस नाम पर आर्यसमाजी झुक पड़े। हजार आर्यसमाजियों को जुदा समझो, लाख गाली दो और उनकी हानि करने के अनन्त यत्न भी करो, परन्तु वे कभी तुमसे बदला नहीं ले सकते। लें तो तब जब वे तुमको संसार से बाहर समझें। निश्चय रक्खो, अवश्य निश्चय रक्खो वे लोग तुम से पेट-भरू और स्वार्थी नहीं हैं। वे, जो कुछ तुम लोगों के विषय में लिख कह रहे हैं वह सब तुम्हारे ही मंगलार्थ कह रहे हैं। वे तुम्हारे अत्यन्त शुभचिंतक हैं। जैसे रोगी और कुचालियों को कुपथ्य और कुचाल से रोकने वाले, वैद्य मां-बाप और मित्रादिक वैरी जान पड़ते हैं, वही हाल तुम अपना और उनका जानो और याद रक्खो कि जैसे बहके हुए लड़के सिड़ी और नशैलों को सूधी और हित की सब बातें विपरीत सूझ पड़ती हैं परन्तु उक्त दोषों के उतरे पीछे वे पछताते हैं, वैसे तुम लोग भी किसी दिन शोक करोगे। देखो, कितने प्रकार से तुमको सब ठीक-ठीक हाल लिख समझाया पर बनेगी तब जब तुम भी कुछ सोचोगे। हे जगदीश्वर ! तू हमारे इन सब हिन्दू नाम-धारी भाइयों को शुद्ध बुद्धि और सुबुद्धि दे, जिससे इनको हित की सूझे और जे अपनों को अपना समझें।

बन्धुगण, जैसे थोड़े-थोड़े भेद के कारण हो गये हैं। दो-दो भेद

जिनके, ऐसे मुसलमान और अंग्रेज लोग आपस में एक-दूसरे से विरोध रख कर भी स्वदेश का हित ही चाहते हैं और बाहर वालों के लिये दोनों प्रकार के यवन वा अंग्रेज एक हो जाते हैं। वैसा तो भी तुम बाहर वालों के लिये आर्यों के साथ अपना बर्ताव कर रक्खो। फिर देखो कि इतने ही से कितना सुख और लाभ तुमको होता है। सारांश यह है कि आर्यसमाजियों के दश नियमों में से उतने नियम तुम चुनकर स्वीकार कर लो जितने में प्रस्तुत जिसको तुम स्वधर्म मान रहे हो, वह तुम्हारा सधा चला जावे। देखो, गोरक्षा में सब आर्यसमाजियों ने कैसा धन चन्दा करके एकत्र किया है और कैसे-कैसे उत्तम नियम उस काम के प्रबन्ध के लिये बाँध रहे हैं। तुम लोग भी उसको परम धर्म समझते हो। फिर क्या कारण है जो तुम उस काम में अपना उत्साह नहीं प्रकाशित करते? और क्या कारण है जो तुम जान-बूझ कर इस गौरक्षिणी सभा में मुसलमान और ईसाइयों की भाँति इन आर्यों से जुदे हो तमाशा देख रहे हो? क्या यह बात भी तुमको लज्जित नहीं करती? कहा मानो, ऐसे अनेक कलंकों से कलंकित तुम हो रहे हो। इसलिये कदापि इन आर्यों से जुदाई जतलाना तुमको शोभा नहीं देता। इन कारणों से तुमको अटल दुःख भोगना पड़ेगा। अतएव दूरदर्शी तुम्हारे परम मित्र ये आर्य लोग तुमको बारम्बार चिताते हैं। जब तक तुम ठीक मार्ग पर नहीं आओगे तब तक आर्यलोग बराबर दोष तुम्हें दर्शाते रहेंगे। इसका कदापि तुमको बुरा न मानना चाहिये। स्मरण रक्खो कि इन आर्य लोगों के लाभ और मुख्य कर्त्तव्यता की हानि उस भाँति होती है जैसे किसी गृहस्थ की उसके किसी भाई व बेटा के पागल हो जाने से होती हो। अर्थात्, जैसे वह गृहस्थ दिन रात उस पागल की सम्हाल के कारण अपना रोजगार-हाट आदि काम यथेच्छ नहीं कर पाता—केवल उसकी दुरुस्ती की चिन्ता में मग्न रह उसके उपाय सोचा करता है—वैसे ही ये लोग तुम्हारी चिंता में रहते हैं। तो क्या तुमको इनका उपकार नहीं मानना चाहिये? कहा तो यह है—

सन्तस्तृणोत्तारणमुत्तमांगात्सुवर्णकोत्वर्पणमामनन्ति।
प्राणव्यये नापि कृतोपकाराः खलाः पुनर्वैरमिवोद्वहन्ति॥

"कि सज्जन लोग अपने सिर से तिनका उतारकर फेंकने वाले का उपकार करोड़ स्वर्ण मुद्रा दिये के बराबर मानते हैं। परन्तु दुर्जनों की लीला ही जुदी है। अर्थात् वे लोग अपने ऊपर प्राणों तक खो देने वालों से उस काम के बाद वैर ही मानने लग जाते हैं।"

कहिये, बुद्धिमान् को उक्त दो प्रकारों में से क्या करना उचित है?

हमने स्वनेत्रों से देखा कि एक प्रतिष्ठित आर्य सभासद ने सुना कि फलाँ रईस साहब को आज कुछ गड़बड़-सी हुई जाती है। उसी दम कहला भेजा कि घबरायें नहीं, मैं हाजिर हूँ। फिर वैसा ही कर दिखाया। हालाँकि रईस साहब पूर्व से ही इनके भारी ऋणी और हिन्दू धर्म सभा के नामी स्तम्भ थे। बल्कि सभा जब तक उन्हीं के स्थान पर हुआ करती थीं। परन्तु इससे क्या? समय निकल गया, लाला साहब भी कुछ घाटे में न रहेंगे परन्तु उदाहरण हो गये। ऐसा करना सबको उचित है, परन्तु वैसा कोई न करे जैसा कि उक्त रईस साहब के किसी विश्वास मित्र पोप सभा के दूसरे खम्भ ने किया। हालाँकि बड़े भक्तों में से हैं। देखिये, एक प्रसंग में दो उदाहरण उपस्थित हो गये। जिनमें से एक की निन्दा, दूसरे की स्तुति सर्वत्र नगर में हो रही है।

आर्यगण, इस प्रकार के सर्वोत्तम सर्वमान्य आर्य सज्जनों के नियम और उपनियम हैं कि जिनके थोड़े ही दिन के प्रचार से ऐसे सैकड़ों एक-से-एक बढ़ कर उदाहरण वर्णन में आ सकते हैं। जिस प्रकार परम कृपालु श्रीमान् ने ये प्रशंसित नियम रचे थे, निश्चय था कि बहुत शीघ्र हमारे सब देश-निवासी स्वीकार कर लेवेंगे, और अवश्य कर भी लेते, परन्तु बेचारों को पोपदेवों ने खराबी में डाल रक्खा है। पोप भी क्या करें जिन पर हो पेटदेव सवार!

भाई आर्यसमाजियो, भूख तो आप साहबों को भी लगती होगी, फिर क्या वजह जो गो-रक्षा में इस प्रकार धूम-धाम, पर नहीं किसी को कुछ काम? इस ढब इनकी ओर से आँख बन्द होना न चाहिये। देखो, परमेश्वर का नाम गो-ब्राह्मण-हितकारी है. अतः गौ और ब्राह्मण का बराबर पद है। अन्तर है तो केवल इतना कि वह पशु, ये नर। तो अवश्य हुआ कि पशु-रक्षा से मनुष्य-रक्षा प्रथम की जाय। (१) मनुष्यों में भी उनकी रक्षा आवश्यक है जिनकी उप-जीविका लिखना-पढ़ना हो। (२) लिखने-पढ़ने वालों में भी वे विशेष ग्राह्य हैं जिनकी सत्य विद्या में अभिरुचि हो। (३) उनसे अधिक वे रक्षणीय हैं जिनकी प्रकृति निर्मल हो। (४) ये सब चार प्रकार के मनुष्य हुए। प्रथम को छोड़ा तो रहे तीन, उनमें से प्रत्येक के उत्तम, कनिष्ठ नाम के दो-दो भेद करने से छः प्रकार हो जायेंगे। इनमें छुटे हुये को फिर मिला लेने से सब मनुष्य सात दर्जों में हो जायेंगे। उनमें से जिन्हें पेटदेव सता रहा हो, उनकी रक्षा अवश्यमेव होनी चाहिये। उसका उपाय भी सोचा जाये और वह यथायोग्य अर्थात् जैसे को वैसा हो।

इन दिनों लिखने-पढ़ने वालों को कहीं-कहीं कुछ-कुछ सुबीता है; परन्तु नहीं है तो उनका जिनको भिक्षुक-वृत्ति कहते हैं। उनके लिये कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीनों काण्डों के साधक छोटे-बड़े सत्य, धर्म प्रचारक ग्रन्थ बनवा कर विज्ञापन दिये जावें कि इस वर्ष में वा सदैव चैत्री, श्रावणी और कार्तिकी को तीन बार नीचे लिखे पुस्तकों में भिक्षुक ब्राह्मणों की परीक्षा होगी; जो उनमें उत्तीर्ण (कामयाब) होंगे, उनको इस-इस प्रकार पारितोषिक (इनाम) और सनद मिलेगी; और फिर सनद वालों से आर्य लोग अपने वहाँ वेद-विदित षोडश संस्कार और होम-हवनादिक कर्मों का काम लेवेंगे और मिठाई भी खिलावेंगे, यथा-कार्य दक्षिणा भी होगी। सनद वाले ब्राह्मण लोग खुद भी शुद्ध, पवित्र और सत्यापरायण रह कर दोनों काल संध्या-वंदनादि नित्य और नैमित्तिक तथा उक्त संस्कारादि कर्म सदैव प्रीतिपूर्वक करते देखे जावें, ऐसा न हो कि बजाई ढोलक और हुई।

ऐसे अनेक काम उनके लिए आर्य लोग सोचें और उनका सम्मान-प्रतिष्ठा उनकी योग्यतानुसार करें जिससे उनका चित्त शान्त हो और वे दुर्गा-सप्ताह और सत्यनारायण आदि कथाओं को भूलें और आपके समाजों को सराहें। ऐसा होने से एक लड़ाई फतह की कहावत होगी—अर्थात् पुण्य और पुरुषार्थ दोनों सधेंगे। अन्यथा आप लोग कुछ नहीं कर सकेंगे सदा विघ्न ही होता रहेगा और सुख के पलटे सदैव शोकाकुल रह कर यही कहोगे कि हाय, बहुतेरा सिर मारा पर इन दुष्टों के मारे दाल नहीं गलती। इसलिये वह काम कीजिये जिसमें आपकी दाल गले। कदाचित् कहो, मान और गौरव उन्हीं का किया जाता है जिसके गुण और काम वैसे होते हैं, ये लोग तो बड़े ही कृत्रिमी और मिथ्यावादी हैं। "ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः" ब्राह्मण वह जो ब्रह्म अर्थात् वेद या ईश्वर को जाने, सो यह कहना आप लोगों का बहुत ठीक, परन्तु कहिये तो सही कि स्वदेश में ऐसी कौन सी पवित्र जाति रही है जो अपने रोजगार में इन दोषों से लिप्त नहीं? और जो कहा कि ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः, सो ऐसी व्युत्पत्ति क्षत्रिय आदि शब्दों की भी है, "जैसे क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः।" अर्थात् क्षत्रिय वह जो सबको दुःख से बचाये। जब ऐसा कोई क्षत्रिय भी नहीं दिखाई देता और न कोई अन्य जाति, तो फिर केवल ब्राह्मण पर ही लक्षणा करना व्यर्थ है। अभी तो अपना सब देश ही बिगाड़ में है। सबके संग ये भी सुधर रहेंगे। फिलहाल उनकी नींद चौंकने दो, और आप उनके भूख की फिकर करो, क्योंकि भूखा सिवाय पाप और कुछ नहीं कर सकता। ऐसा अनुभव है और कहा भी है—"बुभुक्षितः किन्न करोति पापं।" अर्थात् वह कौन पाप है जिसको भूखा

नहीं कर सकता। अब कहोगे कि आपने बहुत ठीक सिद्ध किया, परन्तु क्या करें? ऐसों के पालने और मानने में स्वामी जी की आज्ञा नहीं पाई जाती। वाह जी वाह! यह तो आपने खूब ही कहा। भाई आर्यों कभी स्वामी जी महाराज का ऐसा विचार ध्यान में मत लाओ। मैं लिख चुका हूँ, प्रथम खण्ड के द्वितीय मयूख में, कि स्वामी जी महाराज का प्रथम हेतु यही था कि ये समझें और इनको पूर्ण लाभ हो तथा इन्हीं के द्वारा सारी सृष्टि सुधरे; परन्तु "प्रतिकूले हरौ को वा दशां नाप्नोति वै पुमान्"—अर्थात्, हरि रूठे तो क्या बाकी रहे? सो भावई इनकी ने इनको सुपथ न लगने दिया। नहीं तो न मालूम अब लों इनमें से कौन ऐसे गुणवान् व धनवान न हो जाते। अस्तु! 'गतं न शोचामि', अब से ही सही। बस, भाई ब्रह्मवर्ग, मैं बहुत-कुछ आपकी ओर से वकालत कर चुका और इस वक्त आप को डिग्री भी दिला दी, लेकिन बशर्ते नेक चलनी आपकी यह रियासत कायम रहेगी, वर्ना मिसल मल्हारराव गायकवाड़ के जबरन व कहरन बेदखल कर दिये जाओगे। इसलिये आपका शुभचिंतक आप सबको पृथक्-पृथक् हाथ जोड़ बारम्बार नमस्कारपूर्वक प्रार्थना करता है कि आप लोग अपने-अपने पुराने आदि पुरुषों का नाम-अर्थात् गोत्र (खानदान) एक बार याद कीजिये और फिर विचारिये कि वे कैसे थे और उनकी सन्तान हम कैसे हैं। और उनकी कृति वा आचरण क्या थे और हमारे क्या हैं? तो आपको निश्चय हो जावेगा कि धरती और आसमान का अन्तर है, केवल इसी कारण कि वे जिस शुद्ध सनातन वैदिक मार्ग पर चलते थे आप नहीं चलते। फिर कहिये, आपका मान, गौरव और प्रतिष्ठा वैसी क्यों कर हो सकती है जैसी कि आप चाह रहे हो? भला बिन गुड़-आदि तादृश पदार्थ के कभी किसी ने शरबत कर पिया है। कभी नहीं कभी नहीं! तो बस, अब आप लोग वृथा वंचित न होकर आगे लिखी ग्रन्थ-नामावली को देख अर्वाचीन ग्रन्थों का प्रचार एक साथ उठा कर प्राचीन ग्रन्थों की देख भाल अति तूर्ण प्रवीण हूजिये जिससे कामना-चतुष्टय आपके मुष्टिगत हो जावे। नर-जन्म पाकर जिसने सत्यासत्य-विचार न किया, वह आत्म-घातक है। संसार में किसी का आत्मा असत्य नहीं है। चोर चुराकर चोरी करता है और किसी से अपना भेद नहीं कहता, परन्तु मन में चोरी करना सदैव कबूलता रहता है। ऐसे सत्यस्वरूप आत्मा को जो असत्यों में सानता है, वह उत्तमोत्तम भोजन को हलाहल मिलाकर खाता है। इस प्रकार रस में विष मिलाना कभी किसी बुद्धिमान् को उचित नहीं। सदैव सबको अपने सत्यस्वरूप आत्मा को सब सत्य कामों से युक्त रखना चाहिये। अर्थात् सत्य कहे, सत्य सुने,

सत्य करे, सत्य पढ़े और सत्य ही माने और पूजे। देखो, जैसी कि धर्म की ग्लानि अब देखते हो, वैसी कोई १३०० वर्ष से अधिक दिनों की बात है, जब भी हो गई थी। उन्हीं दिनों परम हंस परिव्राजकाचार्य श्रीमान् स्वामी शंकराचार्य जी महाराज ने वैदिक धर्म को फिर स्थापित करने के लिये बड़ा परिश्रम उठाया था। परन्तु परम शोक बात यह हुई कि वे पूर्णायु न हुये अर्थात् केवल ३२ वर्ष की आयु में चल बसे। इसी से उनके पीछे जल्द ही फिर वैदिक धर्म में गड़बड़चौथ पड़ गई, अर्थात् जिन मिथ्या मतों का उन्होंने खण्डन किया था वे सब फिर हरे हो गये और बहुत से रामानुजी, वल्लभ कुली आदि मत और नये उत्पन्न हुये। उन सब पूर्वापरों का नाम आगे देख मिलेगा। जिन दिनों श्रीमान् स्वामी शंकराचार्य जी महाराज खण्डन-मण्डनादि में प्रवृत्त थे उन दिनों अब की अपेक्षा बहुत-सी बातों का सुभीता था। १. प्रथम तो यह कि इस देश में ईसाई व यवनादिकों का कहीं कुछ दखल न था। २. दूसरे, सब राजा लोग स्वदेशी थे। उनमें से बहुत से आचार्य जी के सहायक थे। ३. तीसरे, इस देश निवासियों में इस प्रकार झूठ-जाल, फंद-फरेब और पक्षपात न था, जैसा कि अब देखा जाता है। उस समय यदि कोई मतवादी हारे-पीछे हठ वा दुराग्रहादि से उपदेश नहीं मानता था, उसको राजगण मना छोड़ते थे, ऐसा प्रबन्ध था।

सारांश, वह समय ऐसा था कि जहाँ उक्त आचार्य जी पहुँचे तहाँ उन्होंने लोगों को उपदेश किया जिसमें जितना पाण्डित्य हुआ। उतनी उसने आचार्य जी महाराज से बहस की। जब न चल सका तब गिड़-गिड़ा कर उसी दम चरणों में गिर पड़ा और तुरन्त सत्य-मार्गावलम्बी हुआ। ऐसा लेख 'शंकरदिग्विजय' में सर्वत्र है। उसकी एक कथा यहाँ भी आगे उदाहरणार्थ लिखी है। उक्त ग्रन्थ सब का सब संस्कृत में है परन्तु कथा-भाषा भी लिख दी है।

आर्यगण, देखिये वह कैसा चित्त को समाधान पहुँचाता अर्थात् स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीमान् स्वामी शंकराचार्य जी महाराज और श्रीमान् स्वामी दयानन्द जी महाराज के कर्मों में तिल-मात्र की कमी वा बेशी नहीं है। परन्तु हाय, समय में तो धरती-आकाश का सा अन्तर हो गया। उस समय जहाँ लोगों ने अपनी बात मिथ्या समझी और वे तुरन्त शरण हुये, फिर जो कहा वह किया और सब का विपरीत हाल तो सब प्रसिद्ध ही है। यह सब खराबी केवल सत्य विद्या न होने के कारण हो रही है। सो अब उस विद्या की पहचान के लिये वेदादि सब सत्यशास्त्रों और ग्रन्थों के नाम लिखे जाते हैं—

मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिये अर्थ योजना सहित व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी, धातुपाठ, उणादि गण, गणपाठ, महाभाष्य। शिक्षा, कल्प, निघण्टु व निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—ये छः वेदों के अंग। मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त—ये छः शास्त्र जो वेदों के उपांग। अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक-ठीक जाना जाता है। तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्होंने उन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ के जो सत्य-सत्य वेद-व्याख्यान किये हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवे, क्योंकि 'नावेदवित्' वेदों को नहीं जानने वाला मनुष्य परमेश्वरादि सब पदार्थ विद्याओं को अच्छे प्रकार से नहीं जान सकता और जो-जो जहाँ-जहाँ भूगोलों वा पुस्तकों अथवा मन में सत्य-ज्ञान प्रकाशित हुआ है और होगा, वह सब वेदों में से हुआ है। क्योंकि जो-जो सत्य विज्ञान है सो-सो ईश्वर ने वेदों में धर रक्खा है। इसी के द्वारा अन्य स्थानों में भी प्रकाश होता है। और विद्या के बिना पुरुष अन्धे के समान होता है। इससे सम्पूर्ण विद्याओं के मूल वेदों को बिना पढ़े किसी मनुष्य-को यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र अर्थ-ज्ञान-सहित अवश्य पढ़ने चाहिये। ऐसी आज्ञा श्रीमान् जगद्गुरु श्री स्वामीजी महाराज की सब मनुष्यों के वास्ते है। जिनको अपने श्रेय का पूर्ण इच्छा होवे, शीघ्र स्वीकार करें।

विदित हो कि मन्त्र-भाग की चार संहिता, कि जिनका नाम वेद है, वे सब स्वतःप्रमाण[1] कहे जाते हैं और उनसे भिन्न ऐतरेय, शतपथादि जो प्राचीन सत्य ग्रन्थ हैं, वे सब परतःप्रमाण के योग्य हैं, तथा ग्यारह सौ सत्ताइस (११२७) चारों वेदों की शाखा भी वेदों के व्याख्यान होने से परतः प्रमाण तथा (१) आयुर्वेद अर्थात् जो वैद्यकशास्त्र चरक, सुश्रुत, और धन्वन्तरि-कृत निघण्टु आदि—ये सब मिलकर ऋग्वेद का उपवेद कहाता है। (२) धनुर्वेद, अर्थात् जिसमें शस्त्र-अस्त्र विद्या के विधानयुक्त जो कि अंगिरा भरद्वाजादि-कृत संहिता हैं जिनमें राज-विद्या सिद्ध होती है, परन्तु वे ग्रन्थ प्रायः लुप्त से हो गये हैं। जो पुरुषार्थ से इनको सिद्ध किया चाहे तो वेदादि विद्या पुस्तकों से साक्षात् कर सकता है। (३) गांधर्व वेद जो कि सामगान और नारद-संहिता आदि गान-विद्या के ग्रन्थ हैं। (४) अथर्ववेद

१. जिन ग्रन्थों के आशयों पर दूसरे ग्रन्थों का साक्षित्व, अर्थात् गवाही नहीं चाहनी पड़ती, वे स्वतःप्रमाण; और जिन पर वेदों का साक्षित्व होना आवश्यक है वे परतःप्रमाण कहाते हैं।

अर्थात् शिल्पशास्त्र, जिसके प्रतिपादन में विश्वकर्मा, त्वष्टा, देवज्ञ और मय-कृत संहिता रची गई हैं। ये चारों उपवेद हैं।

इसी प्रकार पहिला पाणिन्यादि मुनि-कृत ग्रन्थ शिक्षा और दूसरा मन्वादि-कृत मानवकल्पसूत्र, आश्वलायनादि-कृत श्रौतसूत्रादि कल्प, और तीसरा पाणिनिमुनि-कृत अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ और पतञ्जलि-मुनिकृत महाभाष्य-पर्यन्त व्याकरण तथा चौथा यास्कमुनि-कृत निरुक्त और निघण्टु (निरुक्त) और पाँचवाँ वसिष्ठमुनि आदि-कृत सूर्य-सिद्धान्त आदि रेखा, बीजगणितात्मक ज्योतिष और छठा पिंगलाचार्य-कृत सूत्रभाष्य आदि छन्द। ये वेदों के ६ अंग भी परतः प्रमाण योग्य हैं। और ऐसे ही वेदों के ६ उपांग, अर्थात् जिनका नाम षट्शास्त्र है, उनमें से एक व्यास मुनि आदि-कृत भाष्य सहित-जैमिनिमुनि-कृत पूर्वमीमांसा, जिसमें कर्मकाण्ड का विधान और धर्म-धर्मी दो पदार्थों से सब पदार्थों की व्याख्या की है। दूसरा वैशेषिक शास्त्र जो कि कणादमुनि-कृत सूत्र और गोतम मुनि-कृत प्रशस्तपाद भाष्यादि व्याख्या सहित हैं। तीसरा न्याय शास्त्र जो कि गौतममुनि-प्रणीत सूत्र और वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य-सहित है। चौथा योगशास्त्र, जो कि पतञ्जलिमुनि-कृत सूत्र और व्यासमुनि-कृत भाष्य-सहित है। पाँचवाँ सांख्यशास्त्र जो कि कपिलमुनि-कृत सूत्र और भागुरि मुनिकृत भाष्य-सहित है और छठा वेदान्तशास्त्र, जो कि ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक ये दस उपनिषद् तथा व्यासमुनि-कृत सूत्र जो कि बोधायन इत्यादि व्याख्या-सहित है। छः वेदों के उपांग कहाते हैं। उसका यह अभिप्राय है कि जो शाखान्तर व्याख्या सहित चार वेद, उपवेद, छः अंग और छः उपांग हैं ये सब मिलके चौदह विद्या के ग्रन्थ हैं।

इन ग्रन्थों का तो पूर्वोक्त प्रकार से स्वतः, परतः-प्रमाण करना सुनना और पढ़ना सबको उचित है, इनसे भिन्नों का नहीं। क्योंकि जितने ग्रन्थ पक्षपाती, क्षुद्र-बुद्धि, कम विद्या वाले अधर्मात्मा असत्यवादियों के कहे वेदार्थ से विरुद्ध और युक्ति-प्रमाण-रहित हैं, उनको स्वीकार करना योग्य नहीं। उनमें से मुख्य-मुख्य मिथ्या ग्रन्थों के नाम भी लिखते हैं। जैसे कि रुद्रयामल आदि तन्त्रग्रन्थ, ब्रह्मवैवर्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, सूर्यगाथा आदि उपपुराण, मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और उससे पृथक् सब स्मृति-ग्रन्थ। व्याकरण-विरुद्ध सारस्वतचन्द्रिका, कौमुद्यादि ग्रन्थ। धर्मशास्त्र-विरुद्ध निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थ तथा वैशेषिक एवं न्याय शास्त्र, विरुद्ध तर्क-संग्रह, मुक्तावल्यादि ग्रन्थ तथा हठप्रदीपिका आदि ग्रन्थ, जोकि योगशास्त्र

से विरुद्ध हैं। तथा सांख्य शास्त्रविरुद्ध सांख्य तत्त्व-कौमुदी आदि ग्रन्थ। वेदान्तशास्त्र-विरुद्ध वेदान्तसार, पंचदशी, योगवसिष्ठादि ग्रन्थ। तथा ज्योतिषशास्त्र से विरुद्ध मुहूर्तचिन्तामणि आदि मुहुर्त, जन्म-पत्र, फलादेश-विधायक पुस्तक। ऐसे ही श्रौतसूत्रादि-विरुद्ध त्रिकुण्डिका-स्नान विधायकादि सूत्र तथा मार्गशीर्ष-एकादश्यादि व्रत, काश्यादि स्थल, पुष्कर-गंगादि जल-यात्रा, माहात्म्य-विधायक सब पुस्तक तथा दर्शन, नामस्मरण जड़-मूर्तिपूजा करने से मुक्ति-विधायक ग्रन्थ। इसी प्रकार पाप-निवारण-विधायक और ईश्वर के अवतार वा पुत्र अथवा दूतोत्पादक, वेद-विरुद्ध शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णवादि मत के ग्रन्थ तथा नास्तिक मत के पुस्तक और उनके उपदेश। ये सब वेद, युक्ति, प्रमाण और परीक्षा से विरुद्ध ग्रन्थ हैं; इस लिये सब मनुष्यों को उक्त अशुद्ध ग्रन्थ त्याग कर देने के योग्य हैं।

कदाचित् इन ग्रन्थों के विषय में कोई ऐसा प्रश्न करे कि इन असत्य ग्रन्थों में भी जो-जो सत्य बातें हैं, उनका ग्रहण करना चाहिये ? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे अमृत-तुल्य अन्न में विष मिला हो तो उसे छोड़ देते हैं। क्योंकि उनसे सत्य ग्रहण की आशा करने से सत्यार्थप्रकाशक वेदादि ग्रन्थों का लोप हो जाता है। इसलिये इन सत्य-ग्रन्थों के प्रचार के अर्थ उन मिथ्या ग्रन्थों को छोड़ देना अवश्य चाहिये, क्योंकि बिना सत्य विद्या के ज्ञान कहाँ ? बिना ज्ञान के उन्नति कहाँ और उन्नति के न होने से मनुष्य सदा दुःख सागर ही में डूबे रहते हैं। ऐसा आदेशः।

अथ शंकरदिग्विजयोदाहरणम्

इस प्रकार श्रीमान् शंकराचार्य जी महाराज ने नीचे लिखे ४६ मतों का खण्डन करके वैदिक मत पर चलने का उपदेश किया है। १. भागवत मत २. षड्डविध वैष्णवमत, ३. पञ्चरात्रागम मत, ४. वैखानस मत, ५. कर्महीन वैष्णव मत, ६. हैरण्यगर्भ मत, ७. अग्निवादि मत, ८. सौर मत, ९. महागणपति मत, १०. हरिद्रागणपति मत, ११. नवनीत गणपति मत, १२. उच्छिष्ट गणपति मत, १३. स्वर्ण सन्तान गणपति मत, १४. शक्ति मत, १५. महालक्ष्मी मत, १६. वाग् देवता मत, १७. वामाचार मत, १८. कापालिक मत, १९. कापालिकैकदेशि मत, २०. चार्वाक मत, २१. सौगत मत, २२. जैन मत, २३. बौद्ध मत, २४. मल्लारि मत, २५. विष्वक्सेन मत, २६. मन्मथ मत, २७ कुबेर मत, २८. इन्द्र मत, २९. यम मत, ३०. वरुण मत, ३१. शून्य मत, ३२. लोकमत, ३३. गुण मत, ३४. सांख्य मत, ३५. योगमत, ३६. पीलुवाद मत (वैशेषिक), ३७. कर्म मत (मीमांसा), ३८.

चन्द्र मत, ३९. राहुमत, ४०. क्षपणक मत, ४१. पितृ मत, ४२. शेष मत, ४३. सिद्ध मत, ४४. गंधर्व मत, ४५. भूत वैतालमत, ४६. गरुड़ मत।

आर्यगण, यद्यपि यह शंकर-विजय पोपों ने ही बनाई है तथापि खोजने वाले बहुत-सा सत्य निकाल सकते हैं।

अब उन आधुनिक मतों के नाम सुनिये, जिनका खण्डन श्रीमान् सकल-विद्या-निधान परमाचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने किया और कर रहे हैं और बराबर करते रहेंगे।

१. श्री वैष्णव वा रामानुजी, २. वल्लभाचारी वा गोकुलिया गुसाँई वा गोकुलस्थी, ३. सनकादिकीय वा माध्व वा मध्याचारी वा निम्बार्कीय, ४. रामानन्दी वा रामावत, ५. राधावल्लभी वा गौड़ गुसांई, ६. नित्यानन्दी जी वा चैतन्यी वा बंगाली वैष्णव, ७. सदनापंथी, ८. कबीरपन्थी, ९. नानकपंथी, १०. दादूपन्थी, ११. खाकी, १२. वैरागजी, १३. नागा, १४. मलूकदासी १५. रैदासो १६. चरणदासी, १७. सैनाई १८. मीरांबाई, १९. सखीभाव, २०. माधवी, २१. हरिश्चन्द्री, २२. योगी, २३. जंगम, २४. उर्ध्ववाहु, २५. आकाशमुखी, २६. नखी, २७. गूदड़, २८. रूखड़, २९. कुडर्णलिगी, ३०. सूखड़, ३१. शक्ति कर, ३२. दक्षिणाचारी व दक्षिणी, ३३. वामी वा वामाचारी वा वामार्गी वा कौलादि, ३४. कानचेली, ३५. करारी, ३६. अघोरी, ३७ गाणपत्य, ३८. सौर ३९. बाबालाली, ४०. प्राणनाथी, ४१. साध, ४२. सतनामी, ४३. शिवनारायणी जी, ४४. शून्यवादी ४५., जैनी, ४६. दिगम्बर, ४७. श्वेताम्बर, ४८. ढोढ़िये, (स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन समुदाय), ४९. बौद्ध, ५०. दोनों ब्रह्मसमाजी।

आर्यगण, ये ऊपर लिखे सब मत भरतखण्ड-वासियों में प्रचलित हैं। कहो, कैसे सत्यानाश न हो उस देश का, जहाँ इतने मिथ्या मत प्रवृत्त हों? कहावत है 'एक घर दो मना, वह घर कैसे बना'। जब एक ही घर के बनाव में आफत तो देश के बनाव की क्या आशा? फिर, यहाँ इतने ही मत हैं ऐसा भी निश्चय न कर लो; किन्तु इनमें से बहुत से शाखा-पल्लव भी रखते हैं। अन्त में जो दो प्रकार के ब्रह्मसमाज लिखे हैं उन बेचारों की तो अभी छठी भी नहीं पुजी। ये दोनों मत बंगालियों ने चलाए हैं। इनमें से एक तो वेद को बिल्कुल ही नहीं मानता, दूसरा संदिग्ध है। संवत् १९२८ में श्री जी महाराज ने जब कि कलकत्ता में थे, ब्रह्मसमाज के अधिष्ठाता केशवचन्द्र सेन जी आदि का भी सन्देह भलीभाँति दूर कर दिया था। जिन पुरुषों की तृप्ति इतने मतों से नहीं होती, वे बहुवृणित यावनी और ईसाई मताख्य

कुण्डों में भी जा डूबते थे। धन्य श्रीमान्, जिन्होंने ये सब अनर्थ रोके। परमात्मा उनको दीर्घायु करे।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य दयानन्दसरस्वती-दिग्विजयार्कीय--द्वितीयाङ्के सामाजिकचरित्र वर्णनं नाम पञ्चमो मयूखः ॥

षष्ठो मयूखः

आर्यगण, पञ्चम मयूख द्वारा आर्यसमाजों का बहुत-सा बृत्तान्त वर्णन हो चुका है। इन्हीं का अब कुछ बृत्तान्त सुनिये। प्रत्येक समाज में मुख्य पाँच पंच अर्थात् अध्यक्ष होते हैं।[1] उनमें से पहला सभापति, दूसरा नायब सभापति, तीसरा मंत्री, चौथा पुस्तकाध्यक्ष और पाँचवाँ कोषाध्यक्ष कहाते हैं। और ये सब प्रत्यह अपना-अपना काम अपनी व्यवस्था के अनुसार

---

१. ये पाँचों पंच समाज का सारा बोझ उठाने वाले होते हैं, इसलिये इन पदों पर बहुत योग्य पुरुषों का नियत होना आवश्यक है अन्यथा बना-बनाया समाज ढह जाता है, ऐसा अनुभव है। यदि भूल से कहीं ऐसे स्वार्थ-तत्पर लोग किसी एक समाज में नियत हो गये होवें तो उनको अनुभव आने पर शीघ्र वहाँ से ऐसा हटा दे जैसा कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने बम्बई समाज से हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और अपने वैदिक मंत्रालय से सिंह जी को विज्ञापन देकर हटा दिया था। देखिये, अब वहाँ दोनों ठौर कैसा धर्मराज्य है। अधिकारियों को भी उचित है कि स्वार्थ-तत्परता से जो असत्कीर्ति होती है, उससे सदा बचें। ठीक अपने नियमों पर चलें। सदा धरती की ओर निहारें, न यह कि पदवी पाकर अधिक आसमान को मुँह उठ जाय। इस ढंग से चाहे कुछ दिन राज-काज निकल भी जाय, परन्तु समाज-काज कदापि न सधेगा। समाजों में भर्ती होने की रीति यह है कि जब कोई मनुष्य उसमें दाखिल हो तो उसे उचित है कि अपने पेशे, रुतबे, खानदान और लियाकत वगैरा का ख्याल कतई छोड़ दे और अपने को इन सब लोगों के समान समझे जैसे कि और लोग जलसे में शामिल हों। क्योंकि छोड़ देने योग्य कहे हुये ख्यालों के बने रहने से आपस की वह रीति-प्रीति और कर्त्तव्यता जाती रहती है जिसका सदैव को कायम रखना निहायत जरूरी है। हर अधिकारी मनुष्य को अपने समाज का वैसा प्यादा (सेवक) बन जाना चाहिये जैसा कि सुशिक्षित सेवक की जिसको बैठते-उठते विलम्ब नहीं लगता, न यह कि जगह घेर कर बैठ गया सो बैठ ही गया। अब कोई आओ, कोई जाओ, उसे कुछ परवाह नहीं। हर एक समाजी हर शख्स के खुश करने की कोशिश

करते हैं और प्रति रविवार को समाज नियमित स्थान में नियमित समय पर होता है। जितने आर्य सभासद लोग दर्ज रजिस्टर होते हैं वे सब वहाँ एकत्र होकर परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना के पीछे देशोन्नति-कारक व्याख्यान देते और सुनते हैं। और जिनकी इच्छा होती है वे भी वहाँ जाते हैं, अर्थात् किसी की उस दिन रोकटोक नहीं होती। सारांश, वह दिन परम आनन्द का होता है। सब लोग बड़ी रीति से परस्पर मिलते और सात दिन के भीतर की सब नूतन खबरें और समाचार-पत्रों को कहते, सुनते और सुनाते हैं। इन समाजों में जितने लिखे हुए पंच और सभासद होते हैं, वे सब अपने समाज का जिस प्रकार वार्षिक खर्च होना आवश्यक जानते हैं, उतना रुपया वर्ष के प्रारम्भ में एकत्र कर देते हैं और फिर जो कोई विशेष खर्च आ पड़ता है तो उसके लिए सब लोग चाहे जिस दिन एकत्र होकर उतना रुपया जमा कर

करें। केवल उन्हीं लोगों से समाज में बैठ बात करना उचित नहीं कि जो तुम्हें पसन्द रखते हों वा जिनसे तुम्हारा दिल मुहब्बत करता हो। ऐसे लोग तुमको फिर भी मिल सकते हैं; परन्तु पैंठ पैंठ ही के दिन लगती है। जो लोग समाज में तुमसे दूर बैठते हों वा कुछ खेद में हों, अथवा जिनसे और लोग बातें न करते हों इनको विशेष कर अपनी बातों में लगाओ (इसके साथ हर मनुष्य की तबियत का भी खूब लिहाज रक्खो अर्थात् उससे कभी कोई ऐसी बात न छेड़ो जिससे उसे वा दूसरों को रंज पहुँचे। किसी की दिल्लगी वा गँवारों की तरह एक साथ जोर से हँस देना भी उचित नहीं। जिसका प्रथम मुलाकात हो उसके साथ तो बहुत ही इखलाक के साथ पेश आओ। फिर देखो, कैसा काम बनता और सुख होता है। इस प्रकार बहुत से विषय समाज वालों को सोचने, विचारने और करने को हैं। उन सब पर जिसका पूर्ण ध्यान होता है वही सामाजिक कामों को यथावस्थित चला सकता है। अन्यथा समाज नहीं वह ढ़पाल है—अविवेकमतिर्नृपतिर्मन्त्रीगुणो यत्र खलाश्च प्रबला तत्र कथं सज्जनावसरः, जहाँ का राजा वा सभापति कौन मनुष्य कैसा है, ऐसा विवेक नहीं रखता और मंत्री गुणवानों की ओर से मुँह फेर फिसादियों या खिलाड़ियों की तरफ मुखातिब रहता है, और जितने कर्मचारी वहाँ के हैं वे भी सब दुराचारी ही होने के कारण उस राज वा समाज में भले और बुद्धिमान कहाते हैं, वहाँ आने जाने में सत्पुरुष संकोच करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि भाई आर्यगण, ऐसे बनो जिसमें तुम्हारे पास आने को सबका जी चाहे।

लेते हैं जितने की आवश्यकता उस समय होती है। इस प्रकार से हुई आमदनी नामवार समाज-कोष में लिख कर धरी जाती है, फिर उसका खर्च अन्तरंग सभा की मंजूरी से होता है। अन्तरंग सभा की व्यवस्था इस प्रकार है कि जिस समाज में जितने सभासद होते हैं उनमें से सबकी प्रसन्नतानुसार विशेष धन देने वाले सभ्य और विद्वान् लोग सैकड़ा-पीछे तीस के हिसाब से चुन लिये जाते हैं। इसमें उपर्युक्त सभापति, उपसभापति और मंत्री ये तीन पुरुष मिलाकर जो एक कमेटी बनाई जाती है उसको अन्तरंग सभा कहते हैं। यह सभा प्रतिमास एक वा दो बार नियमानुसार बैठती है और आवश्यकता पड़े पर बीच में भी तुरन्त एकत्र हो जाती है। उसी के विचार और स्वीकार से मासिक, वार्षिक और नैमित्तिक खर्च और सब काम काज तथा नौकरों की मौकूफी-बहाली आदि हुआ करती है। जब दो-तिहाई सभासद (मेम्बर) जमा हो जाते हैं तब इसका काम छिड़ता है और बहुपक्षा-नुसार काम किया जाता है, अन्यथा कदापि नहीं।

जहाँ उक्त सभा अपना काम यथोचित नहीं कर सकती, वहाँ उसी की सम्मति के अनुसार उसी सभा के सभासदों में से पाँच परमसभ्य विद्वानों की एक जुदी सभा बना ली जाती है उसको मीमांसक सभा और उसके पंचों को मीमांसक सभा के सभासद कहते हैं। बहुत से सूक्ष्म और गुप्त विचार तथैव अन्तरंग सभा से ठीक नहीं हुए कामों को मीमांसा (न्याय) इस सभा में होकर तीन पुरुषों की सम्मति के अनुसार काम लौटता-पलटता और प्रचरित होता है। इन दोनों सभाओं में कोई अन्य पुरुष नहीं आने पाता। समाज का एक दफ्तर भी होता है उसमें आवश्यकता के अनुसार लेखक और परिचारक होते हैं। इस दफ्तर में समाज का सब हिसाब और कागज रहता है। बाहर के समाजों और अन्य-अन्य स्थानों से यहाँ पत्रादिक आते और उनके उत्तर-प्रत्युत्तर लिखे जाते हैं जो काम श्रीमान् स्वामी जी महाराज से पूछ कर करना होता है उसकी लिखा-पढ़ी उनके समीप भेजी जाती है। अर्थात् ये सब समाज प्रशंसनीय महाराज के आधीन रहते हैं और बहुत-कुछ श्रीमान् के देशोपकारक कामों में से लोग तन-मन-धन से सहायता भी करते रहते हैं।

जब श्रीमान् एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं तब भी इन सबके नाम तार वा पत्र भेज देते हैं और मासिक वेदभाष्य के टाइटिल तथा अख-बारों में भी खबर छप जाती है। जहाँ पहुँचते हैं वहाँ के समाजी राजा बाबू अथवा रईस लोग बड़ी हूल-फूल और उत्सव के साथ उनकी अगवानी करके

पहले से तैयार कर रखे हुए दिव्य स्थान पर पहुँचते हैं और वहाँ पहुँचते-पहुँचते सारे शहर में विज्ञापन लगवा दिए हैं कि फलां दिन इतने समय तक फलां स्थान में इतने दिन तक श्रीमान् स्वामी जी महाराज व्याख्यान देवेंगे, वहाँ सुनने वालों को उचित समय पर एकत्र हो जाना चाहिए। बहुधा एक वा डेढ़ मास, कहीं इससे अधिक वा न्यून काल तक उस स्थान में काम के अनुसार स्थिति रख कर आत्मोपकारक तथा देशोन्नतिकारक वेदानुकूल व्याख्यान सुनाते और ऐक्यता उत्पादक आर्यसमाज स्थापित करने का भी उपदेश करते हैं।

जहाँ कहीं सच्चे सत्पुरुष होते हैं वहाँ तुरन्त वा कुछ दिन पीछे समाज स्थापित हो जाते हैं। अब तक जितने समाज बैठ चुके हैं यदि वे सब के सब उत्तम दशा में होते तो देश को बहुत सा लाभ हो रहता परन्तु परम शोक की बात है कि हमारे देश भाई जैसी कुछ आरम्भ शूरता दिखाते हैं, उसका शतांश क्या सहस्रांश भी पीछे को शेष नहीं रखते। कोई-कोई समाजी तो बहुत ही हीन दशा में पड़ गए हैं। प्रथम जिन समाजों में अतीव होता था घमासान—तहाँ बराबर देखा जाता है अब सुनसान। जिन्ने बहुतों का चित्त फाड़ जुदा किया—उन्ने क्या दुनिया का भला किया। नामवरी को सभी चाहते परन्तु वह कैसे होती है सो नहीं जानते। आर्यसमाजी कहावें परन्तु घृणित काम करने में न डरावें। दिवाली, दशहरा को जूआ छोड़ो बतावें फिर क्यों स्वयं दीवाने हो उन दिन हजारों ही के दाव लगावें, किसी जीव को ना सताना कदापि, ऐसा उपदेश करें। पर स्वयं शिकारी बन, बन-बन फिरें। विवाहादि कामों में मितव्ययी होने के व्याख्यान छपवावें, परन्तु स्वयं वैसे प्रसंगों पर उसे भूल हजारों रुपया रांड-भांड और आतिशबाजी में गमावें। यदि पूछें कि आपने इस खुशी में कितना रुपया समाज कोष में स्थापित किया तो टका नहीं। भला आप को जो जातकर्म, नामकरण आदि नामक संस्कार इस समय करना बहु आवश्यक थे सो भी किए तो साफ जवाब कि वह भी नहीं। ऐक्यता का डंका बजा कर अनैक्यता के अनेक भाँति बीजारोपण करें और करावें, तथापि क्या ऐसे-ऐसे लोग आर्यों के ताज ही कहावें। संस्कृत की उन्नति में खर्च एक गुना तो यावनी और गोरंडी के लिए दस गुना और जो कहीं पाय जावें बाहिर वालों की सहायता तो तुरन्त कर दें उसको सौ गुना। हो गई है मूर्तिपूजा में अनरुचि, फिर क्यों नहीं होती है संध्या वंदनादि कामों में अभिरुचि? सामाजिक कामों में परम अज्ञ लेखकों का जो करते हैं विश्वास—उनसे कभी नहीं हो सकती देशोन्नति की आस। यदि वैसे कामों में आपको है सदा अवकाश—फिर चंग चौसर

और शतरंज का कैसा होता है अहर्निश प्रकाश। और भी उनके ऐसे ही हैं अकथनीय अनेक कर्म—कि जिनके लिखने में आती है शर्म। सारांश उद्देश्य कुछ और कृत्य कुछ। कहो कौन ऐसों की सुने और क्यों कर श्रीमान् चाहते हैं सो बने। यह बुराई केवल स्वार्थ तत्परता[1] करती है उसे छोड़ो और भले बनो।

आढ्योऽस्मि धनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मम।

अर्थात् मैं बहुत बड़ा आदमी तथा धनवान और चलाव वाला हूँ। वह कौन ऐसा काम है जो मेरी बराबरी करेगा वा कुछ कहेगा। मेरा जी जो चाहेगा वही मैं करूँगा। ऐसा विचार कभी किसी आर्यसमाजी को चित्त में न लाना चाहिए। खासकर तब जब कि कुछ बनना चाहता है।

---

१. यह बड़ा भारी दोष है विशेष कर इस देश की बड़ी जाति वालों में अधिक देखा जाता है। फूट और विरोध की ठीक जड़ है, इसका स्वभाव सत्यधर्म के विरुद्ध है और लोग इन्द्रियों का दमन और परमात्मा की पहिचान तथा उसकी पूरी भक्ति रखते हैं, उन्हीं में नहीं होती। बाकी हमारे सब देश पर इसका पूरा दखल है। जो नर सब कुछ होकर अपने तईं तुच्छ जानते हैं, उन्हीं से यह हार मानती है। इसके बहुत करके पाँच स्वरूप हैं। १. द्रव्य, २. सुख, ३. दुःख, ४. बिना निर्मल चित्त के सज्जन कहलाना, ५. अपनी तारीफ सुनना, सो बिरले ही ऐसे हैं जिनको ये नहीं झकोरते, अर्थात् इन पाँचों में से कोई न कोई एक बात उसके चित्त में जरूर होती है। जहाँ उसके बस में होकर किसी से खेंचातानी किसी पक्ष की और सब बनाए काम बिगड़े।

जिसको द्रव्य का लालच है वह ऐसी राय देता और पसन्द करता है, जिसमें यह मिले या घर में बचे जिसको सुख की चाह है वह आलसी उस राय को पसन्द करता है, जिसमें अपने ऊपर किसी काम का बोझ न आ पड़े वा उस काम के न बनने से कहीं कलई न खुल जाय। तीसरा रूप दुःख का ऐसा होता है कि कितने ही आदमी थोड़े ही दुःख को इतना बढ़ा कर दिखाते हैं कि उसके यार-दोस्त आदि, जो वह चाहता है, उसी चाल पर चलें। चौथा रूप इस रीति का है कि संसार में सिवाय मेरे और कोई बुद्धिमान् वा प्रतिष्ठित वा विद्वान् न कहावे और जो इस प्रकार के हों उनको धब्बा लग जाय। व पाँचवा रूप ऐसा है कि आप में दरअसल कोई भी गुण स्तुति योग्य नहीं तथापि दूसरों के गुणों का फल अपने में जतला कर अपनी मिथ्या स्तुति औरों के मुख या स्वमुख से कह कर प्रकाशित करते हैं।

देखो विद्वानों का क्या कौल है ?

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

अर्थ यह है कि संसार में सर्वोत्तम पदार्थ केवल विद्या है। वह सत् पुरुष में होने से उसके ज्ञान को बढ़ाती है, जिससे संसार के बहुत से लोगों को सुख होता है। और यदि वह दुर्जन में जा पड़ती है तो उससे विरोध और उन्माद के ही कामों को कराती है, जिससे बहुत से लोगों का बिगाड़ होता है। उसी प्रकार दूसरा पदार्थ धन है, वह सत्पुरुषों के पास होता है, तो उसके वितरण से अनेक पुरुषों और जीवों को लाभ पहुँचता है और भी उससे बहुत से अनुपम उपकारक कार्य सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह कि सज्जन धनी अपने धन को परमेश्वर की अमानत समझ कर उसी के कामों में लगाता है। परन्तु यदि वही धन किसी दुष्ट-जन के पास होता है तो वह भाई बिरादरी और अड़ौसी-पड़ौसी तथा नगर ग्राम और देश-निवासियों का विनाश ही करता है। सारांश, दुर्जन धनी बद बद कर कहता है कि मेरा एक से हजार वा लाख तक खर्च क्यों न पड़ जाय परन्तु मैं उसको धूल ही में मिला छोड़ूँगा और सदा वैसा ही करता रहता है।

सिद्धान्त यह है कि विद्या, धन और शक्ति ये वास्तव में तीन पदार्थ हैं परन्तु संग पाकर प्रत्येक से दो-दो गुण प्रकट होते हैं। एक से पदार्थ वाले के सहित संसार का यथावत् उपकार सिद्ध होता है। दूसरे से पदार्थ वाले के सहित संसार का अपकार अर्थात् विनाश होता है। उनमें से द्वितीय और तृतीय पदार्थों के दृष्टान्तों का बाहुल्य यहाँ लिखना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि सदैव सर्वत्र देखा ही जाता है कि धन वाले कैसे हमेशा सत्यासत्य मुकद्दमे लड़ाते रहते हैं और ताकत वाले अर्थात् बदमाश वा जत्थावाले अथवा सब प्रकार के नीतिविहीन राज्याधिकारी अथवा चुंगी आदि के मेम्बर लोग किस प्रकार तोड़-फोड़ कुर्सी हाँ में हाँ मिला कर दे दे मूछों पर ताव, प्रजा को दुखित कर रहे हैं। रहा दृष्टान्त विद्या का सो वह भी इन दिनों सूर्यवत् प्रकाशित हो रहा है।

देखो एक तरफ श्रीमान् सकल गुण निधान स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और उनके अनन्तर श्रीयुत मुन्शी इन्द्रमणि व कविराज हरिश्चन्द्र जी और पण्ड्या मोहनलाल जी आदि विद्वानों और पूना, बम्बई, लाहौर, मेरठ आदि के उत्तम आर्यसमाजियों और हिन्दी प्रदीप, भारतमित्र

तथा अवध अखबार आदि के श्रेष्ठ सम्पादकों को कि कैसा जगत् में निःस्पृहता के साथ आनन्द बरसा रहे हैं।

और उसके विरुद्ध दूसरी तरफ देखो श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द जी तदनन्तर राजा शिवप्रसाद जी व राजा पौराणिक चतुर्भुज जी और पं० श्री गोपाल जी आदि पोपों और पोपसमाजियों और मित्रविलास, कविवचनसुधा और जाम जमशेद आदि अखबारों के नष्ट सम्पादकों को। किस प्रकार देश का नाश मार पेट भर रहे हैं। श्रीमान् और आर्यसमाजियों की मिथ्या निन्दा करना तो मानो इन सब लोगों की खास उपजीविका ही है।

इन सब में से पं० श्री गोपाल जी तो बड़े ही विचित्र पुरुष हैं। ये जिला मेरठ में कोई भूड़बराल नाम ग्राम है वहाँ रहते हैं। इनका गाँव भी सब लोग वैसा ही समझें जैसा कि जिला मैनपुरी में भोगांव।[1] महात्मा जी ने सवा हाथ लम्बी चौड़ी ४१८ पृष्ठ की एक पुस्तक बना कर उसका नाम वेदार्थप्रकाश रक्खा है। यह वास्तव में वेदार्थप्रकाशक तो नहीं दीख पड़ती परन्तु वेदार्थ नाशक कहें तो यथार्थ होगी क्योंकि जो वेदों को नहीं जानते वे उसके अर्थ को क्योंकर प्रकाश कर सकते हैं। जगत् में झूठे सच्चे पण्डित और विद्वान् कहाते थे। सो ऐसी रचना रची। जो ढोल से खाल भी गई, यदि इनकी इस कृति पर कोई विद्वान् लेखनी गहे तो उसका ग्रन्थ इनके ग्रन्थ से अपरिमित बढ़े। आगे स्थालीपुलाकन्यायवत्[2] कुछ दोष दर्शित कर दिये हैं। इन्हें देख+ इनकी विद्या का परिचय सबको भली-भाँति हो जायगा। प्रथम आपने पद्यमय ग्रन्थ रचने का उद्योग किया।❀ कुछ दूर

---

१. यह गांव उस पक्की बड़ी सड़क पर आबाद है जो कलकत्ता से पेशावर तक गई है। इसका दूसरा नाम मूर्खों का शहर है। वहाँ के रहने वालों की बहुत सी कहानी प्रसिद्ध है जिनको सुन वह गांव यथानाम तथागुण मालूम होने लग जाता है।

२. इस न्याय का अर्थ यह है कि जैसे हांडी भर चावलों में एक सीत के टटोलने से हांडी भर की परीक्षा हो जाती है।

+ आगे मुख्य पांच दोष छांट कर वर्णन किये हैं। उन्हीं के अन्तर्गत बहत सी बातें आ गई हैं। और जो बातें कही हैं उनका उदाहरण उसी के नीचे नोटों में लिख दिया है।

❀ इनके कुल ग्रन्थ में १२ अध्याय हैं। उनमें से आरम्भ के छोटे-छोटे

चल कर गिर पड़े तब गद्य पर जा रहे। सो भी ठीक नहीं। कहो, कितना भारी यह दोष यदि श्लोकमय ग्रन्थ बनाने की शक्ति न थी तो पहले ही से क्यों न सोच लिया और जो आरम्भ कर चुके थे तो उसी प्रकार सब ग्रन्थ समाप्त करना उचित था। जब दोनों प्रकार के[1] बुद्धिलक्षणों से गिरे तो फिर किस काम के रहे। क्योंकि इन चूकों से उनकी स्थिति तीसरा कक्षा (दर्जे) में हुई सो वह कक्षा केवल निर्बुद्धियों ही के लिए है। अतः ऐसों के ग्रन्थ कदापि माननीय नहीं होते। मूर्खों को चाहे भले ही ठगें। कदाचित् कहें कि हमने ऐसी रचना से अपनी दोनों प्रकार की विद्वत्ता दिखलाई है सो इसका कुछ प्रसंग भूमिका में लिख देना उचित था। सो कुछ नहीं लिखा तो बस।

द्वितीय—किसी विद्वान् को कभी कोई मिथ्या[2] बात भूल कर भी अपने ग्रन्थ में न लिखनी चाहिये। इनने जान बूझ कर अनेक मिथ्या प्रसंग भर दिये हैं जिनमें कितने ही को माना है। कहो इसका नाम विद्वत्ता है या अविद्वत्ता? क्या यह छोटा दोष और क्या ऐसों को कभी कारागार हुआ?

दो अध्याय ज्यों-त्यों श्लोकों में चला कर बाकी के दस संस्कृत भाषा में चलाये हैं और वे बहुत बड़े-बड़े हैं। यदि ये भी पद्य रूप होते तो कम से कम दो हजार श्लोक बनाने पड़ते परन्तु पण्डित जी महाराज की तो गर्मी केवल १२५ श्लोकों की रचना से ही पटा गई फिर आगे कैसे चलते?

१. अनारम्भो मनुष्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्।
आरम्भितान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्॥

२. जैसे महाराज काशी नरेश को छली वा बहानेबाज कहना और कानपुर के शास्त्रार्थ में स्वामी जी की हार बताना और उसी मिथ्या बात की गवाही में वहाँ के साहब कलक्टर आदि का नाम निःशंक लिखना, इनका कैसा निकृष्ट कर्म। सत्य वार्ता तो वहाँ की यह है कि जब श्रीमान् ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा को अवाच्य किया तब हजारों प्रतिष्ठित हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेजों के बीच संस्कृत के विद्वान् असिस्टेंट कलक्टर ने जो कि उस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थे, अपनी कुर्सी से उठ खड़े हो, टोपी उतार स्वामी जी महाराज को सलाम कर उच्च स्वर से सब को श्रीमान् की जीत सुनाई और नीचे लिखे अनुसार लेख अंग्रेजी में लिख हस्ताक्षर कर दिए हैं। सो यह सब शास्त्रार्थ पत्र यथावत् मेरे पास मौजूद है। कहो क्यों ऐसों को पूजने वाले नरक को न जावें।

पण्डित जी ने नहीं सुना ।[१] सच कहा है—लोभः प्रतिष्ठा पापस्य ।

नकल अंग्रेजी चिट्ठी

साहब असिस्टेण्ट कलेक्टर व डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट
कानपुर (उ० प्र०)

True Copy

Cownpore,

Gentlemen,

At the time in question I decided in favour of Dayanand Saraswati Fakir and I believed his arguments in a accordance with the Vedas. I think he won the day. If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

Yours obediently,
Sd. W. Thairs.

१. संवत् १९२५ की बात है कि श्रीमान् मुकाम अनूपशहर जिला बुलन्दशहर में विराजमान थे। वहाँ के एक अगरी नाम के गुसाईं पर—एक आर्य गुर्जर वैद्य ने मुन्शी प्यारेलाल साहब तहसीलदार कौम खत्री साकिन बरेली के इजलास में नालिश की कि यह गुसाईं आज गंगा तट पर फलां-फलां गवाहों के सामने श्री स्वामी जी को गृहस्थ, क्रिस्तान और अंग्रेजों का तनख्वाहदार उपदेशक कहाता है। अब अपने कहे का सुबूत दे या मुताबिक कानून सजा पावे। चुनाचे गुसाईं गिरफ्तार हुआ और उससे पूछा गया कि बता स्वामी जी के स्त्री पुत्रादि कहाँ हैं और किस पादरी ने उनको ईसाई बनाया और किस सरकारी खजाने से उनको प्रति मास तनख्वाह मिलती है ? रेल तार का खर्च हम से ले और पता लिखा कर तू अभी सबको जहाँ-तहाँ से पकड़ा दे। अब तो गुसाईं जी हैं हैं करने लगे। चट हुक्म छः महीने की सजा का हुआ। धन्य श्रीमान् के दयालु स्वभाव का कि जिन्होंने यह खबर पाते ही उसी दम वैद्यराज को उलटा दौड़ा कर उसे छुड़वाया। वैद्यराज ने तो अपनी जान तुरन्त आकर श्रीमान् को बड़ी फूल के साथ खुशखबरी सुनाई थी परन्तु यहाँ आते ही बिचारे आपत्ति में पड़ गये। पीछे उसको छूटा सुन जब श्रीमान् शान्त हुए तब सबको उपदेश किया कि भाई जब तक मनुष्य में अविद्या होती है तब तक वह स्वार्थ-तत्परता में ही

तृतीय—किसी विद्वान् के लेख में अभिमान और पक्षपात तथा आत्मश्लाघा और मिथ्या प्रमाण कदापि लेशमात्र को न होना चाहिये, जैसे है अमर कोश पर आप उसे बताते हैं स्मृति, सो इनका ग्रन्थ इन सब दोषों से यथेच्छा परिपूरित है।[1] कहो कैसा और कितना गरुआ यह कलंक

डूबा रहता है और उससे सदा ऐसा ही व्यवहार होता है। जैसा कि तुम देखते हो इस गुसाईं को। बल्कि बहुत से लोग इस संसार में उससे कहीं बढ़ कर हैं और मेरा उद्योग विशेषकर ऐसों ही के सुधार के लिए है।

१. अब देखिये इनकी आत्मस्तुति और अभिमान कि कैसा अपने को प्रसिद्ध करते हैं। श्रीमत् पदवाक्यपारावारीण श्रीगौड़वंशतिलक श्रीगोपाल शृणु प्राज्ञ-महातेजस्वि-विप्रोऽयं बुधाह्वते। हमारे पहुँचते ही मेरठ निवासी सब विद्वान् कृत-कृत्य हुए। उन सब ने हमको सभापति बनाया। हमारी आज्ञा को वे सब ऐसी समझते थे, जैसे राजा की। हमारा नाम सुन प्रथम पराजित होने के कारण दयानन्द थर-थर कांपते और बेहोश हो जाते थे। हमको सब लोग महादेव की नाईं जानो और धीरज धरो। जो-जो दयानन्द कहते गये सो-सो सब हमने मंजूर की।

पक्के कागज पर शर्तें लिख रजिस्ट्री कर देने तक को कहा परन्तु वे अपनी किसी एक भी बात पर न जमे। निदान यह कह कर मेरठ से भागे कि कहीं श्री गोपाल जी हमको सरकार में अर्जी देकर पकड़ा न देवें। और भी सब देश देशान्तर में श्रीमान् का हारना और सब ठौर से भागना ही लिखा है। पक्षपात की यह रंगत कि आर्यावर्त्त भर के ब्राह्मणों में सिवाय गौड़ों के और कोई ब्राह्मण न पवित्र है; न पूजनीय। गौड़ों की जिस प्रकार उत्तमता महात्मा जी ने वर्णन की है वह सब प्रकरण देखने ही के योग्य है। आप लिखते हैं कि जैसा गुड़ सब पदार्थों में उत्तम वैसे ही हम, बल्कि इसीलिए गुड़ शब्द का हमारी जाति में सम्बन्ध रक्खा गया है। दूसरे गुड़ शब्द का गोल-गोल मध्य-मध्य का आवर्त अर्थ हुआ वह ब्रह्म से सम्बधित हो ब्रह्मावर्त नाम का पवित्र देश बना है। वहाँ के मुख्य निवासी हम गौड़ों को जानो और मानो।

वाह जी महाराज वाह, आपने व्याख्या तो खूब ही की। परन्तु यह

चतुर्थ—श्रेष्ठ लेख वह होता है कि जिसमें प्रतिष्ठितों के साथ उनकी प्रतिष्ठानुसार शब्दों का ऊह हो। जिससे उसकी समालोचना के समय किसी के चित्त में ग्लानि न उपजे और न किसी को उसके पढ़ने व सुनने से किसी प्रकार का पश्चात्ताप वा क्षोभ हो। सो इसका भी कुछ विचार नहीं किया गया है।[1] कहो, कैसा यह अप्रतिष्ठित कर्म और लांछन कभी ऐसे लोग विद्वानों से प्रतिष्ठा नहीं पाते।

पञ्चम—सब बातें रहीं एक तरफ अर्थात् और कुछ न हो तो जिसका नाम विद्वान् का लेख उसका हर एक आशय संगत तथा युक्ति-युक्त और वेदानुकूल तो हो और उसके सब पद पदार्थ तथा छन्दादिक

विचार न किया कि प्रथमार्थ में चींटे और द्वितीयार्थ में देश भर के विद्वान् आपको चिमट जावेंगे। फिर आपका पता भी न चलेगा और विद्वानों को अर्थ करने में आपके समान खींचातानी भी न करनी पड़ेगी। वे लोग आप को उसी त्रिकाण्डी स्मृति के अनुसार गुड़ का अर्थ गोल और गोल से स्वार्थ में क प्रत्यय करके आपको कुण्ड का सहोदर बना छोड़ेंगे और आपकी गिनती हरमानियाँ और गोला पूरयों में करावेंगे। फिर आपका सीठा प्रथमार्थ भी ठीक हो जावेगा और ब्रह्मावर्त्त देश यथाशास्त्र कान्य-कुब्जों ही के अधिकार में रहेगा। और आदि तथा शुद्ध गौड़ वे रहेंगे जिनकी जड़ गौड़वाना नाम प्रदेश में है और 'सारस्वताः कान्यकुब्जगौडा मैथिल उत्कलाः' इस वाक्य के पाठ-क्रम से भी उनका कहा शुद्ध ठहरेगा। इसलिए बहुत अच्छा हो जो आप हद से अधिक न बढ़ें क्योंकि प्रसिद्ध है कि जो बढ़ता है वह गिरता है।

१. दयानन्द परास्त—ऐसा हजारों बार लिखना तथा जगत् मान्य श्रीमान् को छली, भ्रमी, नास्तिकादि कह कर स्वयं वरिष्ठ होना तथा ऐसा लिखना कि—

शठतराऽपि गौडा अधीतवेदेभ्यो दाक्षिणात्येभ्यः श्रेष्ठतमा एव। अर्थात् वज्र मूर्ख भी गौड़ लोग समस्त वेदपाठी अच्छे-अच्छे विद्वानों से बढ़कर ही श्रेष्ठ होते हैं। 'दाक्षिणात्यानां वेदाध्ययनं शूद्रवन्निषिद्धम्' अर्थात् जैसा शूद्रों को वेदों का पढ़ना अनुचित वैसा ही दक्षिणी ब्राह्मणों को भी न पढ़ना चाहिये। सार इनके हृदय का यह है कि पंच गौड़ों के नाईं पञ्चद्राविड़ भी वेदों को डुबो देवें तो हमारी बन पड़े। इसी हेतु आपने लिखा है कि कभी वेदों की वाणी कल्याणकारिणी नहीं ठहर सकती। सो दयानन्द ठहराते हैं, अतः दयानन्दपरास्तः।

व्याकरणादि शास्त्रों की यथावत् शुद्धि रखते हों।[1] अन्यथा व्यर्थ विकत्थन

१. असंगत और परस्पर विरुद्ध ऐसे लेखों को कहते हैं जैसे कहीं लिखा कि दयानन्द मारे डर के कभी किसी विद्वान् के सामने नहीं हुए और फिर कहीं जाकर लिखा कि बम्बई, काशी, लाहौर, आदि में फलां-फलां पण्डितों से हारे। मनुष्यों से सूर्य चन्द्रादि ग्रह उत्पन्न हुए। दाक्षिणात्यों की भाषा को अशुद्ध कहना फिर उसकी अशुद्धता के परिचय में अपनी उस भाषा के अपशब्दों को दिखाना जिसे प्रथम बहुत शुद्ध ठहरा चुके थे। 'एष धर्मस्य वै योनिः' इस मनु वाक्य का विपरीतार्थ यह जताना कि ब्राह्मण मात्र की उत्पत्ति के बीज हम गौड़ लोग हैं। 'नोपतिष्ठति' इस मनु वाक्य से दो संध्या की जगह चार संध्या करने को बताना। अंगिरा ऋषि और देवी पार्वती का सम्बन्ध अंग्रेज, ईसामसीह, और गिरजाधर में यथाक्रम घुसेड़ कर उनको वेदानुकूल कहना तथा स्वस्त्रियों के मुख योनि की उपमा देना, युक्तिरहित और वेद-विरुद्ध समझ यह कही जाती है कि—

वैशेष्यात् प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्निगमस्य च धारणात्।
संस्कारस्य विशेषत्वात् वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः॥ १॥
यद्यप्येतेष्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणा पूज्या ब्राह्मणो दैवतं महत्॥ २॥

ये दोनों श्लोक यद्यपि मनुस्मृति में ही पाये जाते हैं परन्तु विचारवान् को स्पष्ट विदित हो जाता है कि प्रथम श्लोक से द्वितीय श्लोक का आशय बहुत विरुद्ध है। मनु जी जैसे महात्मा के लेख में ऐसा विरोध नहीं आ सकता।

सो इसका किञ्चिदपि विचार न करके प्रधान को गौण मान प्रक्षिप्त और सर्वथा त्याज्य वचनों को प्रधानता देकर लिखा कि ऐसे ही ब्राह्मण होना चाहिए। नहीं तो कलि किस प्रकार प्रवर्त होत होय। अब उनके गद्य और पद्यों की थोड़ी अशुद्धि की ओर देख लीजिए। ९वें श्लोक के चतुर्थ पदान्त में खण्ड पदोपन्यास रूप यदि विच्छेद दोष है। १०वें श्लोक में कालिकात्रिका पद अशुद्ध है और २०वें का भाषार्थ भ्रष्ट। २९ व ३०वें श्लोक लक्षणविरुद्ध और ४०वें श्लोक में छन्दोभंग दोष है। इसी प्रकार और भी बहुत से पद्य हैं।

और वृथा परिश्रम कहाता है। इन दिनों तो सभ्य मान्य वह लेख होता है जिसकी देश भाषा तक सर्वथा और सर्वांग शुद्ध हो, सो यह शुद्धि तो बहुधा ऐसे पण्डितों से होनी परम दुर्घट, तिसमें इनकी भाषा तो सबसे निराली और अतीव विलक्षण है। बस यही लीला पं० श्रद्धाराम फिल्लोरी और राजपौराणिक पं० चतुर्भुज जी तथा रामसुब्रह्मण्य शास्त्री जी और पं० उमादत्त जी आदि सब मत ग्रन्थकारों की जानो। जब बड़े-बड़े पण्डित

---

३०२ पृष्ठ में "स्वस्मिन् शूद्रत्वनिरासायोपनयनमवश्यमेव द्विजत्व-सिध्या सन्ध्योपासनपुरस्सरं वेदाधिकारसिद्धच्यै विधेयमिति सिद्धान्त:" इस पंक्ति की अनन्विता और अशुद्धता विद्वज्जनों को स्वत: स्पष्ट हो जायगी।

ग्रन्थकार का भाषार्थ भी देखिए "अपनी शूद्रता के दूर करने को उपनयन अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार द्विजत्व सिद्धि करके संध्यो-पासनपूर्वक वेदाधिकार है, सिद्धान्त हुआ।" अब किंचित् यहाँ भी कटाक्ष निक्षेपणीय है कि इस प्रकार यह किस पद का अर्थ है और इस प्रकार के अनुक्त होने से "इस" इस पद से किसका परामर्श है। एक और विचित्र चमत्कार देखिए 'संध्योपासनपुरस्सरं' इस पद को 'समासान्त:स्थ वेदाधि-कार पद का विशेषण लिखा है और 'वेदाधिकारसिद्धच्यै' इसका 'वेदाधिकार' है यह अर्थ निरूपण किया गया है। क्यों न हो व्युत्पन्नों का तो यही लक्षण होना चाहिए। व्युत्पन्नता तो इसी प्रकार दिगन्तगामिनी होती है। साष्टांग है आप ऐसे व्युत्पन्न शिरोमणियों को। और भी देखिए पृ० ३९० में आपने लिखा कि 'संन्यासाश्रमस्तु मुक्तिरूप: फलं परमपुरुषार्थन्वादिति सिद्धम्' इस वाक्य का अर्थ कहिए क्या है? पृष्ठ ४०५ में आपका 'निस्नातं' पद तो बहुत ही शुद्ध है! समाप्ति के श्लोक में 'वेदार्थशब्देति मुखप्रकाश:' ऐसा लिख, देखिए आप कैसे वैयाकरणभूषण बने हैं। भला कहिए तो सही कि आपने यहाँ कौन सा समास माना और इस लेख से किस रीति वेदार्थप्रकाश यह नाम निकाला।

आर्यगण, महात्मा जी वेदार्थप्रकाश करने को चले तो यह प्रकाशित किया कि परमेश्वर निराकार होने के कारण श्वास रूप वेद उससे उत्पन्न ही नहीं हो सकते और नियोग तथा मातुलसुतापरिणयन में दोषा-रोपण कर जिन वेदों का प्रकाश करना चाहते थे उनका स्पष्ट खण्डन किया।

इसी प्रकार बाल-विवाह की पुष्टि करना भी इन लोगों का अनर्गल कर्म और देश-विनाश का परम हेतु-भूत इनका सारा ग्रन्थ है।

नामधारियों ही की पोथी निरी थोथी है तो फिर और लाला लोगों आदि की ऊटपटांगों का तो कहना ही क्या है ? इनका साहस तो इस कहावत का सा है कि "बड़े-बड़े बह जायं कोरिया कहे मोय पार उतार" इन सब लोगों ने अपनी रचना का नाम मनमाना उस प्रकार रक्खा है जैसे कोई अपने जन्मान्ध पुत्र का नाम धरे कमलनयन। हाँ, इस विषय में प्रशंसनीय और निर्दोष हैं तो पं० उमादत्त जी महाराज।[1] जिन्होंने आत्म-रचित ग्रन्थ का नाम वास्तव में यथार्थ अर्थात् बहुत ही ठीक सादृश्यता के साथ रख कर छपवाया है। वह नाम सन्मतेन्दु है। इसमें पीछे जो 'इन्दु' शब्द आया है उसका वाच्यार्थ चन्द्रमा है। सो सब लोग जानते ही हैं कि वह कलंकी और और दोषाकर अर्थात् रात्रि अर्थात् अन्धकार का करने वाला होता है। यदि पण्डित जी महाराज सकार की जगह मकार लिखते तो उनके ग्रन्थ का नाम विशेष शुद्ध कहा जाता। इस अशुद्धि को सब लोग उनकी और विशेष कर मेरी प्रार्थनानुसार शुद्ध कर लेवें।

'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः।' इस संस्कृत और[1] 'बिसमिल्ला ही गलत।' इस फारसी वाक्य का पूर्ण परिचय इनके सिवाय और कौन करावे। महात्मा जी ने यह ग्रन्थ १४ वर्ष में बना पाया तिसकी यह कैफियत कि प्रथम ही श्लोक में जो गुरु की वन्दना लिखी है उसमें गुरु शब्द को नपुंसक[2] लिखा है। तिस पर आप व्याकरणज्ञानी का दम भरते और श्रीमान् पूर्ण विद्वान् स्वामी जी महाराज को, जिन्होंने संसार भर के पण्डितों की ७२ पीढ़ियों की भूल मिटा कर+ सत्पथ दिखाया है, व्याकरण शास्त्र का अनभिज्ञ अपने ग्रन्थ में लिख मूर्खों की आंखों में धूल झोंक ठगते और काशी तक के विद्वानों के शिरोमणि बनते हैं। वाह जी वाह, नमस्कार है आपको। चेतो भाई चेतो, हुआ सो हुआ, अब

१. ये पण्डित जी वास्तव में बरेली के रहने वाले हैं जहाँ सरकारी पागलखाना है जो नहीं जानते वे उन्हें फर्रुखाबाद निवासी कहते हैं।

२. हाँ, यदि पण्डित जी महाराज कहें कि जैसे के लिए वैसा लिंग प्रयोग लिख जताना क्या दोष है तो हम भी क्षम्यताम् कहेंगे।

+ विचार करना चाहिए कि पाँच हजार वर्ष के भीतर आपसे बढ़कर हुए विद्वानों की चालाकी कि "जिसको उन्होंने व्यास वसिष्ठादि के नामों से बना कर चला दी थी" जिसने पकड़ कर सबको दर्पणवत् दिखा दी उसके सम्मुख आप आधुनिकों का काव्य क्या चीज है ?

भी चेतो और रहा सहा भ्रम निम्नलिखित वृत्तान्त[1] पढ़ मेटो ।' आर्यगण

१. संवत् १९३७ के ज्येष्ठ मास में एक माह से अधिक श्रीमान् स्वामी जी महाराज नगर फर्रुखाबाद में विराजमान थे । उन दिनों ये महात्मा जी हम स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे ऐसी गर्मागर्म खबरें प्रत्यह उड़ाते रहते रहे परन्तु सैकड़ों थुनकियाँ लगाने पर भी श्रीमान् के सम्मुख घड़ी भर को भी खड़े न हो सके । यह बात सर्वत्र इस समाज के १२वें मासिक पत्र द्वारा विस्तारपूर्वक प्रकाशित हो चुकी है तथापि पं० जी बहुत कुछ पाण्डित्य का दम मारते और श्रीमान् को अपनी पुस्तक में सैकड़ों जगह धूर्त और वेषधारी आदि अनेक दुर्वचनों से वेष्टित करते और अपना वेदभाष्य बनाने का विज्ञापन देते हैं और लिखते हैं कि मेरे ग्रन्थ को वेद ही जानो जो कोई इस सन्मतेन्दु का खण्डन करेगा वह वेदों का ही खण्डनकर्ता होगा परन्तु परमेश्वर का नाम गर्वापहारी है । उसने इनको तत्काल पारसाल ऐसी पटक दी कि महात्मा जी का जी ही जानता होगा । वह वृत्तान्त यह है कि यहाँ जिला स्कूल में इटावे के निवासी पण्डित भैरवदत्त जी के प्रख्यात एक सच्छिष्य पण्डित ललिताप्रसाद जी नाम के एक विद्वान् हैं । उनके साथ शास्त्रार्थ छिड़ कर उमादत्त पराभूति प्रकाशित हुई । यहाँ आगे उसमें का थोड़ा सा उदाहण लिख दिया है सब लोग उसको देख निर्णय करें कि ये कैसे क्या विद्वान् हैं ?

अथोदाहरणम्—"वस्तुतस्तु पत्रान्ते वृत्तमपि श्रीमद्दण्डिनः सूक्ति यथार्थयतीत्यस्य अथयाइच्छया दण्डिनस्सूक्ति गौर्गौरित्यादि कामयति अगच्छति भवति सति विपरीतलक्षणयागच्छति सति पत्रान्तेऽथिवृत्तमपि श्रीमत् कात्वा श्रीमदित्यर्थो यथार्थी दण्डिनो राज्ञ इच्छया दीयतामस्मा इत्याकारिकां सूक्तिमयति प्राग्वदत्रापि गच्छति सति किं श्रीमानितिष्ठनीतो-नावबुद्ध एव भवता नैतच्चित्रम् ।

इस पण्डित ललिताप्रसाद जी के लेख का आशय ठीक-ठीक यह है कि जिस प्रकार कोई भिखारी राजा की यह आज्ञा पाकर भी कि इसे कुछ दो सुशोभित नहीं होता । उसी प्रकार आपका श्लोक भी लक्षण विरुद्ध होने के कारण अशोभित है । सो यह अर्थ पं० उमादत्त जी नहीं समझे । उन्होंने पं० ललिताप्रसाद जी को यह लिखा कि "अस्मिन्नगरे स्वप्नेऽपि मम राज्ञा सह समागमाभावाद्दीयतामित्युक्तेस्तु दूरादेवापास्तत्वात् । अर्थात् मांगना तो दूर रहा कभी सपने में भी मेरा इस नगर में किसी राजा से समागम नहीं हुआ ।" अब विद्वान् लोग विचार कर लेवें कि पं० उमादत्त जी महाराज

महात्मा जी अनेक दुर्वचन श्रीमान् को लिखकर सफाई दिखाते हैं—"तनु-मात्सर्यभावतः" कहिए संसार की कैसी विचित्र लीला है। अर्थात् ये लोग कैसा उछल-उछल कर पाण्डित्य दिखा रहे हैं, परन्तु खूब जान लो कि

कैसे विद्वान् हैं और उनसे पूछें कि ललिताप्रसाद जी ने यह कहाँ लिखा था कि तुम राजा से मांगते फिरते हो। जब पं० ललिताप्रसाद जी ने सवाल दीगर जवाब दीगर की कहावत देखी तब उन्होंने पं० उमादत्त जी को दूसरा पत्र लिख उसमें यह श्लोक लिखा—

> अर्थबोधभ्रमादभ्रमि स्रजःपूरपूरिते।
> लेखोपाये न किं नो वश्चक्षुन्मीलिते मया॥

अब पं० उमादत्त जी महाराज ने अपनी पहली भूल को छोड़ पं० ललिताप्रसाद जी के इस श्लोक पर तर्क किया कि चक्षुषी इति प्रथमान्ते प्रकृतभावाभावः केन, सप्तम्यन्तस्त्वनन्वितः। इसे देख पं० ललिताप्रसाद ने जो लिखा कि वाह आपने तो खूब ही वैयाकरणता छाँटी अर्थ न समझ कर सप्तम्यन्त अनन्वित है यह लेख तो स्पष्ट आपकी यथाज्ञातता विदित करता है। फिर इसका अन्वय लिख भेजा, वह उमादत्त पराभूति ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है।

अब इन महाशय की और भी कुछ वैयाकरणता उमादत्त पराभूति ग्रन्थ से संग्रह की जाती है। जैसे अपराह्ण शब्द जो कि उत्तर दिन वाची है उसे महात्मा जी अपरान्ह और 'प्रतिद्वन्द्वि' शब्द को प्रतिद्वन्दि लिखते हैं और बहु ऋषिवचनविरोधात् यहाँ संहिता भी नहीं कर जानते। अब कुछ साहित्य का विषय देखिए। "क्षिपति सर्वमसौ प्रकृतेरहमहमिकामनुसृत्य पृथग्जनः। बुधजनस्तु विवेकवशेन तां वशयितुं यतते विगतस्मयः।" यह श्लोक पं० उमादत्त जी का है। इस पर ललिताप्रसाद जी लिखते हैं कि इस श्लोक के प्रथम पाद में गुरु के स्थान में लघु वर्णोपन्यास से छन्दोभंग है और जो पादान्त का लघु भी गुरु होता है यह समाधान, सो भी असंगत है क्योंकि काव्यप्रकाश साहित्यदर्पणादि में स्पष्ट लिखा है कि यह वचन द्वितीय चतुर्थ पाद विषयक है और

> अमात्र सायके मया विदूहिता सदर्थके।
> अमासमेन मासुष्यायतान्ययाति सन्मुदे॥

इस दूसरे वृत्त में हतवृत्तता दोष है। बस यह दिग्दर्शन मात्र दिखाया। विशेष देखना चाहें तो असल ग्रन्थ में देख लेवें। कहिए पण्डितराज यह पराभूति क्यों हुई और आप कैसेहार मान जवाब खा बैठे और आपके यजुर्वेद-भाष्य के छपने में क्या देर है कुछ दरखास्तें भी आ गई हैं वा नहीं।

बहुत सा बुड़-बुड़ शब्द और छलक अपूर्ण ही घट में देखी जाती है। न कभी किसी पूर्ण में। भाई पण्डित नामधारी लोगो, तुम अपने मुंह जितना अपना बड़प्पन प्रकाशित कर धनाबाई बनते हो, उतने ही परीक्षकों के समीप कच्चान ठहरते हो। महत्त्व उसी का ठीक जिसकी स्तुति बिना स्तुत्य पुरुष की इच्छा और खर्च के औरों के मुंह लेखनी द्वारा सुनाई दे। सो ऐसा कोई एक भी दृष्टान्त आप लोगों में से किसी का देखा नहीं जाता। थोड़े स्थल और मनुष्यों के सिवाय आप लोगों को कोई यह भी नहीं जानता कि कौन किस खेत की मूली हो। श्रीमान् सकल विद्या-निधान स्वामी जी महाराज सारे भूमण्डल पर सहस्रांशु के समान प्रकाश कर रहे हैं उसी प्रकार दसों दिशा उनकी सत्कीर्ति से आच्छादित और उज्वलित हो रही हैं। लक्षावधि लोग उन पर अहर्निश धन्यवाद रूपी पुष्पों की वृष्टि करते और उनका उपकार मानते हैं परन्तु उनको इन बातों का किञ्चित् मात्र गौरव वा प्रतिष्ठा वा अभिमान नहीं। न आप ऐसे अनेक लोगों की निन्दाकृति सुनकर उनको कभी कुछ क्षोभ वा ताप उपजता है। मुख्य तत्त्व इसका यही है कि वे मुक्त हैं और आप बद्ध। इतना भारी अन्तर उनमें और आप में है। किन्तु शोक कि उसको आप नहीं जानते तभी आप लोग सब कुछ को न कुछ और न कुछ को बहुत कुछ समझते और लिखते हो। श्रीमान् के निकट त्रिलोकी का राजा और उसका सारा वैभव तृण प्रायः है। आप लोग इतनी हाय-हाय और अन्याय तथा खुशामद से भी अपना पेट नहीं भर पाते और श्रीयुत परम निस्पृहता के साथ हजारों रुपयों का जगदुपकारक वार्षिक खर्च आनन्द पूर्वक चला रहे हैं। आप उनका सर्वथा विनाश और वे आपका सर्वथा प्रकाश चाहते हैं।

सो यह सब आप लोगों का कर्म आपकी केवल अविद्या और स्वार्थतत्परता के कारण है और उनका सर्व कर्म उनकी सद्विद्या और परमार्थ दृष्टि से प्रवृत्त हो रहा है। इसी कारण आप सर्व प्रकार से दुखी और श्रीमान् अतुल सुखयुक्त रहते हैं। सिद्धान्त यह कि जिनको सदैव त्रिविध संताप घेरे रहें उनके उपदेशों पर चलने वालों का कहो किस विध कल्याण हो। अतएव श्रीमान् सब को वास्तविक सुख हेतु का बोध अनेक-विध कर रहे हैं कि भाई आर्यो, अपना सत्य सनातन वैदिक धर्म गहो, जिससे तुम्हारी पराधीनता छुटे और कामना चतुष्टय की सिद्धि हो और 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' यह कहावत देश भर में भली-भाँति प्रथित है परन्तु उस पर किसी का कुछ ध्यान है न विचार। आर्य गण, यद्यपि यह

ऊपर लिखी कहावत मोटी और भद्दी है परन्तु आशय इसका बहुत ही गम्भीर जानो। जिस दिन वह हमारे देशवासियों के चित्त में ठीक-ठीक धंसेगा उसी दिन से देश का सुधार होने लग जावेगा। श्री जगदीश्वर श्रीमान् परम सुखान सकल सद्गुणों की खान इन स्वामी जी महाराज को परमायु करे जिन्होंने देशसुधार का बीज सर्वत्र अनेक भाँति बोकर अंकुर को हरा भरा रखने के लिए ठौर-ठौर समाजों को जमाया है और उनमें से बहुतेरे अपना काम वैसा कर रहे हैं जैसा कि चाहिए।

आशा है कि सर्वशक्तिमान् उनके भी हृदय को आशु निर्मल करेगा जिनका शोक वास्तविक सत्पुरुषों को है। परन्तु बिना उपाय कुछ नहीं होता। अतएव प्रशंसित श्रीमान् ने अन्तःकरण की शुद्धि के लिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना जिस प्रकार करने को कही है, वह सब रीति हमने अपने ज्ञानसागर ग्रन्थ में यथावत् लिखी है। जिनको अपना और अपने देश का हित अभीष्ट हो वे उसमें अच्छे प्रकार मन लगा कर निर्मल होवें और सुगमता के साथ सकल सुख भोग संसार से तरें। परन्तु बिना अन्तःकरण की शुद्धि के कभी किसी मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। न ऐसा पुरुष औरों का कल्याण कर सकता है। इसी कारण जगत् में थोड़ों को छोड़ क्या पण्डित क्या मूर्ख, क्या राजा क्या रंक, क्या अमीर क्या फकीर अर्थात् सबके सब[1] खराबी में पड़े सड़ गल रहे हैं। इनमें किसी एक को भी मुख्य कर्त्तव्य क्या है सो नहीं सूझता। करना धरना तो दूर कोई इतना भी तो नहीं सोचता कि मनुष्य संसार भर के जीवों में श्रेष्ठ कहा जाता है सो क्यों ?

बिना इस सोच-विचार के कभी कोई मनुष्य—मनुष्य नहीं कहा जाता। जैसे सड़ा-गला बीज वा मेवा लकड़ी आदि पदार्थ अपनी आकृति में होकर भी उनका गुण उनमें न होने के कारण संग्रह योग्य नहीं ठहरते, उसी प्रकार बिना मनुष्यता के उपरोक्त पण्डित आदि लोग निकम्मे कहे जाते हैं।

जो लोग अन्त तक इसी दशा में रह कर मर जाते वे आत्मघातक कहाते और स्वकर्मानुसार नीच अर्थात् पश्वादि योनि पाते हैं और जो अपने में किसी प्रकार की मनुष्यता उत्पन्न करके मरते वे फिर भी यथाकर्म मनुष्य योनि प्राप्त कर लेते हैं। और जो लोग जहाँ तक हो सके वहाँ तक परिश्रम करके अपनी मनुष्यता प्रकट करके मरते वे अमर हो जाते हैं। इसी

---

१. देखो जगत् में कोई एक भी सुखी नहीं देखा जाता।

को 'अन्ते मति सा गतिः' वा 'अन्त मता सो गता' ऐसा कहते हैं। तीसरे-प्रकार के मनुष्यों में से जो लोग जन्मादारभ्य मरणपर्यन्त यथाविधि यथा शास्त्र परम शुद्ध वैदिक मार्ग पर साबित कदम रहते वे योगी, ज्ञानी, मुक्त सिद्ध वा परमहंस कहाते हैं। सो भाई आर्यगण इस चतुर्थ कोटि में साक्षात् श्रीमान् स्वामी जी महाराज की परम स्तव्य, भव्य और दिव्य मूर्ति है। इनके परम श्लाघ्य गुणों को जानना और मानना कोई सामान्य बात नहीं है। इस देश में सब २४ करोड़ मनुष्य अभी थोड़े दिन हुए तब गिने गए हैं, उनमें से कम से कम २३ करोड़ मनुष्यों को तो प्रथम ही दर्जे में जानो। बाकी रहे १ करोड़ उनमें से थोड़ों को छोड़ और सबको दूसरे दर्जे में मानो। और जिस कदर छोड़ चुके हो उनको तीसरे दर्जे में ले आओ और उन्हीं को श्रीमान् के कुछ गुणों को जानकार समझो।

सिद्धान्त यह है कि महान् प्रारब्धोदय होय तब सकल जगत् पावन श्रीमान् के सदुपदेशों पर किसी की श्रद्धा वा विश्वास होय। फारसी कहावत है कि 'कदरे न्यामत स्तबाद जबाल'। निश्चय जानिए कि ठीक ऐसा ही हाल होगा अर्थात् एक दिन ऐसा आवेगा कि उस समय के लोग श्रीमान् के लिए इतना शोक करेंगे कि जिसका पारावार न होगा। उसी प्रकार प्रस्तुत काल के निकम्मे लोगों की निन्दा करते-करते भी वे लोग न अघावेंगे। इसीलिए बारम्बार कहा जाता है कि भाई आर्यगण, नेंक चेतो, और श्रीमान् के अनन्त, अनुपम, अतुल, अमल, धवल और अनर्ह गुणों में हो सके वहाँ तक अनुराग करो। आप सुधारो और अपनी सन्तति तथा देश को भी विपत्ति से उबारो। बस यही उपदेश सबको श्रीमान् का है। सोई प्रार्थना मेरी और कर्त्तव्य सब आर्यसमाजों का है। आर्यगण, अब स्थानान्तर में श्रीमान् सकल विद्यानिधान स्वामी जी महाराज के विषय में कौन लोग यहाँ से यूरोप तक कैसा क्या विचार करते हैं उसका थोड़ा सा उदाहरण आपको दिखला कर अपने इस ग्रन्थ की परिपूर्ति करता हूँ। ये सब लेख बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान् और जाग्रत् पुरुषों के हैं।

अथ प्रमाणाष्टकम्

हरिश्चन्द्रचन्द्रिका मास मार्गशीर्ष

स्थान नाथद्वारा राज्य उदयपुर

(१) श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का स्वागत देश मेवाड़में हुआ। ये स्वामी जी हम हिन्दुओं के पूरे हितेच्छु हैं। क्योंकि हमारे मुख्य प्रमाण-

भूत वेदों को सर्वार्थ चिन्तामणि मान कर जैसा कि चाहिए वैसे सर्वकाल उसकी मान्यता की वृद्धि के लिए उद्योग करते ही रहते हैं और हिन्दू पशुओं को स्थान-स्थान में यथाशक्ति यथाज्ञान सदुपदेश भी करते फिरते हैं, यह उनका परम प्रशंसनीय कृत्य है। अतः ऐसे सत्पुरुष श्रेष्ठ बांधव का स्वागत करना हम लोगों को अवश्य प्राप्त है क्योंकि उनका पधारना इस मेवाड़ देश में साम्प्रत हुआ है। यद्यपि कतिपय विषयों में अन्य-अन्य कारणों से हमारा और उनका ऐकमत्य नहीं है तथापि बहुत से विषय ऐसे हैं कि जिनमें ऐकमत्य भी तो हैं और सर्व विषय में ऐकमत्य हो जाना साम्प्रत इस जगत् में वंध्या-पुत्र के सदृश असम्भावित ही भासता है क्योंकि पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, भाई-बंधु, इष्ट-मित्र इनमें भी जब सर्वांश में ऐकमत्य कहीं भी हो ऐसा नहीं कह सकते तब अन्यत्र कहाँ उपलब्ध हो सकता है? संक्षेप में इनके और हमारे मत के ऐक्य और अनैक्य का विशेष जैसे कि आज तक समझा हुआ है इसके अनुसार लिखते हैं। इस पर और लोग भी विचार कर लेवें कि ऐक्य विशेष अंश है वा अनैक्य विशेष अंश है। ऐक्य अंश—ईश्वर को मानते हैं। १. वेद को परम प्रामाणिक मानते हैं। २. और स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान करना आवश्यक मानते हैं। ३. पठन-पाठन-क्रम सूत्रादि मूल-मूल ग्रन्थों का युक्त है, ऐसा मानते हैं। ४. यावत् विधि-निषेध की उपपत्ति की युक्ति से सिद्धि समझते हैं। ५. पदार्थ विद्या आदि जो देशान्तरीय लोगों ने विषय कल्पना किये हैं उनकी भी सिद्धता वेदमूलक ही मानते हैं। ६. स्मृत्यादिकों का प्रमाण भी वेदमूलक ही स्वीकार करते हैं। ७. वर्ण जाति विवेक मानते हैं। ८. नियोगविधि को छोड़ विधवा-विवाह को अशास्त्रीय समझते हैं। ९. अनैक्य अंश—वेद में विहित नहीं, इसीलिए मूर्तिपूजा आदि व्यवहार ठीक नहीं ऐसा मानते हैं। १. जीवते हुए ही पितृपितामहादि का श्राद्ध मानते हैं। २. इत्यादि ये जो ऊपर ऐक्य और अनैक्य विषय के सिद्धान्त दिखलाए एतन्मूलक ही अनेक स्थल में ऐक्य मत और थोड़े स्थल में अनैक्य सिद्ध होता है। इसको निष्पक्षपाती लोग विचार कर देखें कि थोड़े विषयों के लिए हम लोगों का स्वामी जी से विरोध है, यह कहाँ से सिद्ध होगा और जो लोग विरोध है ऐसा समझते हैं उन्हें इतना भी ज्ञान कहाँ कि स्वामी जी के और अन्य विद्वानों के शास्त्रार्थ को समझ भी सकें। मूर्ख लोगों को इतना ही उत्साह रहता है कि शास्त्रार्थ हो, अपने भी देखें और शास्त्रार्थ होने के पीछे पूछते भी हैं कि कौन हारा और कौन जीता? क्योंकि संस्कृत का अक्षर भी

तो नहीं जानते। लीजिए, इस पर से इन मूढ़ उत्साहियों को कितना ज्ञान होगा यह स्पष्ट है कि नहीं। अस्तु,

इन मूढ़ों को तो क्या कहें परन्तु जो अपने को विद्वान् लगाते हैं वे भी अपना और खेल देखने वालों का खेल चार विद्वानों को और स्वामी जी को दिखलाते हैं। ये लोग क्या करते हैं कि रात-दिन सिर फोड़-फोड़ कर कहीं वेद में से ढूंढ़-ढांढ़ मूर्ति-पूजा का प्रमाण अपनी समझ के अनुसार निकाल कर स्वामी जी को बतलाते हैं और कहते हैं कि देखो वेद में मूर्ति-पूजा लिखी है। स्वामी जी भी ऐसे लोगों के पूरे गुरु हैं कि उन प्रमाणों को देखते ही देव का अर्थ विद्वान्, मूर्ति का अर्थ स्वरूप, प्रतिमा का अर्थ तोल, पूजा का अर्थ प्रशंसा वा सत्कार इत्यादि बतला कर उनका रात-दिन का सिर फोड़ना एक क्षण में व्यर्थ कर देते हैं, उस पर वे महाशय दाव-पेंच में अज्ञात मल्लों के ऐसी चिकोटी से वा दांत से काटने के सदृश स्वामी जी से उलझ पड़ते हैं। तब स्वामी जी तो स्वामी जी ही हैं। वे भी कब छोड़ें, बना कर ही छोड़ते हैं। सारांश शास्त्रार्थ तो शास्त्रार्थ की ही रीति से हो सकता है, परन्तु इसका मूर्खों को स्वाद ही क्या आवे। मेरी दृष्टि से तो जो इस जगत् में दीखते हैं सो सब वाद-विवाद करा कर विरोध को बढ़ाने वाले ही दीखते हैं। कोई ऐसे नहीं दीखते कि सबों से ऐकमत्य करें और करावें।

यद्यपि मैंने भी स्वामी जी पर कटाक्ष रख कर कवि-वचन-सुधा में बहुत सा विषय लिख मारा है और उससे फल वही समझ रक्खा है कि बड़े से लड़ने में बुद्धि बढ़ती है अथवा जो स्वामी जी को बड़े-बड़े उद्योग करने में इष्ट फल हैं वे भी सब फल मेरे लिए सही। अब प्रार्थना करता हूँ कि स्वामी जी अपनी क्षमाशीलता के अनुरूप मेरे लेख को विचार मुझको बुला कर दर्शन देवें।

पाठक गण, मैं संस्कृत विद्या और संस्कृत-भाषण और समग्र वेदावलोकन और वक्तृता और निस्पृहता आदि में स्वामी जी के समान नहीं हूँ अर्थात् स्वामी जी मुझ से सर्वथा बड़े हैं अतएव मुझे माननीय हैं। "किमतः परं तेषां स्वागतमेव कार्यम्" यही सिद्धान्त है। तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान्। अबोधेन हसतो मा तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः।" वाचक लोगों से भी प्रार्थना है कि इस लेख में जितना कुछ लिखा है जहाँ तक मेरे समझ की दौड़ है ऐसा समझिये, परन्तु इस चित्र के देखने के लिए

उसी सूक्ष्मदर्शक काच की अपेक्षा है जिस हृदय से दूसरे का हृदय जाना जाता है । अलं किं बहुनेति शम् ।

(२) मुकाम बांकीपुर पटना, इलाका सूबे बिहार ।

क्षत्रिय पत्रिका

पाखण्डतिमिरनाशक-चन्द्रिका नाम की पुस्तक के देखने से मालूम हुआ कि आर्यावर्त में दयानन्द सरस्वती स्वामी ऐसे हैं कि जिससे अनेक-देशीय लोग इस देश का गौरव करते हैं ।। इति ।।

(३) मुन्शी दुर्गाप्रसाद, स्थान दानापुर ।

आगे तो हो गये हैं, बहुत से मुनी ऋषी ।
पर अब विदित हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती ।।

हैं बसते चारों वेद जिनकी जबान पर ।
और छहों अङ्ग वेद के हैं, जिनके ध्यान पर ।।

उज्ज्वल है ज्ञान जिनका, शास्त्र और पुरान पर ।
मारे हैं तर्क जिनने, बाइबिल कुरान पर ।।

वे हुए वो शास्त्री भी, किये उनसे शास्त्र बाजी ।
पादरी भी जा भिड़े हैं, मौलवी और काजी ।।

कर डाली खण्ड-खण्ड सब धूर्तों की धूर्तबाजी ।
पाखण्डियों की खोल दी सारी जालसाजी ।।

फाजिल हैं उनसे राजी अच्छे बयान पर ।
आकिल हैं धन्य कहते उनके ज्ञान पर ।।

जाहिल हैं मरते अपने मिथ्या गुमान पर ।
ऐसा दिया है छापा वेदों को जान कर ।।

अब कोई कीर्तिमान न उनके समान है ।
अगले महात्माओं का नामी निशान है ।।

हर्षो विषाद दोनों समान कर रक्खा है ।
बूझो तो यारो दिल में कैसा मजा चक्खा है ।।

पाजी से बदतर हैंगे अब के हरामजादे ।
जो ऐसे एकता आलिम को दुर्वचन सुना दे ।।

आगे कहे या पीछे खुद कह दे या कहा दे ।
है काम यह असल का मुझ को कोई बता दे ।।

धन्य धन्य धन्य स्वामी नामी व गामी सुपथ के।
सुयश के होंगे कर्ता हर्ता हो तुम असत् के॥
सन्मार्ग के हो तुम राही न्यायी हो सत्-असत् के।
दाही हो तुम अघों के थाही सुमत कुमत के॥
जैसे कि व्यास, गौतम, भृगु, बृहस्पति।
तैसे विदित हैं जग में 'दयानन्द सरस्वति'॥

(४) मुन्शी इन्द्रमणि जी, स्थान मुरादाबाद।

गई पोप लोगों की क्या बुद्धि मारी।
कहें अपने शिष्यों को दुष्कर्मचारी॥
कहें अज हुए अपनी पुत्री पै मोहित।
हुई सर्वथा बुद्धि जिनकी तिरोहित॥
कथा विष्णु वृन्दा की जो मूर्ख गावें।
कहो ऐसे पापी नरक क्यों न जावें॥
लिखी शिव की निंदा पुराणों में जैसी।
हमें मुख से कहनी नहीं योग्य वैसी॥
कहें इन्द्र गौतम की जो कुछ कहानी।
न क्यों बुद्धिमानों को हो उससे ग्लानी॥
कहें कृष्ण को चोर और जार कर्मी।
रहे वेद रत जो सदा पूर्ण धर्मी॥
बृहस्पति को दोष मिथ्या लगाया।
यह क्या पोप जी के हृदय में समाया॥
किया ब्याह गन्धर्व ऋषिवर पराशर।
लगावें उन्हें दोष व्यभिचार पामर॥
हुए वेद विपरीत जो कर्म जारी।
सुनो सज्जनो सत असत लो विचारी॥
प्रकट मूर्तिपूजन हुआ धर्म जब से।
हुआ ध्यान जगदीश का नष्ट तब से॥
बढ़े हा बहुत धर्महती कुकर्मी।
डरें ना नरक से टके के हैं जो मर्मी॥

जगत् में कठिन जाल ऐसा बिछाया।
जो फंदे में आया निकलने न पाया॥
हुए भूत प्रेतों के विश्वास कैसे।
डरें रज्जु को जान कर सर्प जैसे॥
लगे स्याने दीवानों को घर बुलाने।
लगे सीस निज हर किसी को झुकाने॥
हुए आर्य हा शेख सद्धो के यात्री।
छुपा धर्म का भानु छाई कुरात्री॥
लगे पूजने पीर गूगा अनारी।
हुई धर्म की नष्ट मर्याद सारी॥
असत् धर्म बहु भांति बृद्धि निहारी।
हुआ सज्जनों के हृदय दुःख भारी।
लखी धर्म की जद सभी भाँति हानी।
किया धर्म रक्षा को उत्साह ज्ञानी॥
सुसद्धर्म भानु यथावत् प्रकाशे।
दयानन्द स्वामी सकल दुख नाशी॥
यथायोग्य की सत असत की परीक्षा।
हुई जिनकी पातालपर्यन्त दीक्षा॥
किया काशी आदि में शास्त्रार्थ भारी।
हुए शान्त शठ पोप दुष्कर्म चारी॥
दया और आनन्द हैं मूल जिनके।
करो धर्मजिज्ञासु पादग्रहण तिनके॥

(५) मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी स्थान लुधियाना मुल्क पंजाब।

किताब कुल्लियात अलखधारी मक़ाला दोयम सफा ७१ में लिखते हैं कि मुझसा दहेरिया स्वामी दयानन्द की ताजीम करता है, अंग्रेज और मुसलमान भी। जाहिलों को क्या कहा जावे जो खान्दान का गुर्रा करते हैं उनकी इज्जत कुत्तों के बराबर है।

(६) मुकाम कानपुर।

महाशय, नमस्ते। आपने सुना होगा कि इधर कुछ दिनों से यहाँ के समाज में गड़बड़ हो गई। कारण यह हुआ कि पं० गिरधरानन्द जी जैसे

कुछ विद्वान् और वक्ता हैं सो अब आपको प्रकाशित है। उनका सम्मान समाज में विशेष देख मंत्री जी से न देखा गया और वे मन मैले काम कर उठे। होते-होते पण्डित जी समाज छोड़ बैठे। बस यह समाज भी फर्रुखाबाद का सा हो गया। अब कुछ दिन से श्री स्वामी जी महाराज की प्रेरणा से यहाँ के आर्य लोग गोरक्षिणी सभा में बड़ा उत्साह कर रहे हैं। १३ हजार के ऊपर रुपया जमा हो चुका परन्तु सब की इच्छा यह है कि जब तक लाख रुपया एकत्र न हो ले इस सभा का काम छेड़ा न जावे। सो इतना रुपया जमा हो जाना श्री जी महाराज की कृपा से कुछ बड़ी बात नहीं। परन्तु मुझे निश्चय है कि जो समाज वाले समचित्त रहें तो वह सिद्धि जल्द हो जावेगी। यदि आपको गोरक्षा के चंदे का कुछ हाल इधर-उधर का जाना गया हो तो कृपा कर लिखना। बहुत दिन हुए तब सुना था कि आगरे में हजार सात तक रुपया स्वामी जी महाराज के सामने दाखिल हो चुका था। अब तो विशेष हो गया होगा। अलीगढ़ आदि नगरों में भी प्रबन्ध हो रहा था। आप के समाज में भी प्रबंध हुआ होगा। इति। आपका आज्ञाकारी गिरधारी ता० ४ अगस्त सन् १८८१ ई०

(७) राजधानी मसूदा जिला अजमेर।

मान्यवर, नमस्ते।

आपने सुना होगा कि राजा साहब बहादुरसिंह जी श्रीमान् स्वामी जी महाराज के चरणों में अति प्रीति रखते हैं। उनकी आज्ञानुसार बड़ा भारी होम कुण्ड बनाया है। होम के लिए बड़े-बड़े रजत पात्र श्री जी ने अपने सामने बनवा दिए हैं। राजा साहब दोनों काल प्रति दिन सेवा में उपस्थित रहते हैं। और भी बहुत से उपकारक उपदेशों पर चलते हैं। जैसे आपस में मेल खूब बढ़ाना, मुद्दत के वैर छोड़ देना, कसरत करना, शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण होना, पाठशाला बिठलाना, वृक्ष लगाना, धरती को उपजाऊ करना, बागात को निर्मल रखना, प्रजा को पुत्रवत् पालना, सत्य विद्या में श्रद्धा करना, पक्षपात से वैर, न्याय से प्रीति करना, अशक्तों और सन्मार्ग पर चलने वालों की यथेच्छ सहायता करना आदि। क्या कहूँ राजा साहब तो गुणागार हैं ही। परन्तु उनके मंत्री दुबे छगनलाल जी भी बहुत ही प्रशंसा योग्य पुरुष हैं। ईश्वर इसी प्रकार की बुद्धि इस देश के सब राजगणों और उनके मंत्री आदि कर्मचारियों को देवे। इति। आपका वही सेवक।

जब श्री जी महाराज यहाँ से चलने को हुए तब राजा साहब ने ५०० रुपये वेदभाष्य की सहायता के अर्थ भेंट किये। और खुद आपको तथा अपने अधिकारियों को वेदभाष्य का ग्राहक बनाया। सैकड़ों जिल्दें पञ्च-महायज्ञ आदि की भी राजधानी वालों ने खरीदीं। ३५ जैनी लोगों ने अपना जैनमत छोड़ वैदिकमत अति आनन्दपूर्वक श्रीमान् के सम्मुख स्वीकार किया। ऐसी खबर बहुत से भारतमित्र आदि समाचार पत्रों के सम्पादकों ने लिख श्रीमान् को बहुविध धन्यवाद दिया है। कहने को यह राज्य बहुत छोटा है, परन्तु काम राजा साहब के देखिए, आर्यगण, कितने सुखप्रद हैं। ईश्वर परमायु करे। इसी प्रकार जब श्रीमान् स्वामी जी महाराज राजधानी मसूदा से चलकर कुछ दिन पीछे स्थान चित्तौड़ राज्य उदयपुर आकर विराजमान हुए तब श्रीमन्महाराजाधिराज मही महेन्द्र यावदार्य कुल दिवाकर श्रीमदेकलिंगावतार विविध विरुदावली वंदित श्री १०८ श्रीमन्महाराणा सज्जनसिंह जी उदयपुर देश मेवाड़ के अधीश ने अपनी कीर्ति के अनुसार श्रीमान् का बड़ा ही आदर और सत्कार किया। प्रतिदिन दो बार श्रीमान् जी को सेवा में उपस्थित होकर उनके स्वास्थ्य को अति विनय से पूछते और उपदेशों को सुनते थे। यद्यपि इन दिनों श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर को बड़े लाट साहब बहादुर की उपस्थिति होने के कारण बहुत कम अवकाश था तथापि किसी दिन उक्त नियम में अन्तर नहीं हुआ। अन्त में पञ्चशत मुद्रा भेंट की और नीचे लिखे पुरुषों सहित वेदभाष्य के आरम्भ से ग्राहकगण शिरोमणि हुए। इति। पुरोहित पद्मनाथ जी, राजराणा, श्री फतेह सिंह जी, बाबू भवानीसिंह जी नेटिव डा०, श्रीयुत अर्जुनसिंह जी आसीन, पं० मोहनलाल जी पण्ड्या, पं० ब्रजनाथ जी गोतम।

(८) मुकाम लन्दन नगर,

आर्यगण, अखबार अथीम में जो कि लंदन नगर में छपता है देखिए, श्रीमान् पूर्ण प्रतापी स्वामी जी महाराज की कितनी प्रशंसा लिखी है। उसका आशय यहाँ सब लोगों पर प्रकाशित होने के लिए लिखा जाता है। विदित हो कि प्रथम उस अखबार में बहुत कुछ तारीफ संस्कृत विद्या की लिखी, फिर लिखा कि इस अखबार के देखने वालों को याद होगा कि एक वर्ष की अवधि हुई होगी तब इस लंदन नगर में श्याम जी कृष्ण वर्मा के पधारने की खबर छापी गई थी। वे संस्कृत में बड़ी भारी योग्यता रखते हैं। उनकी विद्या अथाह दर्जे पर है। इसलिए लंदन के विद्वानों ने उनको

उचित जान पण्डितनाम की पदवी समर्पित की है। इस तरुण पुरुष ने एक ऐसे परम सुप्रसिद्ध और पूर्ण विद्वान् से विद्या प्राप्त की है जो केवल प्राचीन संस्कृत विद्या ही नहीं जानते किन्तु उन्होंने सारे आर्यावर्त के मतवादियों में हलचल डाल दी है, और इस प्रकार मूर्तिपूजादिक विषयों का खण्डन करते हैं कि उनके सम्मुख कोई वहाँ का विद्वान् और पुजारी आदि ठहर नहीं सकता। वे परमेश्वर को अद्वितीय, निर्विकार और निराकार जानते हैं। उनका मत ठीक वेदानुकूल है। इस आर्यावर्त की सुधार और उन्नति करने वाले सत् पुरुष का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है। इनके वक्तृत्व का माधुर्य और लेख का गाम्भीर्य का मैं खुद पूरा-पूरा साक्षी हूँ। क्योंकि जब मैं बम्बई में था उस समय मैंने प्रशंसित स्वामी जी को आर्यसमाज के आम जलसों में धर्म विषयक व्याख्यान देते देखा और सुना है और उनका एक संस्कृत का पत्र (जो उन्होंने अपने विद्यार्थी श्याम जी कृष्ण वर्मा को, कि जो इन दिनों आक्सफोर्ड कालिज के मेम्बर हैं) लिखा था। मैंने देखा है और अब मैं उस पत्र का तर्जुमा अर्थात् अनुवाद उक्त पण्डित जी की आज्ञा लेकर छापता हूँ। वास्तव में यह पत्र श्लोकबद्ध था।

उक्त पत्र का अनुवाद

नमस्ते,

विदित हो कि यद्यपि तुम बावजूद साबित कदमी तरीकह वेद और अपनी विद्या के स्तुतियोग्य हो परन्तु परम पश्चात्ताप की बात है कि तुमने अपने पत्र द्वारा बहुकाल से मुझे आनन्दित नहीं किया। अब मैं आशा करता हूँ कि तुम अपने कुशल और नीचे लिखे विषयों के जवाब से मुझको बहुत शीघ्र प्रमुदित करोगे। इंगलिस्तान के रहने वाले लोग किस प्रकार के हैं और उनकी प्रकृति और ढंग व चलन कैसे हैं वहाँ की पृथिवी और वायु जल कैसा है और सामान खाने पीने आदि आराम का वहाँ किस प्रकार मिलता है। जब से तुम यहाँ से गए हो, तब से तुम्हारी शारीरिक आरोग्यता की क्या दशा है? और इंगलिस्तान में तुम्हारी खास इच्छा पूरी भी होती है वा क्या? वहाँ के लोग किस प्रकार प्रेम रखते हैं और क्या-क्या पुस्तकें तुमसे पढ़ते हैं? तुम्हारी मासिक प्राप्ति और व्यय क्या है और तुम्हारे अधीन ग्रन्थों के पूर्वापर अवलोकन करने व विचारने और दूसरों को पढ़ाने का समय क्या-क्या नियत है? इसका क्या कारण है कि धर्मोपदेश करने में आर्यावर्त के अनुरूप अभी तक तुम्हारी प्रसिद्धि इंगलिस्तान में नहीं फैली है। कदाचित् मेरी दूर स्थिति के कारण मुझको

तुम्हारी प्रसिद्धि के समाचार न मिलते हों अथवा इस काम के करने का तुमको अवकाश न मिलता हो। यदि इसका कारण द्वितीय है तो अब मेरी प्रबल इच्छा है कि जिस वक्त तुम पढ़ने से निश्चिन्त हुआ करो, उस समय वैदिक मत की उन्नति में जिस प्रकार हो वहाँ खूब यत्न करो। पश्चात् यहाँ चले आओ क्योंकि सर्वोत्तम और सर्वोपकारी काम में अपनी प्रसिद्धि करना रुपया पैदा करने से विशेषतर उत्तम है

हमारे मित्र प्रोफेसर मोनियर विलियम्स और मैक्समूलर साहबों की वेद और शास्त्रों के विषय में तथा वहाँ के और-और विद्वानों की मेरे वेदभाष्य पर कैसी क्या सम्मति अर्थात् राय है। क्या यह सत्य है कि थियोसोफिकल सोसाइटी ने कोई वेदमत की शाखा लंदन में स्थापित कर दी है?

कभी तुमने भरत खण्ड की राजराजेश्वरी से भी सम्मान परिचय प्राप्त किया है और कभी पार्लियामेण्ट में भी गए हो? परम प्रीति पूर्वक इन सब प्रश्नों का उत्तर अति शीघ्र भेज दो और वे भी बातें लिखो जिनको तुम अपने निकट लिखने के योग्य समझो। प्रस्तुत मेरा इतना ही लेख बहुत है क्योंकि बुद्धिमानों को संकेत मात्र अपेक्षित होता है; न विस्तार। इति तिथि ज्येष्ठ शुक्ल ७ मंगलवार सं० १९३७ वि०।

इसके पीछे अखबार वाले ने अपनी यह राय लिखी है कि यह ऊपर की चिट्ठी निहायत साफ पाक संस्कृत में लिखी हुई थी। यों तो बहुत से आर्यावर्त के विद्वानों से मुझे काम पड़ता है और काश्मीर व त्रावनकोर वगैरा के बड़े-बड़े नामी पण्डितों से मेरी लिखा पढ़ी जारी है परन्तु यह चिट्ठी सर्वोपरि एक नमूना है और इसलिए छापी गई है कि यूरोपीय लोगों को आर्यों की योग्यता और कृति तथा राजभक्ति प्रकाशित हो जाय।

इति प्रमाणाष्टकम्

कहिए आर्यगण, कैसा प्रज्वलित, निर्मल और निर्विवाद यह प्रमाणाष्टक है। जिसको परमात्मा ने थोड़ी सी बुद्धि अर्पण की होगी, वे इस ग्रन्थ को देख सदैव को निर्विकार हो जावेंगे। रहे बुद्धिहीन सो उनके लिए तो पुराने मनुष्य प्रथम ही निर्धार कर गए हैं। जैसे "मन्ये दुर्जनचित्तवश्यकरणे धाताऽपि भग्नोद्यमः।" अर्थात्, मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलें विरंचि सम।' जब ऐसों के सुधार के लिए ब्रह्मा सरीखे हार मान बैठे तो आगे और कौन उनसे अधिक सामर्थ्य लेकर इनके लिए आवेगा। बुद्धिमानों को उचित है कि ऐसों को उनकी प्रारब्ध के हवाले करके आपको जो कर्त्तव्य है वह करें और कदापि अपना अमूल्य समय वृथा न गमावें। जहाँ तक हो

सके वहाँ तक विद्योपार्जन करके अपना और अपने देश का भला करें। देखो यही काम श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने किया है। स्वामी जी क्या जितने ऋषि मुनि और राम कृष्णादिक प्रशंसनीय सत्पुरुष हुए हैं वे सब इसी एक मार्ग के ग्रहण से हुए हैं और जो होंगे वे भी इसी मार्ग से होंगे, इसी को शुद्ध सनातन वैदिक मार्ग कहते हैं।

कभी कोई भूल कर भी आज से पीछे ऐसे वैसे लोगों की बातों का विश्वास न करें और याद रक्खें कि इन सब लोगों ने जितना धर्म के नाम का जाल फैलाया है वह सब तुम्हारे ही फांसने को फैलाया है। इनके उस जाल को काटने और तुम्हें उससे मुक्त करने को श्रीमान् उद्यत हुए हैं। यह देख ये लोग अति दुखित हैं। तभी ये खिसियाने होकर शुद्ध मार्गावलम्बियों को कलंकित करते हैं। जो आजमाना चाहो तो इनको इसी एक बात से आजमा लो। जैसे ऊपर निर्णय हो चुका है कि इनका और स्वामी जी के कथन का अन्तर केवल यह है कि स्वामी जी जिस मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध और ये लोग उसको वेदविहित बताते हैं। सो यह अन्तर वास्तव में ऐसा नहीं है कि जिस पर इतना विरोध रहे, परन्तु मुसलमानों का वैदिक मत से धरती आकाश का सा अन्तर है। सो देखा जाता है कि उनकी मियाँ मदार आदि अनेक नाम की कबरें अच्छे-अच्छे वाजपेयी और वड़े-बड़े पण्डित लोग तक जा जाकर पूजते हैं। जो पूछोगे कि जखई और मियाँ मदार की भी पूजा तुम्हारे वेद और पुराणों में लिखी है तो कहेंगे कि कहीं नहीं लिखी। फिर क्या कारण है कि जिनका तुम्हारा कुछ भी मेल नहीं है उनकी कब्रें बड़ी खुशी से पूजो और किञ्चित् अन्तर वालों को इतना बुरा कहो। बस साबित हो जायगा कि सरासर खिसियानपन और अन्याय की बातें हैं। कुछ हो कर्ता सोई भोक्ता होता है। परन्तु आर्य धर्म भी कठिन है उनका वचन है 'तथापि खलु खिद्यते चेतः' अर्थात् अपनी क्या हानि जो पराये अंगूर कोई गधा चर जाय। पर क्या कीजिए, गैर मुनासिब देख रहा ही नहीं जाता। यदि उनसे कुछ कहने को जाओ तो उपकार के पलटे अपकार खड़ा होता है। सीधी गाली सुनना पड़ती हैं। यहाँ यह विचार कर लिया जाता है, कि इनके पास यही धन है सो देते हैं। दूसरे आर्यों की शिक्षा स्मरण हो आती है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् कोई भला कहो वा बुरा, हानि हो वा लाभ, मरें वा जियें, हम अपनी लकीर के बाहर पैर नहीं धर सकते। कहो जिनका ऐसा सर्वत्र सुयश और ऐसी उत्तमोत्तम शिक्षा और अखण्ड प्रताप उनकी प्रशंसा यदि कोई मुझसा तुच्छ करना चाहे तो कहाँ लौ करे। इस ग्रन्थकार ने बहुधा छोटे मुँह बड़ा ग्रास की कहावत कर दिखाई है, तथापि उसको विद्वज्जनों की कृपा-दृष्टि रहने की ही आशा है क्योंकि वे लोग अच्छे प्रकार जानते हैं कि सच्ची का तात्कालिक स्वाद कड़वा ही होता है। जिस परमात्मा की कृपा से यह ग्रन्थ यहाँ तक निर्विघ्न आ पहुँचा उसकी सेवा में अनन्त धन्यवाद करके आशा करता हूँ कि वह इस भरतखण्ड पर अपनी पूर्ण दृष्टि से निहारे। धन्य हैं वे लोग जिनकी अभिरुचि और सहायता से यह ग्रन्थ आविर्भूत हुआ। आगे को वे लोग भी धन्यवाद के योग्य होंगे जो इसका लालन-पालन करेंगे। विज्ञेषुकिम्वहु नेति शम्।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदयानन्दसरस्वतीदिग्विजयार्कीय-
द्वितीयाङ्के उपदेशाख्यः षष्ठो मयूखः।

समाप्तोऽयं द्वितीयाङ्कः मङ्गलानि भवन्तु

वसुरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे तपस्यस्य सिते दले।
दशम्यां चन्द्रवारे च ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः॥

भवविभवभवाया बोधितोद्बोधनाया,
गणितगुणिगणेयस्वाशयस्वाशयोऽयम्।
कलिपथपरिपन्थी मित्रतामात्रशंसी,
सदयहृदयपद्यो धारणीयस्सदैव॥

ओ३म् तत्सत्

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो सर्वेशो सर्वकृच्छुभः ।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वसिद्धिदः ॥ १ ॥

अथ श्रीमद्दयानन्द-दिग्विजयार्कीयः
तृतीयोऽङ्कः

भूमिका

प्रकाशित रहे कि इस ग्रन्थकार को जगत्पूज्यपादपीठ श्रीमान् सकल विद्यानिधान श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का इस नगर फर्रुखाबाद में बहुत काल तक समागम रहा। उस अवसर में इसने उनके समीप कुछ अध्ययन भी किया है। उस समय उनका परम दयालु स्वभाव और लोकोत्तर चरित्र तथैव आत्मीय जनों का उनके साथ विचित्र और विपरीत वर्ताव तथा शरीरवान् की जगत् में अस्थिरता देख भाल—जल्द लोकोपकार होने की दृष्टि से मेरे विचार में यह आया कि उनके परम पावन कृत्यों का प्रदर्शक और स्मारक कोई ऐसा सद्ग्रन्थ बना छोडूं, जिससे श्रीमान् के अस्तित्व काल में ही लोक संस्था सुधरने लग जाय और उनके पीछे अर्थात् भविष्यत् काल में भी उक्त ग्रन्थ लाभप्रद रहे और उसमें स्थूल मान से उनका सब चरित्र आ जाय। परन्तु इस प्रकार का ग्रन्थ उस पुरुष की विद्यमान दशा में पूर्ण होना असम्भव सा होता है जिसकी कि अशेष सत्कीर्ति उसमें लिखी हो। अतः उसको कई खण्डों में बनाना आवश्यक हुआ। भगवत्कृपा से इसके दो खण्ड तो प्रशंस्य महानुभाव के अस्तित्व काल अर्थात् संवत् १९३८ विक्रमी में ही मुद्रित होकर प्रचरित हो गये थे। उनसे बहुत कुछ उद्देश्य की सिद्धि भी हुई। अब रह गया तदनन्तर का

वृत्तान्त, वह इस तृतीय अङ्क में लिखता हूँ। आशा है कि जिस समय जो सत्पुरुष इसके आद्योपान्त किसी एक वा तीनों खण्डों को हित चित्त से देखेंगे वा सुनेंगे उनको यह ग्रन्थ बहुत फलप्रद होगा। विज्ञेषु किं बहुनेति शम्।

संवत् १९४२ वि०, स्थान नगर फर्रुखाबाद।

अक्षिवेदांकभूवर्षे हयमाससितेदले।
दशम्यां रविवारे च ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ १ ॥
१९-१०-८५ ई०

सूचना

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै सद्गुरवे नमः॥

विदित रहे कि इस दिग्विजयार्क तृतीय खण्ड में सब द्वादश मयूख निम्नलिखितानुसार यथा नाम तथा गुण हैं। उनमें से सात विद्यमान और पाँच स्वामी जी महाराज की अविद्यमान दशा-प्रदर्शक जाने जावें।

संख्याङ्क	मयूखों के नाम
१.	पूर्वसिद्ध विजयार्कीक समालोचक प्रशमन
२.	गोरक्षादिविचारविवर्णन
३.	थियोसोफोस्टि आदि ससर्गविसर्जन
४.	कृतघ्नोत्पादित मिथ्याप्रवाद संम्मार्जन
५.	श्रीमदुदयपुराधीशसमागम सम्भूतानन्दवारिदाभिवर्षण।
६.	श्रीमच्छाहपुरजोधपुराधीश्वर-सम्मिलन।
७.	अनिष्टोत्थान।
८.	महाप्रस्थान वा परम पदावगाहन।
९.	भयंकर विलापघोराक्रन्दन।
१०.	परमोपकारिणी समाधिवेशन रूप भक्त वृन्दाश्वासन।
११.	श्रीमदुद्धारित सिद्धान्तानुदर्शन।
१२.	फलपाकानुवर्णन पूर्वक आतम निवेदन इति।

अथ श्रीमद्दयानन्दीयदिग्विजयार्काऽवशिष्टवृत्तान्तारम्भः
तृतीयांकीय (परमेश्वर प्रार्थना)

ओ३म् नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नमो आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान्यदि शक्नवामाज्यायतः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ १ ॥

ओ३म् गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये ।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः ॥ २ ॥
उर्द्ध्वं जिगातु भेषजम् ।
शन्नोऽस्तु द्विपदे शंचतुष्पदे ॥ ३ ॥
ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

हे अनन्तरूप भगवन् ! आपका यह वेदाभिमानी परमाल्पज्ञ दासानुदास आपकी परमपवित्र सेवा में बहु विनय पुरस्सर अनेकानेक प्रणाम करके श्रीमान् वेदोद्धारक स्वामी जी महाराज का अवशिष्ट वृत्तान्त लिख कर अपने पूर्वारम्भित दिग्विजयार्क ग्रन्थ की अब परिसमाप्ति करना चाहता है। आशा है कि जिस प्रकार जिस रीति से आपकी पूर्ण कृपा से उक्त ग्रन्थ के प्रथम व द्वितीय खण्डों की परिसमाप्ति आनन्दपूर्वक हुई, उसी प्रकार इस अन्तिम अर्थात् तृतीय खण्ड की भी होगी। और आप यथापूर्व सर्वत्र सब प्रकार की शान्ति रख कर सदैव के लिए इस ग्रन्थ के प्रचार द्वारा आर्यावर्त को यथार्थ कृत्य करने में प्रोत्साहित करेंगे। इस से व्यतिरिक्त अन्य कोई याचना और कामना मुझ दीन को इस विषय में नहीं है।

सुहृद्वर ! श्रीमान् जगन्मान्य स्वामी जी महाराज का शेष वृत्तान्त अशेष करूँ, उससे पूर्व सर्व महाशयों को इतना लिख जताना अत्यावश्यक है कि इस समय तक जो इस ग्रन्थ के दो खण्ड बन कर प्रचरित हो चुके हैं, उनसे उद्देश्य सिद्धि कैसी क्या हुई और उन पर सामयिकों की प्रीति और सम्मति किस प्रकार पाई व देखी गई ? तो अब ये दो मुख्य प्रश्न अवतीर्ण हुए और इन्हीं का उत्तर लिखना है, सो वह नीचे लिखा जाता है।

(प्रथम) उद्देश्य-सिद्धि में तो कोई सन्देह ही नहीं क्योंकि बहुत से प्रामाणिक प्रमाणों से ज्ञात हो चुका है कि उक्त दोनों खण्डों के प्रचार से बहुत से स्वदेशीय नये-नये मनुष्यों के चित्त में वैदिक धर्म की श्रद्धा उत्पन्न हो गई और बहुत से बहके-बहकाये रास्ते पर आ गए और कितने ही खूब जान गए कि ठीक बात यह है न कि वह जिसको कि कई पीढ़ियों से समझे हुए थे। वैदिक यंत्रालय के पुस्तकों की बिक्री बढ़ी और प्रयाग के दो मुद्दती ईसाई स्व स्वीकृत धर्म की घृणा मान प्रायश्चित्त ले यथापूर्व अपनी जाति में जा मिले और कितने ही मनुष्य ईसाई होते होते बच गए। इत्यादि।

(द्वितीय) प्रीति की रीति तो ऊपर के ही लेख से स्पष्ट हो चुकी। परन्तु उसमें केवल इतना विदित करना शेष रह गया है कि वे दोनों अङ्क बिक गये और दुबारा मुद्रित हो रहे हैं।

अब रही समालोचना, सो आर्यसमाजियों ने अच्छा कहा, इसका लिखना ही क्या? उनसे विशेष संख्या के मत्सरियों ने बुरा भी कहा होगा। तो बस वह लेखा पूरा हुआ। रही बड़ी बात आर्याधिपति श्री जी महाराज की सो वे तो अप्रसन्न ही रहे जानो। वहाँ तो क्षमा मात्र मुनाफे में रही। कारण इसका यह कि वे नहीं चाहते थे कि कोई हमारा प्रशंसक बने और खास कर उनको स्व-इतिहास में मिथ्या लेख से बचना अति अभीष्ट था सो आगे चल कर श्री जी तथा बाबा जी का लेख देख स्पष्ट हो जावेगा। अब रहा वृत्तान्त सम्पादक समुदाय का और सच्ची सनद भी मानो जगत् में इन्हीं महाशयों की होती है। सो वह भी उन्होंने यथामति दे दी जानो। यहाँ उसका विस्तार वा नकल कर दिखाना केवल वेश्या ठाठ है। हाँ, विद्वानों को देखने-दिखाने को योग्य सरस समालोचना यदि है तो हरिश्चन्द्र मोहन चन्द्रिका के सम्पादक वर पण्डित दामोदर जी शास्त्री और बूंदी राजधानी के बाबा अमृतराम जी महाराज की है। देखिए यह यहीं आपके सम्मुख उपस्थित है।

"दयानन्ददिग्विजयार्क प्रथम और द्वितीय भाग—इसके दोनों भाग आगरे में पं० गोपालराव हरि ने छपवाये हैं। बोली शुद्ध हिन्दी है। पुस्तक के नामानुसार यह सचमुच दिग्विजय का अर्क ही उतारा है। ग्रन्थकर्त्ता की जैसी भक्ति स्वामी दयानन्द पर है वैसी कदाचित् वेद प्रतिपाद्य वेदात्मा भगवान् पर नहीं होगी, ऐसा अनुमान होता है। कारण, ग्रन्थ भी स्वामी जी की ओर से मूर्तिपूजा की प्रणाली निन्द्य और निर्मूल जानता है और इसी विषय में स्वामी जी ने बड़े-बड़े शास्त्रार्थ किए और किसी ने उनको इस विषय में नहीं हराया। इस बात से यह बहुत प्रसन्न हुआ है परन्तु हमने पहिले ही लिखा था कि संस्कृत-ज्ञान के बिना जो ऐसी-ऐसी लोक-व्यवहार वर्ज्य बातों को, चाहे वे कैसे ही विद्वान् की क्यों न हों, मानते हैं वे अन्धे के समान ही दूसरे के सहारे से चलने वाले हैं। मूर्तिपूजन के विषय में हमारे चन्द्रिका ही में कई लेख छपे हुए होंगे, परन्तु उन पर ध्यान देवे कौन? सबों ने यही समझ लिया है कि जो दयानन्द स्वामी कहें कि वेद में मूर्तिपूजा नहीं तो वही बात प्रमाण मानकर मूर्तिपूजा छोड़ देना वा मूर्तियों को तोड़ डालना। परन्तु विचार से देखा जाय तो यह उनकी बड़ी

भूल और अज्ञान दशा है। कारण आज जो प्रणाली दो हजार अधिक वर्ष से प्रचलित होती आई है क्या उस समय में कोई दयानन्द स्वामी के समान विद्वान् नहीं थे वा उस समय वेदार्थ जानने वाले वा वेद ही न मिलते थे।

माना कि वेद में मूर्तिपूजा का लेख नहीं तो क्या बद्रीनाथ, द्वारका-नाथ, जगन्नाथ आदि देवताओं को फोड़-तोड़ दिया जाय ? अथवा जिनके आधार से ऐसी हम लोगों की भावना हो गई है कि हम इस विषय में केवल स्वान्तरंग के सिवाय जब दूसरा प्रमाण ही नहीं देखते, तब उन आधार ग्रन्थों को स्वस्थान से बटोर कर डुबा दिया जाय। प्रथमतः यही विचारना चाहिए कि प्रमाण वस्तु कौन होती है ? जिस पर जिसको अपना चित्त प्रमाण मानेगा वही प्रमाण की कही जाएगी। तो दयानन्द ही क्या अनेक हजारों अधकच्चे अनुयायी आज बारह वर्ष से इसके विषय में देशदिशावर जाकर प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु आज तक कोई संस्कृतज्ञ उनके अनुयायी हुए हैं ? नहीं, इसी से सिद्ध होता है कि जो अंग्रेजी वा अन्य फारसी आदि विद्या पढ़कर विद्वान् कहलाते हैं उन्होंने ही क्रिस्तानों के समान गुप्त भाव से अपने प्रचलित धर्म का परित्याग किया और उसी को निन्द्य गिना तो कोई प्रशंसा की बात नहीं। अलं खेदेन, भूपाला किं न सन्ति महीतले।"

संवत् १९३९ ज्येष्ठ कृष्णा के हरिश्चन्द्रचन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका को देखने से विदित हुआ कि पं० गोपाल राव हरि जी कृत दयानन्द दिग्विज-यार्क पर दर्शित पत्र के सम्पादक महाशय दामोदर शास्त्री जी ने अपनी बुद्धि और चातुर्य्यानुसार उक्त ग्रन्थकर्ता और स्वामी जी के कथन पर आर्य लोगों को भी कुछ असमंजसकारक लेख धर मारे हैं। इस कारण मुझको भी उत्तर लिख देना आवश्यक है। पाठक, उक्त महाशय ने प्रतिमा पूजन का मण्डन और आर्यवर निर्मित पुस्तक का खण्डन तो किया परन्तु सत्य की जय सदैव से होती रही हैं। अब सभ्य महाशयो सत्यासत्य का विचार करिए। हमारे शास्त्री जी महाराज अर्थात् उक्त पत्र के सम्पादक श्री दामोदर जी (पं० गोपाल राव जी के प्रति) लिखते हैं कि ग्रन्थकर्ता की जैसी भक्ति स्वामी दयानन्द पर है वैसी कदाचित् वेद प्रतिपाद्य वेदात्मा भगवान् पर न होगी, ऐसा अनुमान होता है। कारण, ग्रन्थकर्ता भी स्वामी जी की ओर से मूर्तिपूजा की प्रणाली निंद्य और निर्मूल जानता है। और इसी विषय में स्वामीजी ने बड़े-बड़े शास्त्रार्थ किए और किसी ने उनको इस विषय में नहीं हराया। इस बात से यह बहुत प्रसन्न हुआ है। परन्तु हमने पहिले ही लिखा

था कि संस्कृत-ज्ञान के बिना जो ऐसी-ऐसी लोक-व्यवहार वर्ज्य बातों को चाहे वे कैसे ही विद्वान् की क्यों न हों, मानते हैं वे अन्धे के समान ही दूसरे के सहारे चलने वाले हैं।

उत्तर—शास्त्री जी का यह लेख कि "ग्रन्थकर्ता की जैसी भक्ति स्वामी दयानन्द पर है वैसी कदाचित् वेद-प्रतिपाद्य वेदात्मा भगवान् पर न होगी" संताप से संयुक्त दृष्टि पड़ती है। जो हो, भला विचारणीय है कि यदि सद्गुरु पर किसी की दृढ़ उत्तम भक्ति हुई तो क्या वह आक्षेप पात्र हो सकता है? कदापि नहीं। शोक कि पत्र-सम्पादक ने अपने नामानुसार भी इसका विचार न किया कि "यो गुरुः स शिवः प्रोक्तः शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता" 'आचार्य देवो भव' और मनु भगवान् ने जैसी गुरु की भक्ति करनी लिखी है वह भी सब को विदित है, इत्यादि प्रमाणों से ज्ञात होता है कि गुरु-भक्ति ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पदार्थों की प्राप्ति का निदान (आदि कारण) है और शास्त्री जी का यह अनुमान करना कि "जैसी भक्ति ग्रन्थ-कर्त्ता की स्वामी दयानन्द पर है इत्यादि" अत्यन्त अशुद्ध है। क्योंकि अनुमान ज्ञान, ज्ञान प्राप्ति में, मुख्य कारण होता है और प्राप्ति उसे कहते हैं कि साध्य के साथ हेतु का एकाधिकार राय होना, अर्थात् साध्य और साधन दोनों का एक स्थान पर अवश्य होना और हेतु अपने साध्य को छोड़कर कभी पृथक् नहीं रहता। जैसे अग्नि से धूम्र अलग नहीं रहता क्योंकि अग्नि साध्य है और धुआँ साधन। इसी प्रकार गुरु-भक्ति भी साधन कोटि में गिनी जाती है और ईश्वर-भक्ति साध्य कोटि में। इसीलिए उक्त प्रकार से जहाँ गुरु-भक्ति है वहाँ ईश्वर-भक्ति भी अवश्यमेव होगी। जैसे पाककर्ता की मुख्य उद्देश्यता पाक पर ही रहती है और तदपेक्षया काष्ठादि साधनों पर गौण। क्योंकि साध्य के उद्देश्य ही को लेकर साधन में प्रवृत्ति होती है। इससे अब सिद्ध हो गया कि शास्त्री जी का अनुमान ठीक नहीं।

(शा०) ग्रन्थकर्ता भी मूर्तिपूजा को निंद्य और निर्मूल जानता है। इस विषय के शास्त्रार्थ में स्वामी जी कहीं नहीं हारे हैं, इससे यह बहुत प्रसन्न हुआ है।

(उ०) क्या यह भी ग्रन्थकर्ता में कोई बुराई की बात है। यह तो सत्पुरुषों का काम ही है कि सत्य को देख प्रसन्न और असत्य को देख अप्रसन्न वा खेद करना। ग्रन्थकर्ता अर्थात् पं० गोपाल राव हरि जी ने जब अपनी विचार की तुला से सत्यासत्य को ठीक-ठीक तोला तो सत्य से

प्रसन्न हुए और प्रतिमा-पूजन की प्रणाली को अशास्त्रीय जान कर निंद्य ठहराया, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं और न कोई दोष की बात है। यद्यपि आप भी किसी कारण से कथित बाह्य व्यवहार में नहीं मानते हैं, तथापि अन्तःकरण तो आपका भी साक्षी भरता है। क्योंकि आपके लेख से ही प्रकट होता है "इस विषय में स्वामी जी ने बड़े-बड़े शास्त्रार्थ किये और किसी ने उनको नहीं हराया।" इससे सिद्ध होता है कि जब स्वामी जी की बात सत्य थी तभी तो उनका पराजय नहीं हुआ, अन्यथा यह कब सम्भव था कि वे न हारते। अजी महाराज सदा जय सत्य ही की होती है, अन्य की नहीं।

(शा०) संस्कृत-ज्ञान के बिना जो ऐसे-ऐसे लोक व्यवहार वर्ज्य बातों को, चाहे वे कैसे ही विद्वान् की क्यों न हों, मानते हैं वे अन्धे के समान हो दूसरे के सहारे से चलने वाले हैं।

(उ०) यह आपका कथन करना आपको शोभा नहीं देता। देखिये, संस्कृत-ज्ञान के बिना यदि उस बात कहने वाले को विद्वान् कोटि में गणना है तो उसकी बात क्यों न मानी जाय? विद्वान् की बात अवश्य माननी पड़ती है। यदि कहो कि संस्कृत-ज्ञान के बिना विद्वान् ही नहीं हो सकता, तो यह कहना आपका महा अशुद्ध है कि संस्कृत-ज्ञान के बिना कैसे ही विद्वान् क्यों न हों, क्योंकि वह मूर्ख हुआ और संस्कृत-ज्ञान रहितों को जो आपने अन्धा बताया, ऐसा कहना आपको योग्य न था क्योंकि मैं देखता हूँ, आजकल जो पण्डिताभास, सदसद्विचारशालिनी बुद्धिरहित, हठाग्रह, स्वार्थता, मिथ्याभिकथन आदि दोषों से यह ग्रह ग्रसित के समान है उनसे कई गुणा श्रेष्ठ मान्य अन्य विद्यानभिज्ञ लोक हैं। परन्तु उन पूर्ण विद्वान् संस्कृतज्ञों की बात हम भी नहीं कहते। सारांश—यह नियम नहीं है कि केवल संस्कृत के पठन-मात्र से ही श्रेष्ठ हो सकते हैं अन्यथा नहीं। देखो, न्यायदर्शन के भाष्य में वात्स्यायन मुनि जी ने क्या लिखा है—"ऋष्यार्यम्लेछानां समानं लक्षणम्। सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्तनेति। न्याय-दर्शने सूत्र ७ अ० १ आ० १।

अर्थात् ऋषि, आर्य म्लेच्छों का समान लक्षण है। आप्त होने में कारण आप्त ही की बात मानी जाती है अनाप्त की नहीं। किसी देश, किसी जाति का कोई पुरुष ही आप्त होना चाहिए। अस्तु। क्या आपके जानने में गोपाल राव हरि जी संस्कृत विद्या के अनभिज्ञ हैं? शास्त्री जी

महाराज, उक्त पण्डित तो संस्कृत-विद्या में बहुत ही अच्छा पाण्डित्य रखते हैं। उनकी इच्छा तो दिग्विजय रचना संस्कृत में करने की थी। इस दृष्टि से भाषा में रचन किया गया कि प्रायः संस्कृतज्ञ कम हैं। जो हैं भी सो उक्त दोषों से भरे हुए हैं और दूसरे संस्कृतानभिज्ञों को भी लाभ पहुँचे, वे इस लाभ से खाली न रह जायें और इसी दृष्टि से मैंने भी यह उत्तर भाषा में अर्थात् प्रतिदिन की बोल-चाल में लिखा है। मेरी अनुमति में तो संस्कृत-विद्या का यथार्थ अभिप्राय आर्य वेद मतावलम्बी ही जान सकते हैं। अनार्य जो अल्पकाल से प्रचलित कपोल-कल्पित बातों अर्थात् जड़ मूर्तिपूजादि वेद बाह्य पाखण्ड धर्म को मानते हैं वे कभी शास्त्र का ठीक-ठीक रहस्य नहीं समझ सकते। अन्यथा मिथ्या बातों में क्यों चलते? इस स्थान पर मुझे मुरारि का श्लोक स्मरण होता है—

श्लोक—देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतम्।
जानीते मतिमानऽसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः॥
अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता।
आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः॥ १॥

अर्थात् शास्त्र को तो बहुत से लोग पढ़ते हैं, परन्तु शास्त्र के सार को तो यह बुद्धिमान् मुरारि कवि ही जानता है, जिसने कि गुरुकुल में बहुत बड़ा परिश्रम उठाया है। दृष्टान्त इसमें यह है कि वानर भटों ने समुद्र लंघा तो है, पर ऊपर ही ऊपर, समुद्र की गहराई को नहीं जानते, किन्तु उसकी गहराई को तो मंथाचल (१) जानता है जो कि पाताल तक अपने पीवर तनु से निमग्न हुआ है।

ऐसे ही आजकल के पण्डित लोग भी स्वार्थता के कारण ऊपरी दृष्टि से तो शास्त्र के रहस्य को न जान कर अपने आप दुर्दशा में पड़ रहे हैं और इस देश को भी दुर्गति में डाल रक्खा है। हाय! शोक ऐसी समझ पर।

(शा०) मूर्तिपूजन के विषय में हमारे चन्द्रिका में ही कई लेख छपे हुए होंगे परन्तु उन पर ध्यान देवे कौन? सबों ने यही समझ लिया है कि जो दयानन्द स्वामी कहें कि वेद में मूर्तिपूजन नहीं तो वही बात प्रमाण मान कर मूर्तिपूजा छोड़ देना वा मूर्तियों को तोड़ डालना, परन्तु विचार से देखा जाय तो यह उनकी बड़ी भूल और अज्ञान दशा है। कारण आज जो प्रणाली दो हजार अधिक वर्ष से प्रचलित होती आई है क्या उस

समय में कोई दयानन्द स्वामी के समान नहीं थे, वा उस समय वेदार्थ जानने वाले वा वेद ही नहीं मिलते थे ?

(उत्तर) अहा हा हा ! क्या आनन्द की बात है। "सत्यमेवाभिजयति नानृतमिति।" जय सत्य की ही होती है झूठ की कभी नहीं। देखिये, न्याय करिये, सत्यवादी आर्य पुरुषों, शास्त्री जी का कैसा परस्पर अर्थात् पूर्वापर विरुद्ध लेख है कि "हमारे चन्द्रिका में ही कई लेख मूर्तिपूजा विषयक छपे होंगे, उन पर ध्यान देवे कौन ?" सभ्य जनों, प्रथम तो शास्त्री जी को ही संदेह है कि 'छपे होंगे' शायद हों वा न भी हों। फिर कहते हैं कि उन पर ध्यान देवे कौन ? अजी शास्त्री जी महाराज, वे कैसे आपके लेख हैं तनिक हमें तो दिखलाइए। अनुभव होता है कि आपके वे लेख वेदोक्त तो होंगे ही नहीं क्योंकि आप ही लिख चुके हो कि 'मूर्तिपूजा अनुमान दो हजार वर्ष के लगभग से चली है' फिर यदि होंगे भी तो वही गड़बड़ स्मृति प्रतिपाद्य लेख होंगे फिर ऐसा कौन मूर्ख है कि जो उन लेखों पर ध्यान देकर अपना अमूल्य समय वृथा खोवे। दूसरा यह कहना भी आपका यथार्थ नहीं हो सकता कि "उस समय में क्या दयानन्द स्वामी के समान कोई विद्वान् नहीं थे" इत्यादि। शास्त्री जी सभी कुछ था वा होगा पर आप्तता न होकर स्वार्थता होगी जिससे यह सत्यानाशी मार्ग प्रचलित हुआ। क्या वर्तमान समय में कोई विद्वान् नहीं रहा। इस विषय में वेदोक्त प्रमाण क्यों नहीं देते ?

संवत् १९२६ के कार्तिक में काशी के मध्य इस विषय में बहुत बार विज्ञापन देने पर भी काशीस्थ और अन्य देशी भी सभी विद्वान् मुख छुपाए लज्जार्णव में डूबे हुए मष्ठ (?) मार बैठे रहे। किसी का भी हियाव न पड़ा कि स्वामी जी से एक घड़ी भी सम्मुख बैठ के शास्त्रार्थ करें। सत्य है, प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु के आदित्य के सम्मुख दीपक की क्या सामर्थ्य जो प्रकाश हो सके। जुगनू (एक प्रकार के जीव) भाद्र के गाढ़ान्धकारवृत रात्रि ही में चमकते हैं, दिन में नहीं। बस शास्त्री जी महाराज, यही दशा जो आजकल है उस समय में भी होगी। अब मैं आपसे यह प्रश्न करता हूँ कि जब आप मूर्तिपूजा को केवल दो हजार वर्ष से ही प्रचलित होना सिद्ध कर चुके हो (हम तो कुछ अधिक भी मानते थे) उससे पूर्व क्या विद्वान् न थे वा वेद न मिलते थे। कदाचित् आपके कहे हुए कुछ समय में वेदार्थभिज्ञ विद्वान् भी न हों तो कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि महाभारत के घोर युद्ध में धर्मस्थापक महाराजा और महाविद्वानों की बहुत कुछ हानि हो चुकी थी।

तब आपत्काल था। परन्तु उससे पूर्व तो बड़े-बड़े विद्वान् महर्षि वेद व्यासादि सत् पुरुष थे। इसमें किसी को संदेह ही नहीं। फिर यदि मूर्तिपूजन वेदोक्त होता, तो दो हजार वर्ष से पूर्व प्रचलित क्यों न होता। अतएव आपके ही कथनानुसार जाना जाता है कि यह निस्सन्देह पाखण्ड व्यवहार है। और यदि दो हजार वर्ष की अवधि ही मत मतान्तर मानने में प्रमाण है तो अवश्य है कि पश्चात् दो हजार वर्ष के रैदास चमार और धन्ना कसाई आदि का चलाया हुआ मत मानना भी उचित होगा और आपने जो आर्यों की भूल और अज्ञान दशा बताई, सो अब सत्य-सत्य कहिए कि यथार्थ में आर्य लोग भूले हुए हैं वा आप लोग। सिद्ध हुआ कि गाढ़ान्धकार अज्ञान दशा में आप ही पड़े हैं, न कोई आर्य।

(शा०) माना कि वेद में मूर्तिपूजा का लेख नहीं तो क्या बद्रीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथादि देवताओं को फोड़-तोड़ दिया जाय अथवा जिनके आधार से ऐसी हम लोगों की भावना होकर हम इस विषय में केवल स्वान्तरंग के सिवाय जब दूसरा प्रमाण ही नहीं देखते तो क्या उन आधार ग्रन्थों को स्वस्थान से बटोर कर डुबा दिया जाय। प्रथमतः यही विचारना चाहिए कि प्रमाण वस्तु कौन होती है? जिस पर जिसको अपना चित्त प्रमाण मानेगा वही प्रामाणिक कही जावेगी। तो दयानन्द ही क्या उनके हजारों अधकच्चे अनुयायी आज बारह बरस से इस विषय में मार देश दिशावरों में जाकर प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु आज तक कोई संस्कृतज्ञ उनके अनुयायी हुए हैं? नहीं। इसी से सिद्ध होता है कि जो अंग्रेजी वा अन्य फारसी आदि विद्या पढ़कर विद्वान् कहलाते हैं, उन्होंने ही क्रिस्तानों के समान गुप्त भाव से अपने धर्म का परित्याग किया और उसी को निंद्य गिना तो कोई प्रशंसा की बात नहीं। "अलं खेदेन भूपालाः किन्न सन्ति महीतले।"

(उ०) आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!! आर्यवरों, सत्य कैसी उत्तम वस्तु है। देखो शास्त्री जी ने श्रीयुत पुनीत वेद में मूर्तिपूजा का लेख न होना अन्त को मान ही लिया। सत्य तो यह है कि 'गणेशं कुर्वाणो वानरं चकार' किसी पुरुष ने गणेश की मूर्ति बनाना चाही थी परन्तु बन गई बन्दर की। बस शास्त्री जी चाहते थे मूर्तिपूजा का मण्डन परन्तु उन्हीं के लेख में हो गया उसका खण्डन। सभ्य गणो, यह सत्य ही का प्रताप है। फिर भी हमारे भोले भाले शास्त्री जी महाराज लिखते हैं कि वेद में इसका (पाषाण मूर्तिपूजा का) लेख नहीं। तो क्या बद्रिका, द्वारिका और जगन्नाथादि देवताओं को फोड़-तोड़ दिया जाय। अहा हा हा! वाह भोलापन,

वाह रे शास्त्री जी की कुशाग्र बुद्धि । धन्य है । अजी शास्त्री जी महाराज, विचार तो करिये । कहीं जगन्नाथ और देवता का भी तोड़ना सम्भव हो सकता है ? यह तो आपने ऐसी बात कही कि हम आकाश को तोड़-मरोड़ डालें । जो ऐसा कहे उसको बुद्धिमान् क्या कहेंगे ? अजी शास्त्री जी महाराज, जो जगन्नाथ है, अर्थात् यावद् विश्व का नाथ, स्वामी, आश्रय, व्यापक जो वस्तु है वह कभी तोड़ी भी जा सकती है ? निरवयव पदार्थ जो सर्वत्र विद्यमान है और अचल है वह कभी टूट सकता है । वाह क्या कहना है ! हाँ, जो कहिए कि जिनकी हमने अनन्त संज्ञा धरी है, अर्थात् जिनका नाम गुणों के अनुसार न हो किन्तु स्वकपोल कल्पित किसी काष्ठ पाषाण आदि मूर्ति का नाम जगन्नाथ धर लिया होय । यदि उसके विषय में पूछिये तो उसका तोड़ना क्या है । वह तो आप ही कालान्तर में टूट जाएगा । अब रही उन ग्रन्थों की बात जिनके आधार से हम लोगों की भावना बिगड़ कर आर्यावर्त मात्र की हानि हो रही है । निस्सन्देह वे डुबो देने योग्य हैं । उन वेदादि सद्ग्रन्थों का विस्तार और प्रकाश कीजिए जिनके आश्रय से फिर हम लोगों की भावना सुधरे और अपनी पूर्वावस्था को पहुँचे जिससे यह आर्यावर्त देश भूमण्डल मात्र में सूर्यवत् प्रकाशित फिर हो जाय । देखिए, प्रमाण वस्तु वह कहाती है जिसमें शास्त्रार्थ और स्वान्तःकरण दोनों सम्मति दें । केवल चित्त ही के मानने से इस विषय में कुछ नहीं होता । दूसरे यह सिद्ध करना आपका कदाचित् ठीक नहीं हो सकता कि आज बारह वर्ष से दयानन्द ही क्या उनके हजारों अनुयायी देश-देशान्तरों में जाकर इसके विषय में प्रयत्न कर रहे हैं । परन्तु आज तक कोई संस्कृतज्ञ उनके अनुयायी नहीं हुए । वाह जी वाह ! देखिए संस्कृतज्ञ भी उनके अर्थात् श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के अनेक अनुयायी विद्यमान हैं । परन्तु दिन दोपहरी के सूर्य के प्रकाश में भी न सूझे तो इसकी औषधि भी हमारे पास नहीं । यह तो ईश्वरीय नियम है कि किसी को रात्रि में दीखे और किसी को दिवस में । अजी शास्त्री जी महाराज ! निम्नलिखित संस्कृत के विद्वान् स्वामीजी के दृढ़ अनुयायियों के नाम भी सुन लीजिए । देखिए प्रथम श्याम जी कृष्ण वर्मा जो संस्कृत के बड़े विद्वान् हैं, जिनको गवर्नमेंट हिन्द ने संस्कृतज्ञों की अग्र कोटि में गणनीय समझ कर जर्मनी में सर्व प्रकार की विद्याभिज्ञ पुरुषों की सभा में भेजा था । दूसरे श्री गोपाल राव हरिदेशमुख जो बम्बई के जज रह चुके हैं और अब आर्यसमाज बम्बई के प्रधान हैं । तीसरे दानापुर आर्यसमाज के आदित्य नारायण जी जिनका

अध्ययन न्याय में जगदीशी पर्यन्त और व्याकरण में भाष्यान्त है और शास्त्र भी अच्छा जानते हैं। चौथे और पण्डितवर गोपाल राव हरि जी तथा पं० गौरीशंकर आदि अनके संस्कृत के विज्ञ भी श्रीयुत स्वामीजी के अनुयायी हैं। जिनके नामादि लिखने से पत्र बहुत बढ़ जायगा। परन्तु शास्त्री जी महाराज, इस मार्ग के अनुयायी वे ही हो सकते हैं जो सत्य को मान असत्य का परित्याग कर अपनी शिष्टता के कारण कितनी ही लौकिक हानि होने पर भी कदापि असन्मार्ग में अर्थात् वेद बाह्य पाषाण प्रतिमा पूजनादि पाखण्ड-पथ में नहीं प्रबृत्त होते हैं परन्तु उनकी बात हम नहीं कहते कि जिनको स्वार्थ ने घेरा है। जो परार्थ बिलकुल नहीं जानते और जिनको ईश्वर का किञ्चिन् भी भय नहीं है कि हम मर के सर्वान्तर्यामी भगवान् के आगे क्या कहेंगे। और क्या हमारी दशा होगी। अस्तु। जो हो वे जानें उनका काम। हमारा तो कह देना ही मुख्य धर्म है। फिर उस मार्ग में चलने वा न चलने की उनकी रुचि है। अब देखिए स्वामी जी का और उनके अनुयायियों का प्रताप कि जिन्होंने लाखों मनुष्यों का मन असन्मार्ग से विमुख कर सन्मार्ग में लगा दिया है और अनेक संस्कृताभिज्ञ सत्पुरुषों को भी कंटकाकीर्ण कुत्सित मार्ग से हटा कर इस वेदोक्त दिव्य मार्ग में चलाया है। फिर आपका यह कहना कदाचित् सिद्ध नहीं हो सकता कि कोई भी संस्कृताभिज्ञ उनका अनुयायी नहीं हुआ और अंग्रेजी फारसी पढ़े हुओं को प्रचलित पाखण्ड धर्म के परित्याग करने से जो आपने क्रिस्तानों के समान माना और उनको निंद्य गिना तो यह भी आपकी अपूर्व चातुरी है। अत्र शब्दार्थो विचार्यः क्योंकि इस प्रकार के और लोग भी कहा करते हैं 'अलं खेदेनेत्यादि' प्रकार जो राजा महाराजाओं से आपने की है सो तो समान न्याय है क्योंकि मैं भी कहता हूँ कि यदि राजा रामचन्द्र, युधिष्ठिर आदि धर्मात्मा इस समय में होते तो काहे को आप सदृश महात्मा पुरुषों का मुखारविंद इतना खुलता। परन्तु शतश: धन्यवाद उस परमात्मा को है कि जिसकी कृपा से आज हमारे समय में श्री राजराजेश्वरी विक्टोरिया महारानी का राज्य इस आर्यावर्त में वर्तमान है। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर चिरायु करे, उस न्यायशीला महारानी को कि जिसके प्रताप से बाघ बकरी एक घाट पानी पीते हैं। किमधिकम् विज्ञवरेषु। शास्त्रीजी महाराज क्षमा कीजियेगा। नमस्ते। —आपका कृपाकांक्षी लक्ष्मीदत्त जिला स्कूल सहारनपुर।

दयानन्द दिग्विजयार्कोपराग दुर्दिन

देशहितैषी, अंक ९ खण्ड १ में लक्ष्मीदत्त ने दयानन्द दिग्विजयार्क की

समालोचना जो इस चन्द्रिका में छपी थी उस पर आक्षेप किया है। इस आक्षेपक ने अपनी लेखन-पद्धति से यह भी दिखाया है कि वे न्याय व्याकरणादि शास्त्र भी पूर्ण रीति से जानते हैं। हमको तो यही आनन्द है कि चलो हमारे लेख वृथा नहीं जाते। अब उनके आक्षेपों का ध्यान देने से उसके पुनः खण्डन की इच्छा हमें नहीं होती। कारण पुनर्विवाह के विषय में भी किसी हमारे पत्र-प्रेरक ने लिख ही दिया है कि आजकल वाद जो लोग करते हैं वे मूल विषय छोड़ शाखाओं पर दौड़ते हैं। चन्द्रिका कला ८ किरण ९ देखना। वैसे ही इस विषय में आक्षेप किया है। "आज तक मूर्ति पूजा विषयक हमारी चन्द्रिका में ही कितने लेख छपे होंगे।" इस हेतु-हेतु मद्भाव बोधक लृङ् को उनने सम्भावनार्थक लिङ् माना है। गुरु प्रशंसा की और न्याय का साध्य भाव झाड़ा पर गुरु शिष्यों के लक्षण क्यों छोड़े। अथवा वही आपका समाधान ठीक है कि उनके वे गुरु हैं इसलिए उन्होंने प्रतिष्ठा लिखी। हमारे वे दोनों कोई नहीं इससे हमने सूधी सुनाई। दूसरे समालोचना में "स्वामी दयान्द के अनुयायी प्रायः असंस्कृतज्ञ ही हैं" ऐसा जो आशय था उस पर भी उन्होंने कई विद्वानों के नाम लिखे हैं। इन्हीं नामों को देख हमने अपनी लेखनी रोक ली। "अरसिक जन भाषण तो रसिक जनैः सह वरं कलह।" तीसरे हमारे लेख तभी इन आक्षेपकों को ठीक लगेंगे जब हम भी इन्हीं के समान अन्धे बन दूसरे के सहारे चलने लगें। चौथे यह भी विशेष कारण है कि यदि स्वामीजी के शुद्ध आशय हम न पाए हों वा उन्होंने प्रकट न किए हों। पाँचवें, मित्रविलासादि में नित्य नवीन छपने वाले लेख यथार्थ और जागरूक न हों। छठे जब इसी वृथा पिष्ट-पेषण में हमें दिन बिताना हो, जो भाषा लेख भी नहीं जानता उनको क्या हम समझावें, क्योंकि 'अनुमान' शब्द जो तर्क वा संभावनार्थक है, उसी को आपने शास्त्रारूढ़ मानकर छल से इतनी टांग तोड़ी और अन्यों को भ्रमाया है।

सारांश—यद्यपि हमें आप हारे भी समझें वा आप की ही बात आपके सहवर्तियों को युक्त देख पड़े तो भी कुछ हर्ज नहीं। हमारे जो उद्गार निकले हैं वा निकलते हैं वे तो निष्पक्षपात ही हैं, बहुत क्या जिनका वह दिग्विज-यार्क है उन्हीं से आप उसकी यथार्थता का अक्षरशः युक्तता का सार्टिफिकेट मंगवालें तो वही समाधायक होगा[1] वैसे आप हजारों रीति से इधर-उधर लेखनी फड़कावें और अपने देशहितैषी के पत्रों के पत्र रंगवावें, तो भी यहाँ कुछ हर्ष वा समाधान नहीं भला जिन विद्वान् अनुयायियों के आपने नाम

लिखे उनमें आप भी अपना नमा देते तो भी आपके ही कथनानुसार हमको आपकी बात माननी पड़ती। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका पौष क्र० १९३९ कि० २२।

दामोदररूपोपराग विध्वंसनानन्दसुदिन

महाशयो, देखा अपने चन्द्रिका कला ९ किरण २२ में दामोदर शास्त्री जी महाराज का पाण्डित्य। जब इन ऐसे महाशयों से ही कुछ नहीं बन पड़ता तो इतर क्षुद्र जनों से क्या कहा जाय। सत्य है "नाम बड़े दर्शन थोड़े वा ऊंची दूकान के फीके पकवान" आदि कहावतें ऐसों पर ही तो यथावत् घटित होती हैं। भला कहाँ विद्वच्छिरोमणि श्रीयुत पण्डित गोपाल राव हरि जी महाराज रचित परम दिव्य देशोपकारक दिग्विजयार्क ग्रन्थ और पण्डितवर श्रीमान् लक्ष्मीदत्त जी महाराज का वह सुललित और मनोहर शास्त्रीय लेख और कहाँ इन महापुरुष की यह चपलता "काव्यं धिक्कुरु यत्नरै-र्विरचितम् पाण्डित्ये चापलं वचः" इत्यादि पूर्वजों की दिखलाई हुई सब युक्ति देखिए, कैसी इनमें सुशोभित हो रही है। पढ़े-लिखे सब कुछ समय पर ठीक इन्द्रायण। वेद शास्त्र का तो कहीं कुछ पता ही नहीं बातों की खूब ठेलं-ठाल आपका लेख, तो यह उनके वे गुरु; इसलिए उन्होंने प्रतिष्ठा लिखी हमारे कोई दोनों नहीं इससे हमने सूधी सुनाई और निष्पक्षपाती का दावा (भला कोई अपने और पराये का अहंकार रखने वाला भी कभी निष्पक्षपाती हुआ है) पर क्या कहें बड़ों की बड़ी ही बात होती है। ठौर-ठौर अपनी चन्द्रिका में श्रीमान् आर्यकुल दिवाकर महाराजा के समीप पढ़ना प्रकाशित कर स्थलान्तर में

नोट—ऊपर लिखी अपनी चौथी कलम से विरुद्ध यह लेख शास्त्री जी महाराज ने किया है। कभी कोई विद्वान् और श्री जी महाराज के अशुद्धा-शयों का अभिज्ञ ऐसा प्रयोग नहीं कर सकता परन्तु स्वार्थपरता सब करा छोड़ती है। अतएव उनके इस लेख के प्रत्युत्तर में पं० लक्ष्मीदत्त जी को नीचे लिखा श्लोक लिखना पड़ा अन्यथा क्या आवश्यकता थी, अस्तु। अलंखेदे-नेति। श्लोक—

> अकान्तेव महोपलेन मुनिना शप्तेव दुर्वाससा
> सातत्यं वनमुद्रितेव जतुना नीतेव मूर्छां विषैः।
> बद्धेवाऽतनुरज्जुभिः परगुणान्वक्तां न शक्ता सतीम्।
> जिह्वा लोहशलाकया खलमुखे विद्धेव संलक्ष्यते ॥

सुनते हैं कि शास्त्री जी की बुद्धि जब से अच्छी क्यों न हो, सत्य-सत्य ही होता है। ईश्वर इससे भी अधिकतर उनको काम का कर दिखावे।

उनके शिष्यों को अन्धा बनाना कैसी अनिर्वाच्य लीला है। क्या इन शिष्यों में श्री जी हजूर नहीं आये। शास्त्री जी तो हैं ही, कह देंगे "स्वार्थी दोषं न पश्यति" क्या ऐसे ही स्वार्थी रसिक और हमारे प्रशंसित पण्डितवर गोपाल राव हरि आदि विद्वान् अरसिक कहावें। हाँ, निस्सन्देह उक्त शास्त्री जी के सदृश हमारी विद्वन्मोद विवर्धनी सभा के विज्ञ लोग। न कोन को भाषण तत्परायाः' और 'सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सुताराविन्दुखु। विना में मृग-शावाक्ष्या तमोभूतमिदं 'जगत्'। ऐसे निंद्य रसों में कभी मग्न नहीं रहते। इससे जो शास्त्री जी हमको अरसिक ठहरावें तो लाचारी है।

पाठक गण, हमारे थोड़े से विख्यात विद्वानों के नाम सुनते ही जिसकी लेखनी हाथ से छूट पड़े अथवा रुक जाए तो क्या उसके भीरु और कातर होने में किसी प्रकार का कोई सन्देह करता है? जब इतनी दूर से यह दशा है तो ऐसे पुरुष सम्मुख कब ठहर सकते हैं। उष्ट्रोन्माद तभी तक रहता है जब तक वह किसी पर्वत के नीचे नहीं आता। आप कहते कैसे हैं कि "हम स्वामी जी के प्रकाशित शुद्ध भावों से यथावत् जानकारी रखते हैं।" परन्तु हम कहते हैं कि कभी इन ऐसे हतदृष्टि लोग श्रीमद्रचित परमप्रकाशक आदर्शों से किञ्चित् मात्र भी लाभ नहीं उठा सकते। प्रथमतः ऐसों को हम ऐसे सद्वैद्यों से अपनी दृष्टि सुधरवाने की उचित है, अन्यथा भड़भड़ाते ही रहेंगे। महात्मा जी अपनी ही लेखन पद्धतियों के बल से राहु केतु बन बड़े आनन्दित हुए हैं। अन्त को हार मान लेनी ही पड़ी। अस्तु, अब मुझको यह उचित है कि इनके लेख की युक्ति और उसका रूप रंग ढंग आप लोगों के सम्मुख धर उत्तर देने में उद्यत हूँ तो सुनिए। हमारे मर्कट मित्र शास्त्री जी महाराज लिखते हैं कि "हमने दयानन्द दिग्वजयार्क पर जो समालोचना अपनी चन्द्रिका, कला ९, किरण ६ में लिखी है, उस पर देशहितैषी अंक ९ के द्वारा लक्ष्मीदत्त ने आक्षेप किया है। इस आक्षेपक (लक्ष्मीदत्त) ने अपनी लेखन पद्धति में यह भी दिखलाया है कि वे न्याय व्याकरणादि शास्त्र भी पूर्ण रीति से जानते हैं और हमारे अनुमान शब्द को शास्त्रारूढ़ मान छल से इतनी टांग तोड़ी।"

उत्तर—शास्त्री जी महाराज, यदि आक्षेपक जानता कि चन्द्रिका सम्पादक जी महाराज न्याय, व्याकरणादि शास्त्रशून्य हैं, वृथा शास्त्री कहलाते हैं तो निश्चय था कि वे कभी आप पर शास्त्रीय आक्षेप करने का परिश्रम न उठाते। अनजाने आपकी टांग टूटी तो क्षमा योग्य हैं। और जो आप लिखते हैं कि हमको यही आनन्द है कि हमारा लेख वृथा नहीं जाता तो यह आपका

केवल कथन मात्र ही है, जब कि आप ऐसो के पितृपितामहादि ७२ पीढ़ियों का लेख देश भर में घृणित हो गया, तो अब ऐसे लोक पीटन दासों का लेख क्या सफलता कर सकता है। मूल विषय को छोड़ शाखाओं पर चलना यह आप ही काम है। न आपके आक्षेपक का क्योंकि वाद-प्रकरण में मूल तो केवल यही है कि पाषाणादि मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध हैं और जो अज्ञता आदि कलंक आप आर्यों में प्रकाशित करते हैं, उन सर्व कलंकों से आप और आपके सहचर लोग पूर्ण रीति से कलंकित हैं। बस यही पं० लक्ष्मीदत्तजी ने अपनी प्रशंसनीय लेख पद्धति से अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाया है। आपको उचित था कि उसका मार्जनोपाय कुछ करते। स्वतः समथ नहीं थे तो कोई सहायक ढूंढ़ लेते सो कुछ एक भी न करते बना। लगे उलटे दुर्वचन सुनाने। वाह, धन्य ! भला यह कौन सभ्यता की बात है, अथवा यही ठीक है कि काने को काणा कहने पर चिढ़त ही है, क्योंकि उस विचारे की इस जन्म में तो फूटी आँख जुड़ ही नहीं सकती। फिर केवल गाली प्रदान के और क्या उपाय कर सकता है। शास्त्री जी महाराज, आपके लेखानुसार लोग जब तक आपकी चन्द्रिका क० ८, कि० ९ देखें, तब तक आप भी अपनी उसी कला के मार्गशीर्षाख्य कि०---में श्रीमान् जगद् गुरु स्वामी जी महाराज का देश मेवाड़ में स्वागत लिखा है। उसको देख लीजिए। अथवा दिग्विजयार्क द्वितीय खण्ड के पृष्ठ १५९ से १६२ तक देख सोचिये परन्तु शपथ है लज्जित न हूजिए। और जो आप 'छपे होंगे' इस क्रिया को अब हेतु-हेतुमद्भाव बोधक लृङ् दर्शा कर जो निष्कलंक हुआ चाहते हैं सो भी नहीं हो सकते क्योंकि आपके कर्म (नसीब) में जो कर्माक्षर पड़नहार थे सो आपके ही लेख से पड़ गये ! यही एक क्या शास्त्री जी महाराज, आपके तो उस लेख में एक भी पंक्ति अखण्डित दृष्टि नहीं पड़ती। यही दशा आपके दूसरे इस प्रासंगिक लेख की भी है। क्या करो, पश्चाताप किये भी तो अब सिद्धि नहीं होती। हाँ, मित्रविलास का आश्रय पकड़ लेना यह उपाय इस अवसर पर आपको भला सूझ पड़ा। चलो भाई आर्य वृन्द, एक न सही दो सही। अजी महाराज, क्यों शास्त्री शब्द की निन्दा कराते हो क्या आपने नहीं सुना है कि (नवढ्ढी धूर्त मण्डली) सारांश, अनेक भी हो जाओ तो क्या ? लक्षावधि थूक और चिमगादड़ दिन भर आँख मूंदे हुए मार्तण्ड मण्डल श्री के विनाशनोपायों को क्या सोचते नहीं रहते ? फिर क्या कर सकते हैं वा कभी कुछ कर सकेंगे ? उसी प्रकार आप लोगों का भी यह समस्त आडम्बर है।

यह आर्यावर्त प्रताप भानु (श्री स्वामी जी) अपनी प्रखर सूक्ति रश्मियों से आपको संतप्त कर रहा है। सहस्रशः उपायों से यदि आप ऐसे लोग राहु-केतु बन उपराग उपस्थित करते भी रहें, तो विचार करिये कि कितने समय को वह उपराग और आप कृत दुर्दिन उपस्थित रह सकता है। हो सके तो अब भी विचार को स्थान दीजिए और क्षमा कीजिए। अग्रे हरिरिच्छा बलीयसी। यह आप ही की टेक है। शोक, कि यह वाक्य आपने अपरिमित बार लिखा और पढ़ा परन्तु अद्यावधि उसका भाव न जाना। परोपदेश कुशल ही बने रहे। अन्त में क्या उत्तर करोगे? सत्य जानिए, वहाँ आपका कमला स्तोत्र सहायक न होगा। आपने जाना कि जैसे बहुत से लोग इन दिनों लेडी और मेम साहबा की शुश्रूषा से काम निकाल लेते हैं वैसे ही हमारी भी युक्ति चल जायगी। सब कुछ कर्म करे और द्वारपाल भी बने तो भी कुछ हाथ न आया। जब आपका यह लोक ही सिद्ध नहीं हुआ तो परलोक की क्या आशा हो सकती है? न जाने उन आपके गुरु-दक्षिणा राय ठठेरों की संगति का फल कब आपके हृदय से उठेगा। जितनी आपने इस दुष्टा कमला से हा हा खाई इतनी यदि हमारे पैथनुआ कुलाल की दांत घिष्टी करते तो कदाचित् निहाल भी हो जाते। अथवा अपनी वाक् देवता के स्तावक बनते तो भी कभी के निर्मल हो गए होते। हाय, एक भी न हुआ। दोनों दीन से गए पांडे। हलुआ मिले न मांडे। अन्त को हार मानते ही बनी। छि: !!!

यह शोक तो था, सो था ही, परन्तु इस ओर आप अपने पञ्चत्व की खबरें कह चले अर्थात् चन्द्रिका बंद करना चाहते हैं, यह महान् शोक है। अतएव आपकी अवशिष्ट लेखन पद्धतियों के उत्तरों से अब उपरत होता हूँ। तनिक विचार कीजिएगा तो कुछ शेष भी न मिलेगा। सर्वान्तर्यामी करे आपको यह पत्र रसायन ही लगे,। बच गये तो देखा जायगा। क्योंकि प्रसिद्ध है न वैद्यः प्रभुरायुषः। शुभमस्तु।

आपका मित्र—अनन्तराम शास्त्री व्याख्यानाध्यक्ष स० तें०।

इसी प्रकार का एक उत्तर पं० लक्ष्मीदत्त जी ने भी शास्त्री जी को भारत सुदशाप्रवर्त्तक के ४६ वें अंक के द्वारा उपराग मोचन नाम से दिया है, वह विस्तार भयात् छोड़ दिया गया।

शास्त्रीजी का प्रत्युत्तर

श्री नृसिंहो जयति। ता० २०-५-८३ रविवार। ब्राह्मण कार्यालय

कानपुर। महाशय, कृपा करके उनको यह ज्ञात हो कि आपके द्वितीय खण्ड में अर्थात् वैशाख के प्रथम अंक के जो उनका लेख मैंने पढ़ा "अत्र होलिकोत्सवे दामोदरपराशर्विध्वसनासुदिनम्' नामक विषय छपा है वह मैंने आद्योपान्त पढ़ा। इसके उत्तर देने में कई वाक्य स्मरण हुए उनमें प्रथम चन्द्रिका का सिद्धान्त वाक्य 'अरसिकेषु', दूसरा प्रतिवाचमदन्त केशवः शयमानाय न चेदि-भूभुजे, माघ वाक्य तीसरा 'रसिकजनैः सह वरं कलहः चौथा अविद्वद्भिर्विवादस्तु न कस्यापि हि तुष्टिदः' इत्यादि इतना भी इसीलिए लिखा है कि अनन्त शास्त्री अपनी मेहनत वृथा न समझें। विशेषस्तु मंगलम्।

दामोदर विष्णु शास्त्री।

समाप्तोऽयं विवादः।

साधुजी का आक्षेप स्वामी जी पर

ओं खं ब्रह्म—श्रीमद्‌यानन्द स्वीमी की सेवा में प्रार्थना श्रीमद्भारतीय प्रजा के अतीव हितकारी हैं। अतएव श्रीमानों को परमेश्वर चिरायु करे। श्रीमान् ९९९ मतन को खण्डित करते हैं सो परस्पर पक्षपातीय होने तें खण्डनीय हैं। उक्त मतानुसार श्रीमत् स्थापित मत का भी खण्डन होने ते श्रीमन् ने यह निर्णय किया है कि मिथ्याभिमान स्वार्थ-साधन में तत्पर अन्याय का कारण पाप में प्रवृत्ति चोरी-जारी, अनृत भाषण, पक्षपात किसी का नुकसान इत्यादि निषिद्ध कर्मों को छोड़ना और उनसे विपरीत सद्धर्मानुष्ठान करणें। इस प्रकार श्रीमत् के मुखारविंद से समक्ष श्रवण किया है। परन्तु शोक की वार्ता यह है कि दयानन्द दिग्विजयार्क द्वितीय खण्ड में पृष्ठ १६८ पंक्ति २ वा ६ विषय जलसा चित्तौड़ में, महाराणा श्री उदयपुराधीश श्रीमत् दयानन्द स्वामी जी सेवा में दो बार उपस्थित होते थे। यद्यपि लाट साहब के आने से महाराणा साहब को अवकाश कम मिलता था। इतना ही लिखने से महाराणा साहब का दो वक्त पधारना सिद्ध हो जाता, परन्तु आप नृगराज के गोदान विषय में श्लोक फरमाते हैं कि—

यावन्त्यः सिकता भूमेर्यावन्त्यो दिवि तारकाः।
यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीऽरदर्द स्मगाः॥ १॥ इति

तात्पर्य छः झूठ बोलने वाले को तृप्ति नहीं होती यह आपका फर्माना यथार्थ है। तथापि उक्त नियम विषय कसर नहीं पड़ने दी। महाराणा

साहब ने इति शेषः यह क्या आर्य पुरुषों का समाज है। नहीं, झूठ दमादि दोषन ते रहित का नाम आर्य है, जाको तो लोभी झूठे दांभिको का समाज कहना चाहिए। इस प्रकार दो जगह झूठ के लिखने से स्थाली पुलाक न्याय तें सर्वत्र झूठ की सम्भावना होती है। अब विचार करना चाहिए कि श्रीमान् के प्रतिष्ठित आर्य गोपाल शास्त्री ने अनृत क्यों लिखा है? क्या श्रीमान् उनको अधर्म छुड़वाने वाले का सदुपदेश नहीं देते वा स्वयमेव आपके आर्य लोक ग्रन्थकर्त्ता तो अधर्माचरण करें और अन्यों के ताईं धर्म रोचिक वाक्य कहि कर जिन मत में लेना। और श्रीमान् न्यायशील धर्माधर्म के निर्णय में कथन भी करते हैं। पक्षपातरहितन्यायाचरणं धर्मः और पक्ष-पातसहितामन्यायाचरणमधर्मः। अतएव हमको आशा है कि द. दि. खं. सा. प्र. प्र. पृ. के सातवें अष्टक पृष्ठ ५६८ पंक्ति २ वा ६ विषे पक्षपात रहित सत्यासत्य विचार करेंगे। इति चैत्र बदि १३ गुरुः सं० १९३६

आपका कृपाभिलाषी साधु अमृतराम, नवीन वेदान्ती।

इदानींतन निवासी शहर बूंदी ठिकाना शुक्लेश्वर महादेव।
कृपा पत्र वेग से चैत्र शुक्ला १२ तक भेजना

ग्रन्थकार का प्रथम विनयन

श्रीयुत साधु-मण्डली भूषण बाबा अमृतराम नवीन वेदान्ती जी के चरणों में सविनयं निवेदनम्। बाबा जी महाराज, श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज ने अपने एक पत्र के साथ आपका चैत्र बदी १२ लिखित पत्र मेरे पास भेज कर आज्ञा लिखी कि यद्यपि तुम शुद्ध भाव भावित हो तथापि जब तुमको मेरा यथावत् इतिहास ज्ञात नहीं तो ऐसा इतिहास आगे कदापि मत लिखो। क्योंकि थोड़ा भी असत्य सम्पूर्ण सत्य को बाधित करता है और लेख साधु जी का ठीक है इत्यादि। इसका उत्तर उनको तथास्तु के अतिरिक्त और कुछ देय वा वक्तव्य नहीं; परन्तु आपसे बहुत कुछ प्रार्थना करनी परमावश्यक है। महाराज, आपने जो कुछ मेरी अशुद्धि दिग्विजयार्क द्वितीय खण्ड में देख लिख सूचित की, इसका मैं जितना गुण मानूं वह थोड़ा ही होगा। मैंने अपना ग्रन्थ उदयपुर के कितने ही सत्पुरुष और वहाँ के तथा नाथद्वारा के यंत्रालय और मसूदा नगर के मंत्री आदि के पास भेज कर प्रार्थना की थी कि जो कुछ मेरा दोष देखा जाय उसके अवश्य मुझे सूचित करें। परन्तु किसी ने उपकृत न किया। धन्य है, आप सदृशों का जन्म, जिनसे हम लोग घर बैठे बिना परिश्रम पवित्र होते हैं। वास्तव में आप

श्रीयुत ने बहुत ही कुछ मुझे उपकृत किया। दयालु ऐसों ही को कहना चाहिए। यदि आप एतद् विषयक लेख में हमारे श्रीमान् पर दोषारोपण न करके जो कुछ लिखना था वह केवल मुझ दोषी को ही लिख सन्तोष मानते, तो निःसंशय विशेष धन्यवादी होते। वैसा न करने का हेतु कदाचित् नवीनत्व ही हो, क्योंकि प्राचीन अर्थात् शमादि सम्पत्ति सम्पन्नों से तो कभी अन्यथा व्यवहार हो ही नहीं सकता। तथैव कभी कोई तादृग्बुद्धि पुरुष श्रीमान् सर्वत्र समदृक् जगद्गुरु के उपदेशों में भी द्विविधा नहीं कर सकता॥ न उनके सिद्धान्तों को कोई विचारशील नवीन मत ठहरा सकता है। कदाचित् इसके उत्तर में यह कहा जाय कि जो जैसा होता है उसको क्या वे अर्थात् स्वामी जी वैसे ही भासित न होना चाहिए। अन्यथा "मल्लानां मशनिर्नृणां नखरो" इत्यादि वचन असंगत हो जावेंगे। एवमेव जो सब आर्यसमाजी झूठे, छली, लोभी और दाम्भिक न कहे जायें तो "विनष्टदृष्टेभ्र्मतीव दृश्यते" इत्यादि वचनों को चरितार्थ भी न कर सकोगे। तो इसके उत्तर में 'सत्यवचन महाराज' ऐसा ही अवश्य हाथ जोड़ कर हम लोगों को कह देना पड़ेगा। इसी भांति जिन्होंने कभी दर्शनों का दर्शन ही नहीं किया, उनके स्थाली पुलाक न्याय की सम्भावना भी जहाँ वे कर बैठेंगे, हमको माननीय होगी। और कदाचित् कोई दर्शनी भी ऐसा ही न्याय करेगा तो हम दर्वीरस न्याय से उसका भी आदर ही करेंगे। परन्तु नवीन वेदान्ती जी महाराज! आर्यों का वास्तविक सिद्धान्त कुछ और ही होगा। अर्थात् वे लोग सत्य को सत्य असत्य को ही असत्य कहेंगे। उनसे कदापि यह नहीं हो सकता कि सच्चे हजार रक्खे हुए रुपयों में किसी प्रकार से कोई खोटा रुपया पड़ गया तो वे स्थाली पुलाक न्याय से उन सब रुपयों को खोटा ही बना दें और न यह हो सकता है कि खोटे को सच्चा ही कहें वा तुरन्त उसको निकाल फेंकने का यत्न न करें। अस्त्वत्र तुष्यत्विति न्यायेनैव समाधानम् अर्थात् आप श्रीयुत चाहो जिस रीति संतुष्ट हों और भले ही श्री स्वामी जी महाराज का आत्मवत् नवीन वा पृथक् मत बतावें। आर्यों को भी भर पेट बुरा कहें। हम लोगों की कुछ तादृश हानि नहीं। उपसंहार में मेरी प्रार्थना यही है कि क्षमा कीजिए और सदैव इसी प्रकार कृपा दृष्टि रख मेरे श्रुत विषयों को निर्दोष करने में प्रति समय सावधान रहें जिससे यह सत्य सेवक कृतकृत्य हो। सत्य जानिए मुझे किञ्चित् मात्र मिथ्या का पक्ष नहीं और ऐसे आग्रही को कभी अच्छा समझता हूँ। आपने जिन पंक्तियों पर आक्षेप किया निस्सन्देह वे क्षेपक ही हैं। छपने के प्राक् उस तमाम

प्रमाण को निकाल देने का यत्न था परन्तु शोक कि मुद्रक नहीं समझा। अतएव आप देखिए कि प्रमाणाष्टक में ८ की जगह ९ प्रमाण हो गए हैं। अब यहाँ यह शंका हो सकती है कि न जाने उस समय ग्रन्थकार अपने किस प्रमाण को निकाल देना चाहता था। इसका समाधान प्रत्येक प्रमाण पर थोड़ी-थोड़ी दृष्टि करने से यथावत् हो सकता है। अर्थात् अच्छे प्रकार निश्चय हो सकता है कि सिवाय सातवें प्रमाण के और कोई ऐसा लचर और पोच अन्य प्रमाण नहीं जिस पर किसी एक भी दृढ़ पुरुष की साक्षी न हो। अतः जिसको कहता हूँ वही एक लेख क्षेपक अर्थात् सुना हुआ वृत्तान्त तो है परन्तु नृगराज कथावत् गढ़ा हुआ नहीं। सो यह दोष अब तें तभी दूर होगा जब ग्रन्थ फिर कर मुद्रित होगा और वह भी समय सत्वर ही ईश्वर ने चाहा तो आवेगा। तावत् तो आप मेरे दोनों खण्डों को पुनर्वार अपनी निर्मल दृष्टि से अवलोकन कर प्राप्त दोषों से मुझको अपना जान अवश्य सूचित करेंगे तो बहुमानी हूँगा। इस व्यतिरिक्त और भी जब जो सेवा मदुचित जानी पड़े उसकी भी आज्ञा सदैव होती रहे। विज्ञेषु किं बहुलेनेति।

आपका कृपाकांक्षी गोपालराव हरि २७-४-८३ ई०

प्रथम विनयोत्तर

श्री राम जी ! श्रीयुत गोपालराव हरि मंत्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद समीपेषु। महाशय नमस्ते। श्रीयुत का २७-४-८३ ईस्वी, का मुद्रित पत्र १८-६-८३ ईस्वी को बहुत दिन बाद मेरे पास पहुँचा। समाचार विदित हुआ। श्रीयुत ने यथार्थ पक्ष के स्वीकार पूर्वक कटाक्ष सहित लेख लिखा, तिस कटाक्ष दो का संक्षिप्त प्रत्युत्तर उदयपुर से तथा नाथद्वारा के वा मसूदे के सत्पुरुष आपको घर बैठे बिना परिश्रम पवित्र नहीं कर सके। तब हम सरीखे असत्पुरुष बिना परिश्रम के कैसे पवित्र करेंगे ? शमादि सम्पत्ति सम्पन्न और विचारशील क्या श्रीमत् स्वामी जी महाराज स्थापित मतानुयायी ही हैं या कोई और मतानुयायी हैं। जो जैसा होता है उसको क्या अस्मदादिक वैसे ही भासित न होना चाहिये। वास्तव में नवीनत्व विशेषण भी इनको स्वामी जी महाराज का ही दिया हुआ है। अतएव 'मल्लानामशनि र्नृणा-नखरो स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्' यह वाक्य तो ठीक-ठीक चरितार्थ हो सकता है। तात्पर्य प्रथम श्रीयुत में नवीनत्व प्राप्त है 'तत्पश्चात् श्रीयुत तें अस्म-दादिकों कूं दिया है। दिग्विजयार्कोक्त २ वक्तव्य धारणादि जब सत्य होवे

तो भी तिसका लेख दंभादि दोषकारक है। तब मिथ्या का लेख दोषित क्यों न होय। अब आप चाहे क्षेपक कहो या कुछ और कहो, परन्तु झूठ दंभादिक दोष प्रथम ही श्रीयुत में प्राप्त थे। तब हमने आपको दोषित लिखा था। अतः 'विनष्टदृष्टेर् भ्रमतीव दृश्यते' यह वाक्य हमारे ऊपर चरितार्थ नहीं हो सकता किन्तु अद्य पर्यन्त आपके ऊपर ही चरितार्थ है। स्थाली-पुलाक न्याय की सम्भावना तें स्वामी जी महाराज ने मेरे नाम पहिले प्रत्युत्तर लिखा था जिसमें ऐसी-ऐसी भूलें दिग्विजयार्क में और भी बहुत हैं, सो भूलें तुम उन्हीं ही की समझो हमारी नहीं इत्यादि। और आपके प्रति स्वामी जी के प्रत्युत्तर में भी ये ही लिखा है कि थोड़ा भी असत्य सम्पूर्ण सत्य को बाधित करता है। दर्शनी भी क्या, श्रीमत्स्थापित मतानुयायी ही है या कोई और मतानुयायी भी हैं और लेख आप का अति शुद्ध है। आर्य को हम बुरा नहीं कह सकते क्योंकि हम भी तो आर्य ही हैं। जो कटाक्ष युक्त लेख नहीं लिखते तो निस्सन्देह धन्यवादार्ह होते। चापल्य लेख में अलेख होवे तो क्षमा कीजियेगा। और सदैव इसी प्रकार कुशल पत्र-प्रेषण करेंगे इति। पत्र-व्यवहार इस पते तें करेंगे—देश मेवाड़, उदयपुर, देलवाड़ा की हवेली, साधु अमृतराम के पास पहुँचे।

आपका हितान्वेषी : साधु अमृतराम, नवीन वेदान्ती
२५-६-८३ ईस्वी का

द्वितीय विनयांक

श्रीयुत साधु मण्डली विभूषण बाबा अमृतराम नवीन वेदान्ती जी महाराज के चरणों में सविनय निवेदनम्। महाशय, आप के स्थानान्तर में होने के कारण मेरा प्रार्थना-पत्र श्रीयुत के निकट विलम्ब से पहुँचा होगा। उसका उत्तर जो आपने कृपा करके भेजा है उसको देख पढ़ बहुत प्रमुदित व उपकृत हुआ। वस्तुतः वह मेरे पत्र का तथ्योत्तर तो नहीं है किन्तु हूबहू उसकी छाया उतार कर आपने भेज दी है, अतः पुनर्वार उस पर कुछ लिखने को उत्साह नहीं होता था, परन्तु प्रति दशा में आप बड़ों का मान करना परमावश्यक है।

विदित हो कि आप वेदान्ताश्रितों को 'शेषं कोपेन पूरयेत्' इस कहावत को काम में लाना सुशोभित नहीं करता क्योंकि आपको सामान्य और सत्य भाव भावित लेख को देख शान्त हो जाना चाहिए था। सो न होकर शोक कि उसके उत्तर में अपने तईं आप असत् पुरुष बताते और मेरे लेख

को कटाक्ष युक्त भी समझते हैं। सत्य पूछिए तो मैंने आपको उत्तम पुरुष ही समझ कर स्वहित की प्रार्थना की थी और अपने लेख में कोई आप पर कटाक्ष भी नहीं किया। हाँ, कटाक्षों का उत्तर अवश्यमेव लिखा है और स्पष्ट यह भी विनय कर दिया था कि मेरे दोषों से श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज को दोषित करना आपको उचित न था। क्योंकि वे सर्वत्र समदृग् हैं। अर्थात् उनको हम और आप एक ही से हैं परन्तु अमर्षवशात् मेरी कोई भी प्रार्थना आपके ध्यान में नहीं आई और अब तक आप प्रशंसित श्रीमान् और हम लोगों का मत पृथक् और नवीन ही समझे जाते हैं।

उसी धत् में आपने कतिपय परम चमत्कृत प्रश्न भी किए। फिर अपने तईं आर्य भी बनाते और यह भी लिखते हैं कि हम आर्यों की बुराई नहीं करते, हालांकि प्रथम स्पष्ट भर पेट बुराई कर चुके। बल्कि अब भी आप श्रीयुत उसी यानाधिरूढ़ देखे जाते हैं। तो कहिए, ऐसी दशा में क्या ठीक समझा जावे, जब कि प्रत्येक लेख आपका परस्पर विरुद्ध है।

बाबा जी महाराज, कोई भी क्यों न ह जो, ब तक वह श्रीमत् स्वामी जी महाराज के समस्त वास्तविक सिद्धान्तों से जानकारी प्राप्त नहीं करता, कभी आर्य नहीं हो सकता। और जो ठीक आर्य है वह कभी जगद्विख्यात श्रीमान् के निर्धारित मत को पृथक् वा नवीन नहीं बता सकता, न ऐसे प्रश्न कर सकता है कि शमादि सम्पन्न विचारशील और दर्शनी लोग श्रीमान् स्वामी जी महाराज स्थापित मतानुयायी ही हैं वा कोई अन्य भी क्योंकि वह खूब जानता है कि आर्यजाति और आर्यदेश जब कि एक ही एक है, तो उनका मत भी कोई एक ही होगा। न अनेक। उसी मत को वैदिक कहते हैं उसी का उपदेश श्री जी महाराज सब को करते और स्वयं भी उसी पर चलते हैं तो फिर कहिए उनका मत जुदा वा नया कैसे कहा जा सकता है? जो लोग ऐसा न समझ कर 'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी' के समान धांधली करे जाते हैं, वे अवश्य भ्रान्त विनष्टदृष्टि और अनार्य वा इन सबके मुकुटमणि सिद्ध होते हैं। इस हेतु अच्छा हो जो आप अपना न्याय अपने ही हस्तगत रक्खें और समझें कि मैं क्या कहता हूँ। सत्य तो यह है कि जब तक आप अपनी निर्मल दृष्टि से मेरे पूर्वापर लेखों को न देखेंगे, न सोचेंगे न विचारेंगे, तब तक कभी शान्ति न होगी। वितण्डा और पिष्ट-पेषण में जी लगाना अपने और पराये अमूल्य समय को वृथा खोना है। एवमेव मूल को छोड़ शाखाओं पर जा चिपटना कर्म भी परम गर्हित है। देखिए,

मुख्य आपका पक्ष वा कटाक्ष श्रीयुत सहित हम पर यह था कि तुम औरों को मिथ्या दोष लगाते परन्तु स्वयं उस दोष से मुक्त नहीं होते तो वह आपका भ्रम भली भाँति दूर किया गया। कदाचित् अब भी आपको मेरे और श्रीमान् स्वामी जी महाराज के दिए हुए उत्तरों में कहीं कुछ मिथ्या का पक्षपात प्रतीत होता हो तो आगे चलिए, नहीं तो दूषणीभूत होना ही उत्तम है क्योंकि हम लोगों का उद्देश्य सिवाय सत्य ग्रहण के इतर कुछ नहीं है। यदि किसी प्रकार असत्य छू भी जावेगा, तो कह देवेंगे कि हाँ ठीक है आपका कहना। इसका अनुभव भी लोगों को है। इतने पर भी जो कोई अन्धकार में ही पड़ना चाहे, तो भले ही पड़ो और यावदाहूत संप्लव पड़ा रहो। हम लोग सर्वथा निरुपाय और निर्दोष हैं।

नवीन वेदान्ती जी महाराज, यथार्थ स्वीकार पर भी बारंबार किसी पर दोषारोपण किए जाना अथवा किसी के यथार्थ तथा भ्रान्त बताने पर स्वयं लज्जित न होना वरंच अनर्थ तथा लौट कर उसको आप वैसा ही प्रतिध्वनि सुनाना वा लिखना केवल बालिशत्व कहाता है। अतः क्षमा के साथ उचितावलम्बी होकर सदैव भद्रचित्त सेवा मुझको अपना जान समर्पित करते रहें। विज्ञेषु किं बहुनेति शम्।

आपका कृपापेक्षक : गोपाल राव हरि : ८. ७. १८८३

द्वितीय विनयोत्तर

ओं खं ब्रह्म—श्रीयुत गोपाल राव हरि मंत्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद समीपेषु, मान्यवर आप श्रीयुत ने मुझ पर अनुग्रह कर पुनर्वार कृपापत्र भेजा। उसका पठन कर बहुत आह्लादित हुआ। सत्य है कि आपके पत्र का वह तथ्योत्तर तो नहीं था, जरूर उस पत्र की छाया ही थी। परन्तु आप श्रीयुत से मैंने उस पत्र में जो कुछ परम चमत्कृत प्रश्न किए थे। अर्थात् शमादि सम्पन्न और विचारशील और दर्शनीय क्या श्रीमत् स्वामी जी महाराज स्थापित मतानुयायी ही हैं या आर्यावर्त भर में कोई और भी हैं। इसका ठीक-ठीक उत्तर देना आपको आवश्यक था। सो न देकर प्रत्युत अन्ट-सन्ट लिखना श्रीयुत को योग्य नहीं था। आर्यदेश और आर्यजाति जब कि एक ही एक हैं तो उनका कोई मत भी एक ही होगा, न कि अनेक। प्रश्न—वह एक मत कौन सा है जिसमें सब आर्यों की सम्मति होवे? जो कहोगे, सत्यभाषणादि एक मत तो या में आर्यों का ही क्या विशेष है, या में तो यवन ईसाई चीनी आदि सर्व की सम्मति है। प्रश्न—वेद, पुराण,

गीता व्यास वसिष्ठादिक प्राचीन आचार्यन कर निर्णीत वेदान्त सिद्धान्त के अनुयायी अस्मदादिक को नवीन श्रीयुत स्वामीजी महाराज तथा आप कैसे कहते हैं ? कोई भी क्यों न हो, जब श्रीमान् स्वामीजी महाराज के समस्त वास्तविक सिद्धान्तों से जानकारी नहीं प्राप्त करता, तब तक कभी आर्य नहीं हो सकता और जो ठीक आर्य है, वह न कभी स्वामीजी महाराज के निर्धारित मत को नवीन या पृथक् बता सकता है। यह भी श्रीयुत का लेख अयुक्त है, क्योंकि जब अगले समय में स्वामी जो न थे तब महर्षि व राजे महाराजे आर्यत्व को कैसे प्राप्त हुए होंगे ?

द्वितीय, आर्यावर्त के सर्व आर्य व आर्यवर शिरोमणि राजे महाराजे स्वामी जी के मत को पृथक् और नवीन ही बतलाते हैं, इस पत्र का यथार्थ उत्तर के आए पर श्रीयुत स्वामी जी महाराज के मत को दिग्विजयार्क की अन्य पंक्तियों के साथ आक्षेप कर नवीन मतपना प्रकाशित करेंगे।

उपसंहार में श्रीयुत आप शुद्ध भाव भावित ही हैं। मैंने अपनी दोष दृष्टि कर, श्रीयुत के लेख को कटाक्ष और विपरीत समझ कर अनुचित लिखा है सो क्षमा कीजिए और सदैव इसी प्रकार धैर्यान्वित होकर मुझ बालिश को समझाना योग्य है। पत्र-व्यवहार इस पते से।—बूंदी शुक्लेश्वर महादेव सेवकन आग्रह करि पुनरपि यहाँ ही आना पड़ा और अब भाद्रपद शुक्ला १५ तक यहाँ ही रहेंगे। आप पत्र फौरन भेजसी। आपका कृपाभिलाषीः साधु अमृतराम ता० २६-७-१८८३

तृतीय विनयांक

श्रीयुत साधु मण्डली विभूषण बाबा अमृतराम वेदान्ती जी महाराज के चरणारविन्दों में सविनयं निवेदनम्।

विदित हो कि आपका तृतीय कृपा पत्र २३ जुलाई, सन् १८८३ लिखित पाकर बहु अनुगृहीत हुआ। वास्तव में आपकी इस सत्य सेवक पर बड़ी ही दया है परन्तु परम विस्मय यह है कि आप श्रीमान् के इस प्रकार बारंबार परिश्रम उठाने पर भी लाभ सा पदार्थ कोसों दूर होता जाता है। देखिए चार पाँच मास का अवधि हो चुका अभी तक प्रथम ही दिन है। सोचिए इसमें क्या निकासी है वा कभी होगी। और वृथा परिश्रम है वा नहीं। 'सद्यः साधु-समागमः', 'दर्शनादेव साधवः' इन वाक्यों को सत्य कर दिखलाना मेरा काम नहीं था, तो क्या आपका भी काम नहीं है। वाद-प्रकरण में जिन दोषों को सभ्यगण अति बुरा कहते हैं, उनसे बचने और उचितावलम्बी होने की

प्रार्थना अपने पत्र द्वारा की गई थी। उसके, अभ्यन्तर आपके प्रश्नों का उत्तर भी था। उसको पूर्णतया ध्यान में लाने के लिए बलपूर्वक यह भी विनय किया गया था कि जब तक आप मेरे पूर्वापर लेखों को अच्छे प्रकार न विचारेंगे, कभी शान्ति न होगी। अन्त को वैसा ही हुआ, अर्थात् उसी शान्तिप्रद लेख से आप श्रीमान् कई गुणित क्षुब्ध हो गए, यहाँ तक कि स्व स्वरूप को भी भूल गए ऐसी दशा में मेरे दिए उत्तर को अनुत्तर वा अन्ट शन्ट अथवा अयुक्त बताना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है।

महाराज जी गर्भित आशयों को समझना तो बहुत दूर जहाँ स्पष्ट ऐसा लिख दिया था कि आर्यावर्त भर का जो एक मत होना चाहिए वह मत वैदिक है। उसको भी श्रीमान् न समझें अतएव व्यर्थ आपको यह प्रश्न करना पड़ा "कि वह एक मत कौन-सा है कदाचित् सत्य को कहोगे तो हो नहीं सकता।" कहिए इस प्रश्न और उत्प्रेक्षा की यहाँ क्या आवश्यकता थी हा हन्त, हन्त, हन्त ! जाना जाता है कि यह सब खेल आपको महावंचक लोभ खिला रहा है उसमें फंसे हुए की कभी कलई बिना खुले नहीं रहती। दूसरे बड़ी कसर शब्दशास्त्र न जानने की है, उसकी पूर्ति कौन कर सकता है। इन्हीं कारणों से आप वादी को प्रतिवादी का लेख यथावत् भासित नहीं होता और यही कारण है कि मुझ प्रतिवादी को भी जैसा कि चाहिए आह्लाद नहीं होता। तिस पर तुर्रा यह कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज का नया मत सिद्ध करने की आप इस प्रकार गाढ़ प्रतिज्ञा करते हैं जैसे कोई गगन को कुसुमायमान और वंध्यापुत्र दिखाने की करे। अस्तु आप बड़े समर्थ हैं चाहो सो करें। मैं लिख चुका हूँ कि मुझको प्रति दशा में आप ऐसे महापुरुषों का सम्मान करना ही अभीष्ट है। तदनुसार आपके सब पूर्वापर प्रश्नों का उत्तर सविस्तार नीचे लिखता हूँ। हो सके तो अब भी सुहृदता से देखसुन अपनी वाञ्छा पूरी कर स्वस्थ हूजिए। और कुछ हानि न हो तो इस झगड़े को छोड़ कोई सत्कार्य साधक वा ज्ञानवर्द्धक कर्म में रत हूजिए अन्यथा उत्तर प्राप्त न होगा। इति दिक्। विशेष क्या लिखूं आत्मीय जान यथापूर्व दया रखिए। इति भवदीयो गोपाल राव हरिः ५. १८८३ ई० स्थान फर्रुखाबाद।

बाबा जी कृत प्रश्न १—शमादि सम्पत्ति सम्पन्न विचारशील दर्शनीय श्रीयुत स्वामी महाराज स्थापित मतानुयायी ही हैं। वा अन्य मतानुयायी भी हैं।

उत्तर—आपके द्वितीय पत्र में लिखित दो मंत्रों का यह एक प्रश्न

किया गया है। इनकी यथार्थता प्रकाशित करने में आप श्रीयुत का गौरव कम होता देख इतना ही सूचित कर दिया था (कि प्रश्न आपके चरम चमत्कृत हैं, कभी कोई आर्य ऐसा लेख नहीं कर सकता) बस उत्तर हो गया था। इससे आपको और नहीं तो इतना जान लेना तो भी आवश्यक था कि न जाने हमारा प्रतिवादी किस पकड़ से ऐसा गोल उत्तर दे आगे बढ़ गया। चलो आप भी चुप हो जायं, नहीं तो न जाने आगे क्या भेद खुले। परन्तु बुद्धि के जहाज को तो उचित अनुचित ही सूझ पड़ता है। कुछ सोचा न विचारा। चट गुण में दोषारोपण कर बैठे। अस्तु, अब सुनिये आप अपने प्रश्नों का उत्तर थोड़ा ही देता हूँ। इतने ही पर संतोष मान ठण्डे हूजिये। अवगत हो कि अयुक्त, असंगत और अशुद्ध प्रश्नों का उत्तर कभी देने योग्य नहीं होता। आपके प्रश्नगत तीनों शब्द भाव वाचक हैं। इस कारण कभी ऐसे शब्दों को मत-सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं होती। जो लोग ऐसे शब्दों का मत-सम्बन्ध में प्रश्न करते वे मूर्खराट् कहाते हैं। अतः यह भी सूचित किया गया था (कि मुखमस्तीति की कहावत न कीजिये और अपना न्याय अपने ही हाथ रखिये) परन्तु आपने कुछ भी विचार न किया यह बड़ा शोक है। अस्तु, यदि इससे कुछ अधिक जानने की इच्छा हो तो कुछ वर्ष व्याकरण में परिश्रम उठाइये और श्रेय की इच्छा हो तो तावत् कभी किसी विद्वान् से न उलझिये।

प्रश्न २—वह एक मत कौन सा है जिसमें सर्व आर्यों की सम्मति होवे ?

उत्तर—वह वैदिक मत है जिस पर कि सब आर्यों की सदा से सम्मति चली आई और चली जायगी, हों पर वे ठीक आर्य। आपके पुराण प्रचारित सब मत अपना मूल वेद ही को बताते हैं तथैव और भी सब आधुनिक यहाँ के आचार्य ऐसा ही प्रतीत कराते हैं परन्तु वे सब के सब नासमझ और स्वार्थी होने के कारण खंडित हैं।

प्रश्न ३—श्रीयुत स्वामी जी महाराज तथा आप अस्मदादिकन को नवीन कैसे कहते हैं ? स्वामी जी महाराज आपको नवीन कैसे कहते यह तो स्वामी जी महाराज और आप अच्छी तरह जानते होंगे। हम जो आपको नवीन कहते हैं इसका मूल कारण आप अपने हस्ताक्षरों को जानिये अन्यथा हम कभी नहीं लिख सकते थे। हम लोग तो आप में उस लम्बे पुछल्ले को लगा देख परम विस्मित थे। अस्तु,

प्रश्न ४—स्वामी जी न थे तब पूर्वकालिक लोग आर्यत्व को कैसे प्राप्त हुए होंगे ?

उत्तर—पूर्वकाल में जब श्री स्वामी जी महाराज न थे, तो क्या पुराणों की भांति वेद भी न थे, जो आप पूछते हैं कि उस समय लोग आर्यत्व को कैसे प्राप्त हुए। जानना चाहिए कि वैदिक मत के स्वीकार से ही वे सब लोग आर्यत्व को प्राप्त हुए। और उसी रीति अर्थात् वैदिक मत के स्वीकार से ही वर्तमान और भविष्यत् काल के भी लोग आर्य और आधुनिक पुराणादिक मत पर चलने वाले सब आर्य तथा नवीन सम्प्रदायी आदि कहे जावेंगे। यही सिद्धान्त और निर्धारण श्रीमान् जगत् प्रकाशक स्वामी जी महाराज का सकल विश्व विख्यात है। अतएव प्रार्थना की जाती है कि जो ईश्वर ने बुद्धि दी है तो मेरे पूर्व लेखों को जिन्हें भ्रम से अयुक्त बता चुके हैं अत्यन्त युक्त जानिये। और ऐसा ही निश्चय अपने समस्त भक्तों को कराते रहिये जिससे नर जन्म सफल हो।

प्रश्न ५—आर्यावर्त के आर्य व आर्यवर शिरोमणि आदि स्वामी जी के मत पृथक् और नवीन ही बतलाते हैं?

उत्तर—कोई सत्यार्थानुवर्ती आर्य व आर्यवर शिरोमणि ऐसा नहीं बता सकता। हां, हिन्दू और हिन्दुओं के अधिपति बताते हों तो खेद भी नहीं। उन में से बहुत से अनीश्वरवादी, मद्यपी और वेश्या विलासी आदि अनेक दुराचारी भी तो देखे जाते हैं। उनका दोष तो उन्हीं के माथे है जो उनके पुरोहित पाधा और गुरु घंटाल आदि बन उनकी आँखों में धूल झोंक अपनी तोंद बढ़ा रहे हैं। धिक्, विशेषस्तु मंगलम्। क्षम्यताम्। क्षमासारा हृद साधवः।

आपका कृपाकांक्षी : गोपाल राव हरिः

समाप्तोऽयमपि विवादः।

महाशयो, इस प्रकार पूर्व सिद्ध ग्रन्थार्क महाग्रही ग्रहणों से मुक्त होकर सर्वत्र अधिक चमक दमक के साथ प्रकाशित हो रहा है और उसके संयोग से अब तक बहुत लाभ हुआ, होता है और होगा, ऐसी भगवत्कृपा से पूर्ण आशा है और अतएव श्रीमती परमोपकारिणी सभा के सर्वश्रेष्ठ सभासद पूना निवासी श्रीयुत परमविज्ञ रा० रा० राव बहादुर गोपाल राव हरि जी देशमुख तथा परमविचक्षण मान्यवर महादेव गोविन्द जी रानडे और बहु विद्या विशारद राजमान्य श्याम जी कृष्ण वर्मा की मुझ पर बड़ी ताकीद इस ग्रन्थ के सत्वर परिसमाप्ति के अर्थ हुई थी। तथैव मेरी भी प्रवृत्ति रही। परन्तु शुभ कर्म में विघ्न भी बहुत उपस्थित हो जाते हैं। अतः स्वेच्छानुसार त्वरा के साथ यह काम न हो सका तथापि परमात्मा का पूर्ण

अनुग्रह रहा समझता हूँ क्योंकि गत दो वर्ष मैं बहुत रोगग्रस्त रहा था। उससे उसने मुझे मुक्त किया। द्वितीय महान् रोगराज सेवा-मुक्ति थी। उस दुराशा से भी उस सर्वशक्तिमान् ने परमानन्दपूर्वक जन्म भर को निश्चित कर दिया। इस व्यतिरिक्त अन्य दो चार देशोपकारी काम भी उस सर्वशक्तिमान् ने इस अल्पज्ञ के हाथ बनवा लिए, अतः सर्वकाल उसकी सेवा में धन्यवाद करता हूँ। हे सर्वात्मन् जिस प्रकार हमारे सद्गुरु महाराज को सर्वात्मना सत्य प्रिय था उसी प्रकार उनका यशोवर्द्धक यह ग्रन्थ परम पवित्र सिद्ध होने में आप मेरी पूर्ण सहायता करें जिससे किसी प्रकार इसको असत्य स्पर्श न कर जाय। अन्यथा मुझ को महान् दोष होगा उससे बचाने को अब आप ही समर्थ हैं। यद्यपि मेरा यह प्रण प्रारम्भ से ही है परन्तु अभी तक मुझे बड़ा आश्रय गुरु-चरणों का था। उससे अब रहित हो गया हूँ इसलिए अधिकतर आपके चरणों की शरण लेता हूँ। ओम् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्री स्वामीदयानन्दसरस्वती दिग्विजयार्कीयतृतीयाङ्के समालोचककोपशमनं नाम प्रथमो मयूखः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयो मयूखः

गोरक्षादिविचारविवर्णन

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दविग्रहम् ॥

सुहृद् गण—श्रीमद्दिग्विजयार्कीय द्वितीय खण्डान्त में प्रसंग हो आया है कि जगद्गुरु श्रीमान् स्वामी जी महाराज स्थान चित्तौड़ राज मेवाड़[1] में विराजमान हैं। उन दिनों संवत् ३८ वि० का मार्गशीर्ष था। तत्पश्चात्

१. जिस समय श्री जी महाराज राजधानी इन्दौर में पहुँचे, उस समय वहाँ श्रीमान् महाराजा तुकोजी राव होल्कर नहीं थे। इसीलिए श्री जी महाराज वहाँ से शीघ्र ही चले गए। यह बात राजधानी में आकर जब होल्कर सरकार ने सुनी तो बहुत पछताये और तुरन्त उन्होंने मुम्बई को यह तार दिया कि महाराज जी मैं आ गया हूँ। अब कृपा करके जल्द दर्शन दीजिए। श्री जी महाराज ने उत्तर दिया कि अब तो हमारा आना यहाँ से लौटती समय होगा परन्तु संयोग की बात है कि श्री जी महाराज सात मास पश्चात् बम्बई से लौटे तो उस समय भी महाराज साहब राजधानी में न थे। यह खबर सुन श्री जी महाराज फिर राजधानी की ओर नहीं बढ़े कुछ काल खंडवा ठहर कर उदयपुर की ओर बढ़ गए।

वहाँ से श्रीमान् कहाँ-कहाँ गए और क्या-क्या उन्होंने प्रसिद्ध कार्य किये, यह यहाँ सब सूक्ष्म रीति से लिख प्रकाशित करता हूँ। प्रथम श्रीमान् चित्तौड़ से प्रस्थान करके इन्दौर खंडवा होते हुए प्रसिद्ध स्थान मुम्बई मुल्क गुजरात में पधारे, जहाँ प्रथम से ही उनके पधारने की तिथि और समय के निश्चय का पत्र पहुँच चुका था। तदनुसार रेलवे स्टेशन पर श्रीमान् की अगवानी के लिए थियोसोफिस्टों के आचार्य कर्नल आलकाट साहब और आर्यसमाज के परम प्रतिष्ठित समस्त प्रधान गणादिजन सवारी लेकर उपस्थित थे। इतने में नियत समय पर रेलगाड़ी भी पहुँची। उसे देखते ही सब लोग दौड़े और बड़े ही उत्साह, आनन्द और प्रेम के साथ सद्गुरु महाराज के चरणारविंदों में झुक नमस्ते कर मिले और अहोभाग्य-महोभाग्यम् कहते हुए वहाँ से उनको तुरन्त घोड़ा-गाड़ी पर सवार करा कर परम दिव्य स्थान (बालकेश्वर गोशाला) पर ला उतारा। तहाँ सब लोगों ने पुनः नमस्ते पूर्वक उनसे कुशल प्रश्न किया। तथैव परमानन्द और त्वरा के साथ उनका आतिथ्य सत्कार करने लग गए। उधर नगर में इस शुभागमन की खबर जिसको लगती थी वही दर्शनार्थ आतुर हो दौड़ा आता था। उन सब से श्रीमान् अपनी पूर्ण कृपा दर्शाते हुए कुशलामय प्रश्न करते और उनको अपने समीप बैठने की आज्ञा देते थे। सारांश उस समय मुम्बई वालों के उस अपूर्व आनन्द की सीमा नहीं थी, जिन्होंने वैसा कोई प्रसंग देखा है, वही उसका अच्छे प्रकार अनुभव कर सकते हैं। धन्य महाराज धन्य।

आर्य गण उस समय उन सबको यही जान पड़ता था कि आज हमको कोई बड़ा ही अपूर्व लाभ हुआ है। बहुतेक कहते थे कि आज हम सनाथ हुए। कितनों ही का कथन यह था कि भाई जगत् में सर्वोपरि आनन्द ब्रह्मानन्द है, वही मानो आज हमको संप्राप्त हुआ है। क्यों न हो वेचारे बहु दीर्घ काल से चातकवत् सतृष्ण भी थे क्योंकि संवत् ३२ वि० के पश्चात् अर्थात् ७ वर्ष पीछे तत्रस्थों को यह लाभ हुआ है। इस अन्तर में वे लोग अनेक प्रार्थना-पत्र श्रीमान् के आह्वानार्थ भेजते रहे। ज्यों-त्यों इस संवत् ३८ के पौष मास में उनका यह अभीष्ट सिद्ध हुआ इसलिए बाबत इसके जो धन्यवाद उन्होंने किया सो सब ठीक ही ठीक है।

सत्य तो यह है कि पूर्व समागम में थोड़े ही लोग श्रीमान् के गुण-ग्रामों के जानकार हो पाये थे। सम्प्रति जैसा-जैसा समय अधिक व्यतीत हुआ वैसी ही वैसी श्रीमान् की सत्कीर्ति भी उत्तरोत्तर अधिक फैलती गई।

अर्थात् उनके अनेक सद्ग्रन्थ और ठौर-ठौर के मासिक आदि पत्र तथैव जहाँ-तहाँ के व्याख्यानों की चर्चा जैसी-जैसी लोगों के समीप पहुँची, वैसी ही वैसी दिनों-दिन मानो परमात्मा की लोगों ने अनुकूलता पाई और गुणलुब्धों का सद्भाव श्रीमान् के चरणों में अधिकता के साथ सुदृढ़ होता गया। इन्हीं परम कारणों से उन सबको उस समय बड़ी लालसा श्रीमान् के चरण-दर्शनार्थ हो रही थी। मानो आज उनका वह साक्षात् मनोरथ सिद्ध हुआ। इसलिए कहा जा सकता है कि वास्तव में परम धन्य वह दिवस था।

सात मास तक श्रीमान् वहाँ सुशोभित रहे। उतना काल वहाँ वालों का बड़े ही आनन्द के साथ व्यतीत हुआ। तथैव श्रीमान् भी उस स्थल पर उन समस्त सुयोग्य पुरुषों के संयोग से अति प्रमुदित रहे। इस अवसर में उन्होंने अपना समस्त उपकारक कार्य बराबर यथानियम और यथा-काल-विभाग किया। आए गए लोगों से मिलना, सबका समाधान करना, वेदभाष्य बनाना, चहुँ ओर से प्रत्यह आये हुए तार और पत्रादिकों का उत्तर तुरन्त देना इत्यादि बहुत सा काम उनके नित्य के कृत्य में था। उसको ये बड़ी सावधानी और निरालस्य रह करते थे। इस व्यतिरिक्त और बहुत से नैमित्तिक कार्य भी उपस्थित हो जाते थे। उनको भी वे अच्छे प्रकार निपटाया करते थे। इस प्रकार के कामों से तीन काम इस स्थान पर संग्रह करने योग्य समझे गये हैं। जैसे (१) गोरक्षादि विचार, (२) थियोसोफिस्टों के परम गुरु कर्नल आलकाट साहब के चाल-चलन का स्पष्टीकरण, (३) तृतीय मुन्शी इन्द्रमणि जी के संकष्ट मोचनार्थ कराये हुए चंदे में कृतघ्नता से हुए अपवाद का सम्मार्जन।

(१) अथ गोरक्षाप्रकरणम्

यह तो सभी को अच्छे प्रकार विदित है कि हमारे प्रशंसित श्रीमान् प्रारम्भ से ही और सब विषयों के साथ गौओं की भी रक्षा के सहस्रों लाभ और उनके उपाय सदैव सबको सुनाते व समझाते चले आये हैं, परन्तु जब देखा कि बहुधा चढ़ाया हुआ रङ्ग चार ही दिन बाद लोगों के चित्तों से उतर जाता है और समझाई हुई कर्त्तव्यता भी ठीक-ठीक उनको याद नहीं रहती। द्वितीय यह कि सामयिक राजा और राजपुरुषों की सहायता बिना यह कार्य जैसा कि होना चाहिए हो नहीं सकता। तब परम कारुणिक महानुभाव ने गोकरुणानिधि नाम की एक पुस्तक अपने यन्त्रालय में झटपट छपवा कर सर्वत्र भेज दी। यद्यपि वह अति लघु है तो भी कोई कर्त्तव्यता

रह नहीं गई। यह सब आगे लिखे उसके उतारे से स्पष्ट विदित होगा। इसी प्रकार द्वितीय उपाय राज्य की ओर से प्रबन्ध कराने के अर्थ भारतीय प्रजागण की ओर से विनय-पत्रों का लक्षावधि हस्ताक्षर हो आने के विचार से उस प्रकार के बहुत पत्र अपने वैदिक यंत्रालय में बड़ी त्वरा से छपा कर सम्पूर्ण आर्यावर्त में भेजने भिजवाने आरम्भ कर दिए और इसका सर्व खर्च अपने ऊपर लिया। इतना ही नहीं किन्तु अपने सब राजा महाराजाओं का ध्यान इस ओर झुकाने में भी पूर्ण यत्नवान् हुए इत्यादि, समस्त वृत्तान्त इस समय सर्वत्र सबको अच्छे प्रकार विदित है। वह इसी भाँति भविष्यकाल में भी निरन्तर प्रकाशित रहे। इस अर्थ उन पत्रों की नकल आगे लिख दी है।

चहुँ ओर से उन मुद्रिताशयी पत्रों पर लाखों मनुष्यों के हस्ताक्षर होकर आ चुके थे और आते जाते थे। तथैव बराबर प्रेरणा पर प्रेरणा और यत्नों पर यत्न भी बड़ी धूमधाम के साथ कर रहे थे, परन्तु इस अभागे भारत का ऐसा भाग्य कहाँ जो वह श्रीमान् के विचारे हुए समस्त सुखों को लहे। सब होता ही रहा। इतने में 'समूलं च विनश्यति' की कथा हो गई। हा शोक! गोकरुणानिधिः

सही करने का पत्र

ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुःख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे ने किए अपने उपकार में स्वयं आनन्दित होता है वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिए।

क्या कोई ऐसा भी विद्वान् भूगोल में था, है और होगा जो परोपकार रूप धर्म के सिवाय धर्म वा अधर्म को सिद्ध कर सके। धन्य वे महाशय जन हैं, जो अपने तन, मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं, जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन, मन और धन से जगत् में पर हानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टि-क्रम से ठीक-ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो-जो वस्तु बनाई है वह-वह पूर्ण उपकार लेने के लिए है। अल्प लाभ से महा हानि करने के अर्थ नहीं। विश्व में वे ही जीवन के मूल हैं एक अन्न और दूसरा पान। इसी अभिप्राय से आर्य शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते न और किसी को मारने देते थे। अब

भी इन गाय, बैल और भैंस को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते॥ क्योंकि अन्न और पान की बहुताई इन्हीं से होती है और इससे सब का जीवन सुख से हो सकता है। जितना राजा और प्रजा का नुकसान इनके मारने और मरवाने से होता है, उतना अन्य किसी कर्म से नहीं। इसका निर्णय गोकरुणानिधि पुस्तक में अच्छे प्रकार प्रकट कर दिया है। अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से ४ लाख बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है। इसलिए हम सब लोग स्वप्रजा हितैषिणी श्रीमती राज राजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया की न्याय-प्रणाली में, जो यह अन्याय रूप बड़े-बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है इसको इनके राज्य में से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं। यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या, धर्म, प्रजाहित-प्रिया श्रीमती राज-राजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया, पार्लियामेण्ट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्यावर्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बंद करके हम सब को परम आनन्दित करें।

देखिए कि उक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध, घी, और किसानों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो गई और नित्य प्रति अधिक अधिक होती जाती है। पक्षपात छोड़ करके जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म और पर-हानि ही को अधर्म निश्चित जानता है। क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस जिससे अधिक उपकार हो उसका पालन वर्धन करना और नाश कभी न करना। परम दयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करने में ऐकमत्य करे।

विज्ञापनपत्रमिदम्

सब आर्य पुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र के ऊपर ओ३म् और नीचे 'हस्ताक्षर' ऐसा चिह्न लिखा है वह सही कराने का पत्र है। उस पर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिसके स्वराज्य व देश में ब्राह्मणादिक मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिख के अर्थात् इतने सौ हजार, लाख वा करोड़ मनुष्यों की ओर से अमुक नामा पुरुष सही करता हूँ। इस प्रकार एक श्रीयुत महाशय प्रधान पुरुष की सही में सर्व साधारण आर्य पुरुषों की सही आ जाएगी। परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करें वह उनसे सही लेकर अपने पास जरूर रख ले और जो

मुसलमान और ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में दृढ़ निश्चय हैं कि आप परमोदार महात्माओं के पुरुषार्थ उत्साह और प्रीति से यह सर्वोपकारक महापुण्य कीर्तिप्रदायक कार्य यथावत् सिद्ध हो जाएगा। अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु। चैत्र कृ० ६ सं० १९३९ तदनुसार १४ मार्च, १८८२ मुम्बई।

—दयानन्द सरस्वती।

इस प्रकार के उपदेश युक्त ऊपर लिखे दोनों पत्र श्रीमान् ने एकदम से सर्वत्र हस्ताक्षर हो आने अर्थ अखीर मार्च सन् ८२ में भेज दिए थे और देशी राज्यों में भी उद्योग चला दिया था। देखिए पाठक-गण, श्रीमान् यतिवर्य का सोचविचार, कहाँ तक परिश्रम इस विषय में उठाया और क्या-क्या दर्शाया बा कर दिखलाया है। यही कारण है कि अब सर्वत्र जिधर देखो उधर स्वदेशियों के मुख गोरक्षा-गोरक्षा ही सुनाई देती है। उत्तरोत्तर इसमें वृद्धि होने वाली है।

इसी प्रकार हमारे श्रीमान् मातृभाषा अर्थात् नागरी के प्रचार में भी परम दत्तचित्त हो रहे थे। इसका अनुभव सब को शिक्षा कमीशन के आरम्भ से समाप्ति तक के समय में भली-भाँति आ चुका है। वह सब इन्हीं कृपा निकेतन महा महोदय का कृत्य था जो चहुँ ओर से नागरी प्रचारार्थ कमीशन के अधिपति हण्टर साहब के सम्मुख ठौर-ठौर पोट के पोट मेमोरियलों के खुलते रहे।

भला किसका सामर्थ्य है जो इन परम कारुणिक पुण्य श्लोक शिखारोमणि महाशय की सत्कीर्ति का यथावत् वर्णन कर सके। निश्चय जानिए इन्हीं का किया वेद वेदांगादि सच्छास्त्रों का भाषानुवाद सदैव भरत खण्ड को जाग्रत् रक्खेगा। हिन्दू समाज, प्रयाग भाषावर्द्धिनी और नागरी प्रचारिणी आदि सभाओं की प्रवृत्ति श्रीमान् के आशयों का यत् किञ्चित् अनुकरण और जोधपुरादि राज्यों में नागरी दफ्तरों का हो जाना आदि कार्य श्रीमान् के परिश्रम जन्य भावी प्रतिफलों का एक भारी शुभ चिह्न हैं।

इस प्रकार आप श्रीमान् सकल गुण-निधान ने अनेक प्रकार के नित्य नये जो उपकार हम लोगों पर किए उनका तो कभी किञ्चिन्मात्र भी वे अपने चित्त में हर्ष न लाएं परन्तु जो हम तुच्छों में से किसी ने कहीं तनिक भी कुछ कर दिखाया तो फिर उनके उस हर्ष का किसी ने पारावार ही न

पाया।[१] अतः इस स्थल पर भर्तृहरि जी महाराज का वाक्य अतिस्मरणीय और आदरणीय है, 'परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्, निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।' वे कहते हैं कि दूसरों के गुण बाहुल्य को देख भस्म होने वालों से तो यह जगत् लबालब है ही परन्तु नहीं, निरा ऐसा ही नहीं है, किन्तु कितने ही सच्चे सत्पुरुष इसमें ऐसे भी देखने को मिलते हैं कि जो वे किसी में कोई परमाणु सम भी सद्गुण देख लेते हैं तो फूले अंग नहीं समाते॥ इति। श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्दयानन्ददिग्विजयार्कीय-तृतीयाङ्के गोरक्षादिविचारविवर्णनं नाम द्वितीयो मयूखः॥ २॥

अथ तृतीयो मयूखः

(२) थियोसोफिस्ट

यह एक नवीन मत इस देश में आठ वर्ष की अवधि से प्रवृत्त हुआ है। इसके प्रथमाचार्य कर्नल आल्काट साहब (इनके साथ में मैडम ब्लैवेट्स्की नाम से एक रूसी स्त्री है) हैं। ये महाशय यहाँ माह मई १८७८ ई० में अमेरिका मुल्क के न्यूयार्क नामक शहर से आये हैं। सब लोग इनको

श्रीमत्परमगुरुभ्यो नमो नमः

१. भगवन् आपकी सेवा में गोरक्षा होने के अर्थ इस पत्र के साथ एक प्रार्थना-पत्र ७२ सहस्र मनुष्यों की ओर से अपने हस्ताक्षर करके परम विनयपूर्वक भेजता हूँ। यदि दो मास का विलम्ब होय तो सूचित किया जाऊं। एक लक्ष संख्या पूर्ति हो सकती है और यह संख्या नगर फर्रुखाबाद और फतहगढ़ से जुदी है ऐसा जानिए, क्योंकि उन दोनों नगरों की संख्या समाज से आवेगी। १३. ८. ८२ ई०

(उत्तर) ओ३म् श्रीयुत पं० गोपाल राव जी आनन्दित रहो। विदित हो कि गोरक्षार्थ हस्ताक्षर पत्र के सहित आपका कुशल पत्र पहुँचा। पत्रस्थ समाचार के अवलोकन करने से अत्यन्त हर्ष हुआ। यह आपने सर्वोपकारक धन्यवादार्ह पुरुषार्थ किया। परमात्मा दिन प्रतिदिन ऐसे ही कर्मों के सिद्ध करने में उत्साही करे। आशा है कि आर्यभाषा के प्रचारार्थ भी आप स्वपुरुषार्थ की प्रकटता करेंगे। हम उदयपुर पहुँचकर नौलखा बाग के राजमहलों में ठहरे हैं। एक बार श्रीयुत आर्यकुल दिवाकर श्री महाराणा साहब पधारे। परस्पर प्रेम प्रीति के साथ समागम हुआ, जैसा उनका नाम है वैसे ही गुण भी देखे। इत्यादि। द्वितीय श्रावण १२ शनि संवत् १९३९

दयानन्द सरस्वती॥

एक अपूर्व चतुर मनुष्य समझें क्योंकि बहुत से भोले और कुछेक अंग्रेजी पढ़े हमारे बंधु वर्ग को इन्होंने अच्छा बना लिया और बना रहे हैं। इस घोरांधकार के निवारणार्थ श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने कृपा करके स्थान बम्बई में जो कुछ अपना अनुभव प्रकाशित किया वह और जैसा कुछ कि यहाँ से लन्दन तक प्रसिद्ध है वह सब ज्यों का त्यों इस मयूख में प्रकाशित करता हूँ। आशा है कि जिनको अपने कल्याण की अपेक्षा होगी वे उस पर अच्छे प्रकार विचार करके अपना ध्यान जमावेंगे।

यहाँ पर इतना लिख जताना और आवश्यक है कि जिन महाशयों को उक्ताचार्य का यहाँ आने से प्रथम का वृत्तान्त यदि जानना आवश्यक हो तो मद्रचित पाखण्ड-तिमिरनाशक की पुस्तक मंगा कर देखें। उसमें उक्ताचार्य महाशय के उन सर्व अंग्रेजी पत्रों का नागरी अनुवाद है जो उन्होंने स्वामी जी महाराज के नाम लिख भेजे हैं कर्नल साहब ने अपने उन पत्रों में श्रीं जी महाराज को अत्यन्त विनय के साथ स्पष्ट सविस्तर लिखा है कि गुरु जी महाराज हमने अपनी सोसाइटी का आपको अधिपति और सुसाइटी को आपकी समाज की शाखा बनाया है। हम सब सहस्रों मनुष्य आपके उपदेशों पर चलने को दिल में सन्नद्ध हैं और पढ़ने के लिए आपके चरणों की शरण में वहाँ आते हैं, आशा है कि आप यह सब स्वीकार करेंगे। इत्यादि

(१) थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोल पाल

श्री स्वामी जी ने और आर्यसमाजस्थ लोगों ने इनके पूर्व पत्र व्यवहारों से यह अनुमान किया था कि इनसे आर्यावर्त देश का कुछ उपकार होगा परन्तु वह अनुमान व्यर्थ हो गया। (१) क्योंकि जो-जो इन्होंने प्रथम अपनी चिट्ठियों में असिल लिखा था कि हमारी थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा हुई, उससे ये लोग अब बदल गए। (२) इन्होंने कहा था कि वेदोक्त सनातन धर्म के ग्रहण और संस्कृत विद्या पढ़ने को विद्यार्थी होने के लिए आते हैं, वह तो न किया अब किसी धर्म को नहीं मानते और न कुछ किसी धर्म की जिज्ञासा की, न आज तक संस्कृत विद्या पढ़ने का आरम्भ किया और न करने की आशा है। (३) इन्होंने लिखा था कि जो इस सोसाइटी के सभासदों से फीस आयगी वह आर्यसमाज के लिए होगी और बहुत सी पुस्तकें भेंट की जायेंगी। वह तो कुछ भी न किया प्रत्युत जो हरिश्चन्द्र चिन्तामणि के पास ७०० रुपये भेजे थे वह भी निगल

के बैठ रहे। पुस्तकों का अर्पण करना तो दूर रहा, किन्तु जिन बाबू छेदीलाल और बाबू शिवनारायण आर्यसमाज मेरठ के सभासदों ने इनके सत्कार में स्थान, मान, सवारी और खान-पान आदि में सैकड़ों रुपये खर्च किये इतने पर भी एच. पी. ब्लैवेट्स्की और एच. एस. कर्नल आलकाट साहिब ने जो एक पुस्तक उनको दिया था उसके ३०) रुपये झट ले लिए और शर्मिन्दा न हुए। इसके सिवाय सहारनपुर, अमृतसर और लाहौर आदि के आर्यसमाजों में बहुत सा सत्कार किया, वह भी उन्होंने नहीं समझा और स्वामी जी ने भी जहाँ तक बना उनका उपकार किया, उसको न मान के व्यर्थ लिखते हैं कि हमने स्वामी जी का बहुत सहाय किया परन्तु स्वामी जी कहते हैं कि कुछ भी नहीं किया, और जो किया हो तो प्रसिद्ध क्यों नहीं करते हैं, सो कुछ भी नहीं प्रकट करते, फिर कौन मान सकता है? (४) प्रथम इन्होंने अपने पत्रों में और यहाँ आपके स्वामी जी और सब के सामने ईश्वर को स्वीकार किया फिर उसके विरुद्ध मेरठ में स्वामी जी और अनेक भद्र पुरुषों के सामने दोनों ने कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते। यह क्या पूर्वापर विरुद्ध नहीं है। तब स्वामी जी ने कहा कि तुम ईश्वर के मानने का खण्डन करो और हम मण्डन करें। जो सच है उसको मान लीजिए, तब उन्होंने इस बात को भी स्वीकार नहीं किया। (५) जब वे आर्यावर्त देश में आने लगे तब एक समाचार इण्डियन स्पैक्टेटर पत्र में ता० १४ जुलाई, १८७८ में छपवाया था कि न हम बुद्धिस्ट, न हम क्रिश्चियन और न हम ब्राह्मणों अर्थात् पुराण मत को मानने वाले हैं कि हम आर्यसमाजी हैं। अब इससे विरुद्ध स्पष्ट छपवाया कि हम बहुत वर्षों से बुद्धिस्ट थे और अब भी हैं, क्या यह कपट और छल की बात नहीं है? और जनवरी १८८० के चिट्ठी से सिद्ध होता है कि वे ईश्वर को मानते थे और आठ महीने के पश्चात् उसी सन् के अक्टूबर महीने में मेरठ में कहा कि हम दोनों ईश्वर को नहीं मानते, यह उनका छल नहीं तो क्या है? (६) यहाँ आके आर्यसमाज की शाखा थियोसोफिकल सोसाइटी प्रथम स्वीकार करके पश्चात् कहा कि मुख्य सोसाइटी न आर्यसमाज की शाखा और न आर्यसमाज मुख्य सोसाइटी की शाखा है किन्तु जो एक दूसरी वैदिक शाखा दोनों के साझे की है। इसके विरुद्ध अब छाप के जाहिर किया कि हमारी सोसाइटी कभी आर्यसमाज की शाखा नहीं हुई थी और हम आर्यसमाज से बाहिर हैं, क्या यह भी इनकी विपरीत लीला नहीं है कि जब इन्होंने बम्बई में सुसाइटी बनाई थी उसमें स्वामी जी के कहे, सुने और लिखे बिना उनका नाम अपने मन से सभासदों में लिख लिया था। जब ये प्रथम मेरठ में

मूल जी के साथ मिले थे तब स्वामी जी ने कहा था कि बिना हमारे कहे सुने तुमने सोसाइटी में मेरा नाम क्यों लिखा, जहाँ लिखा हो वहाँ से काट दो। तब कर्नल आल्काट ने कहा कि इसके आगे हम ऐसा काम कभी नहीं करेंगे, जहाँ लिखा है वहाँ से भी निकाल देंगे, फिर जब काशी में मिले तब तक इन्होंने सोसाइटी में से स्वामी जी का नाम नहीं निकाला। तब स्वामी जी ने कड़ा पत्र लिखा कि जहाँ हमारा नाम लिखा हो वहाँ से शीघ्र निकाल दो। जब उन्होंने तार भेजा कि अब हम क्या लिखें, तब स्वामी जी ने तार में जवाब दिया कि जैसा हमने प्रथम वैदिक धर्मोपदेशक लिखा था वैसा लिखो। न मैं तुम्हारी व अन्य किसी सभा का सभासद् हूँ, किन्तु एक वेद-मार्ग को छोड़ के किसी का संगी मैं नहीं हूँ। इस पर भी जब वे शिमले में थे तब ब्लैवेट्स्की ने ऐसी असभ्यता की चिट्ठी लिखी कि जिसको कोई सभ्य स्वीकार नहीं कर सके। क्या यह उनको योग्य था कि स्वामी जी ने कभी उनको न लिखा था और न कहा था, उस पर भी उन्होंने स्वयं स्वामी जी का नाम लिख लिया था। क्या यह लज्जा की बात नहीं है? (७) जो उन्होंने मेरठ में प्रतिज्ञा की थी कि आज पीछे हम आर्यसमाज के सभासदों को अपनी सोसाइटी के सभासद् होने को कभी न कहेंगे, उसी के दो दिन पीछे जब बाबू छेदीलाल जी अम्बाले तक उनके साथ गए, तब मार्ग में बहुत समझाते गए कि आप हमारी सोसाइटी के सभासद् हूजिए। और पत्र शिमले से बाबू जी के पास भेजा कि आप सोसाइटी के सभासद् हूजिए, ऐसी-ऐसी छल-कपट की बातें देख कर स्वामी जी ने आर्यसमाज मेरठ के वार्षिक उत्सव में व्याख्यान दिया था कि इनकी सोसाइटी में किसी वैदिक को सभासद् होने की कुछ आवश्यकता नहीं। क्योंकि जैसे नियम आर्यसमाज के हैं वैसे उनकी सोसाइटी के नहीं। उस पर शिमले में मैडम ब्लैवेट्स्की ने असभ्यता और झूठ से भरी हुई चिट्ठी लिखी और स्वामी जी ने भी उसका उत्तर यथायोग्य दिया, उसके पश्चात् स्वामी जी ने विचारा था कि जब हम मुम्बई में जायेंगे तब इनसे सब बातों का खुलासा कर लेंगे। ऐसा ही आर्यसमाज मुम्बई चाहता था। जब स्वामी जी मुम्बई में पहुँचे तब बहुत सभासद् और कर्नल आल्काट साहब भी स्टेशन पर आये थे। जब स्वामी जी स्थान पर आ पहुँचे पश्चात् उनसे स्वामी जी की बहुत सी बातें हुईं और स्वामी जी ने यह भी विदित कर दिया कि आप से और भी बहुत से विषयों में बातें करनी हैं। तब उक्त साहब ने स्पष्ट उत्तर न दिया। जब कुछ साहब के विषय में बातचीत करने के लिए स्वामी जी के पास आए तब भी कहा कि आपका और हमारा विचार हो जाना चाहिए, तब कर्नल आल्काट साहब

ने कहा कि हाँ करेंगे, उस पर भी स्वामी जी ने पानाचन्द आनन्द जी पारेख और राव बहादुर पं० गोपालराव हरि देशमुख द्वारा कहलाया कि आप लोग मुझसे बातचीत करने को आवें, नहीं तो हमको प्रसिद्ध भाषण देना होगा। तब पानाचन्द आनन्द जी ने उन्होंने से पूछ के स्वामी जी से कहा कि सन् १८८२ ई० ता० १७ मार्च को कर्नल आल्काट साहब बातचीत करने को आवेंगे। फिर भी न आए। और मुम्बई से जयपुर में पहुँच कर पत्र लिखा कि मैं नहीं आ सका परन्तु मैडम ब्लैवेट्स्की आप से बातचीत कर लेंगी। वह भी नहीं आईं। तब स्वामी जी का भाषण आर्यसमाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के पूर्वापर विरुद्ध अर्थात् इनकी थियोसोफिकल सोसाइटी का पूर्व क्या सम्बन्ध था, अब क्या है, इस विषय पर व्याख्यान कराने के अर्थ आर्यसमाज मुम्बई ने एक दिन पूर्व छपवा कर प्रसिद्ध कर दिया। तो भी मैडम ब्लैवेट्स्की ने स्वामी जी के पास आके बातचीत न की तो स्वामी जी ने भाषण दिया। इस पर अपने थियोसोफिस्ट पत्र में लिखते हैं कि हमसे बिना कहे सुने स्वामी जी ने व्याख्यान दिया? क्या यह बात उनकी झूठ नहीं है? उसमें उनकी चिट्ठियाँ पढ़ पढ़ा कर सुनाईं कि जिसमें इनका पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार का प्रकाश किया और यह भी कहा कि ये लोग कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ। ऐसा कहते हैं कि हम आर्यावर्त देश की उन्नति करने के लिए आए हैं परन्तु उन्नति के बदले इनके काम अवनतिकारक विदित होते हैं।

देखो स्वामी जी ने अनेक बार इस वाद करने से रोका कि तुम थियोसोफिस्ट समाचार में भूत-प्रेत पिशाच आदि का होना विद्या से असम्भव है और जो बातें विद्या से विरुद्ध हैं उनको मत लिखो क्योंकि यह समाचार इस देश और यूरोप में भी जाता है, तब लोग जानेंगे कि आर्यावर्त देश में ऐसी ही व्यर्थ बातों के माननेहारे हैं। इस बात को अब तक नहीं माना और पूर्व पत्रों में लिखा था कि जो आप उपदेश करेंगे सो हम मानेंगे। क्या इस बात को भी कोई सच कह सकता है।

(८) जो पत्र कुकसाहब को लिखा था वह कर्नल आल्काट साहब ने अपने हाथ से लिखा था और स्वामी जी ने लिखवाया था। उसमें मोस्ट डिवाइन अर्थात् कौन सा धर्म अधिक सम्बन्ध ईश्वर से रखता है, वह स्वामी जी के अभिप्राय से विरुद्ध लिखा था। जब वे गये पश्चात् स्वामी जी ने उस पत्र की नकल बचवा के सुनी तो अशुद्ध विदित हुआ। फिर उसी समय स्वामी जी के पास कर्नल आल्काट साहब आये, तब वह शब्द कटवा दिया।

अर्थात् उसके स्थान में ऐसा लिखवाया था कि जब आप और मुझसे संवाद होगा तब विदित हो जायेगा कि कौन सा धर्म ईश्वर प्रणीत है और कौन सा नहीं। इतने पर भी उन्होंने वैसा ही अशुद्ध छपवाया। क्या ऐसी बात उनको कर्त्तव्य थी। देखिये, इनकी सोसाइटी के नियमों में थियोसोफिस्ट अर्थात् ईश्वर के मानने वाले—इस सोसाइटी में फीस नहीं ली जाती। इस धर्म से उत्तम कोई धर्म न कहना, न जानना, और सदा कृश्चीन धर्म के विरुद्ध रहना चाहिए। जो अजन्मा किसी का बनाया नहीं, जिसने यह सब बनाया है, उस ईश्वर को मानना।

अब सब बातें इनसे विरुद्ध अर्थात् ईश्वर को न मानना, दस दस रुपये फीस लेना और जिस धर्म का व्याख्यान देते हैं उसी को सबसे उत्तम कहने लग जाते हैं। क्या यह खुशामदी और भाटों की लीला से कम है। अब विशेष लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं। इतने नमूने ही से सब कोई समझ लेंगे परन्तु इस पत्र के लिखने का यही प्रयोजन है कि इनकी सोसाइटी और इनके साथ सम्बन्ध रखने से आर्यावर्त देश की और आर्य-समाजों की सिवाय हानि के कुछ भी लाभ नहीं है। क्योंकि इन लोगों का आन्तरिक अभिप्राय क्या है, इसको ये ही जानते होंगे। जो इन्हों का अन्तर ही विषकपटी न होता, तो ऐसा पूर्वापर विरुद्ध व्यवहार क्यों करते? जब जब ये भयंकर नास्तिक वाक्चल (चंचल) और स्वार्थी मनुष्य हैं तो आर्यावर्त देश और आर्यसमाजस्थादि आर्यों को उचित है कि इनसे सम्बन्ध वा देशोन्नति की आशा न रक्खें। देखो, अन्य भी थोड़ा सा इनके प्रपंच का नमूना। प्रथम स्वामी जी का नाम लेते थे। जब स्वामी जी उनके जाल में न फंसे तो अब कुटुम्बीलाल का नाम लेते हैं कि जिसको न किसी ने देखा और न पूर्व सुना था। जो कभी उसके नाम से स्वार्थ-सिद्धि न होगी तो गोत्र कुटुम्बीसिंह का नाम शायद लेंगे। अब कहते हैं कि वह हमारे पास आता बातें करता और चमत्कार दिखलाता है। वह देखो उनका यह फोटो-ग्राफ है। चिट्ठियाँ और पुष्प ऊपर से गिरते हैं। खोई हुई चीज निकलती है, इत्यादि। सब बातें उनकी सच्ची नहीं क्योंकि दूसरे को तो जाने दें। परन्तु जब प्रथम कर्नल आल्काट साहब, मैडम ब्लैवेट्स्की मुम्बई में आये थे, तब कुछ वस्त्रादि की चोरी हुई थी। उसके लिए बहुत सा प्रयत्न पुलिस आदि से कराया था। उनको क्यों नहीं मंगवा लिया था? जब अपने पदार्थ न मंगवा सके तो शिमले की बात को सच्ची कौन विद्वान् मानेगा? जब स्वामी जी और मैडम से मेरठ में योग विषय में बात हुई थी, तब योगशास्त्र और

सांख्य की रीति से मैं योग करती हूँ, कहा। तब स्वामी जी ने उस-उस शास्त्रोक्त योग की रीति पूछी तब कुछ भी जवाब न दे सकी अर्थात् जैसे कि मैस्मेरिजिम जैसे बाजीगर तमाशे करते हैं उसी प्रकार की इनकी भी बातें हैं। जो योग का थोड़ा भी अभ्यास करता है, वह भीतर और बाहर से सत्यता से भरा हुआ एक-सा व्यवहार करता है। झूठ फरेब नहीं। सो वैसा व्यवहार इनका नहीं है। जो योग विद्या को कुछ भी जानते तो ईश्वर को न मान कर भयंकर नास्तिक क्यों बन जाते? इनके योग विद्या के न जानने में ईश्वर का न मानना ही प्रमाण है। इसलिए यही निश्चय है कि इस सोसाइटी और इनकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इस वास्ते इनसे पृथक् रहना ही उत्तम है।

——मुम्बई ओरियण्टल प्रेस।

थियोसोफिस्टों की लीला

जो गत लाहौर के शिक्षा-सभा हाल में हुई, इसके मुखिया राय विशुनराय महाशय थे। जिन्होंने प्रथम ही से नगर निवासियों को कुटुम्बी-लालसिंह के चेले की करामात करने का विज्ञापन दे दिया था। करामात का नाम सुनते ही इतने मनुष्य एकत्र हुए कि बैठने या खड़े होने को भी स्थान नहीं था। परन्तु लोगों को यही आश्चर्य था कि कर्नल आल्काट साहब और मैडम ब्लैवेट्स्की ने तो कभी कहने पर भी कोई करामात नहीं दिखाई थी किन्तु यह गुरुमार चेले कहाँ से उठ खड़े हुए, जो आज करामात दिखावेंगे। सुतरां जब रायसाहब बहुत थियोसोफी की महिमा कह चुके, तब चेले साहब करामात करने को उठे। और राय साहब ने चेले की अंगुली आगे कर कहा कि इसको कोई काटे, यह कदापि नहीं कटेगी। उस समय बैठे हुए मनुष्यों में से निर्दय या लुता का कार्य जान कोई उसकी अंगुली काटने को उद्यत न हुआ। जब राय साहब अधिक डींग मारने लगे तब गवर्नमेन्ट कालिज के ठाकुरसिंह विद्यार्थी ने अंगुली काटने के दोष का बेदावा लिखा कर तुरन्त उसकी अंगुली काट डाली। अब तो राय साहब आदि थियो-सोफिस्ट बड़े ही लज्जित हुए। विचारिए कि ये लोग कैसे करामाती हैं? सारांश कि ये लोग योग-विद्या और सिद्धि आदि के बहाने से बड़ा ही अन्धकार इस देशनिवासियों पर फैला रहे हैं। इनके अनुचित और निन्दित कामों को देख कर पण्डित उमरावसिंहजी रुड़की निवासी ने बहुत ही उत्तम अंग्रेजी में एक लेख प्रकाशित किया है और यूरोप निवासियों ने भी अपनी विलायत से इनका जैसा कुछ छल-कपट पकड़ कर प्रकाशित किया है।

उसका कुछ वृत्तान्त नीचे लिखा है। उसको देख बुद्धिमान् मनुष्य अच्छे प्रकार सावधान हो सकते हैं।

लंदन नगर में थियोसोफिस्टों की पोलपाल

आजकल लंदन में इस मण्डली के मुख्य सरदारों में बड़ा झगड़ा फैल रहा है। मिस्टर सी० सी० मैसी साहब ने लंदन की थियोसोफिकल सोसाइटी से स्तीफा दे दिया। इसका यह कारण हुआ कि थियोसोफिस्टों के गुरु कुटुम्बीलाल ने (जिसको वे उन महात्माओं में से जानते हैं, जो कि अपने सूक्ष्म आत्मिक शरीर से सदा आकाश में भ्रमण करते रहते हैं। और बिना तार वा डाक के अपने शिष्यों से बातचीत और पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।) थोड़े दिन हुए कि एक संदेशा भेजा था, जिसमें उसने दर्शन-शास्त्र का एक बड़ा भारी विषय प्रकाश किया था। उसके साथ अफलातू हकीम का भी दृष्टान्त था। इसमें एक यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उक्त संदेशे में ऐसे-ऐसे कठिन शब्द थे कि जिनको कोई बड़ा भारी पण्डित ही समझ सके। इसके देखने से मनुष्यों को करामात का प्राचीन समय पुनः आता हुआ ज्ञात होता था, परन्तु पश्चात् यह प्रकट हुआ कि कुटुम्बीलाल का यह संदेशा जिसके भेजने में कुछ व्यय न हुआ था। केवल मिस्टर कैंडल साहब की उस बिगड़ी हुई स्पीच (व्याख्यान) की प्रति थी कि जो उन्होंने न्यूयार्क में दी थी। कुटुम्बीलाल ने तिब्बत से उन बातों के भेजने का वृथा परिश्रम उठाया जो कि अमेरिका के समाचार पत्रों में प्रथम ही मुद्रित हो चुकी थीं। इस विषय में उक्त महात्मा से जो अधिक पूछा गया तो उत्तर गोल माल और मिथ्या मिले और अन्त को चेले जी को किसी प्रकार से समझा न सके। इस पर मैंसी साहब इस मण्डली में प्रवेश होने से लज्जित हो बड़े मन-मलीन हुए और थियोसोफिस्टों से (जिनका आन्तरिक अभिप्राय बौद्ध मत के फैलाने का है) पृथक् हो गए।

ए० ओ० ह्यूम साहब का थियोसोफिस्ट का भ्रमनिवारण श्रीयुत देशहितैषी सम्पादकसमीपेषु (महाशय)

भारतमित्र, सं० १६४०, आषाढ़ सुदी ८

गुरुवार के छापे हुए पत्र में किसी ने वेद पर आक्षेप-पत्र छपवाया है। उस लेख का अभिप्राय यही विदित होता है कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रान्त नहीं हैं। परन्तु इस प्रश्न के करने वाले ने प्रश्न मात्र ही किया है अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए कोई विशेष हेतु नहीं लिखा। जो

किसी वेद वचन पर भ्रान्तपन दिखलाता तो उसका उत्तर उसी समय दिया जाता जैसे कोई कहे कि यह एक हजार रुपयों की थैली सच्ची नहीं। दूसरे ने उसस पूछा क्या मैं तुम्हारे कहने मात्र ही से थैली को झूठी मान सकता हूँ। जब तक तुम झूठा रुपया इसमें से एक भी निकाल के सिद्ध नहीं कर देते तब तक थैली को झूठ नहीं मानूंगा। वैसा ही मि० ए० ओ० ह्यूम साहब और जिसने आपके पत्र में छपवाया है उन दोनों महाशयों का लेख है। यहाँ उनको योग्य था, और है कि किसी एक वा अनेक मन्त्रों को अपने अभिप्राय के अर्थ सहित वेद, अध्याय, मन्त्र संख्यापूर्वक लिख कर, पश्चात् कहते कि वेद ईश्वर की वाणी और अभ्रान्त नहीं हैं तो प्रत्युत्तर के योग्य प्रश्न होता। अब भो यदि उत्तर जानने की इच्छा हो तो इसी प्रकार करें। नहीं तो कुछ भी नहीं है। किन्तु इसमें इतनो बात तो समाधान देने के किसी प्रकार योग्य है सो यह कि वेदों में मतभेद क्यों है। अब देखिए यह भी इनकी गोलमाल बात है। क्योंकि वेदों में किस ठिकाने और किन मन्त्रों में किस प्रकार के मतभेद हैं। हाँ, विद्या-भेद के कथन का भेद होना तो उचित ही है। जो व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक, राजविद्या, गान, शिल्प और पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यन्त की अनेक विद्याओं की मूल विद्या वेदों में है। इन के संकेत शब्दार्थ और सम्बन्ध भिन्न-भिन्न हैं। जैसे व्याकरण विद्या से ज्योतिष विद्यादि के संकेत, परिभाषा पदार्थ विज्ञान पृथक्-पृथक् होते हैं वैसे इन विद्याओं के वाचक अर्थात् प्रकाशक मन्त्र भी पृथक्-पृथक् अर्थ के प्रतिपादक हैं। यदि इन्हीं को मतभेद कहते हैं तो प्रश्न-कर्ता का कथन असंगत है और जो दूसरे प्रकार के मतभेद मानते हैं तो उनका कथन सर्वथा अशुद्ध है। इसलिए प्रश्नकर्त्ताओं को उचित है कि पूर्वोक्त प्रकार से चारों वेदों में से जो कोई एक मन्त्र भी भ्रान्त प्रतीत होवे वह आपके पत्र में मि० ए० ओ० ह्यूम साहब छपवावें। उसका उत्तर भी आप ही के पत्र में उचित समय में छपवा दिया जाय। और उनको वेद के निर्भ्रान्त होने के जानने की पक्की जिज्ञासा हो तो मेरी बनाई ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका को देख लेवें। यदि उनके पास न हो तो वैदिक यंत्रालय, प्रयाग से मंगवा कर देखें और जो उनको आर्यभाषा का पूरा ज्ञान न हो तो किसी सत्यवक्ता दुभाषिये पुरुष से सुनें। इस पर जो उनको शंका रह जाए तो मुझ से समझ मिल के जितनी शंका हो उन सब का यथावत् समाधान कर लेवें। क्योंकि पत्रों से शंका-समाधान होने में विलम्ब होता और अधिक अवकाश की अपेक्षा है और मुझ को वेदभाष्य के बनाने के काम से अवकाश

न मिलने के कारण विशेष प्रश्नोत्तर करने का समय नहीं है। और उन्होंने यह लिखा कि स्वामी जी ईश्वर वा ईश्वर की प्रेरणा युक्त हों, तो उनका भाष्य निर्भ्रम हो सके। मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ। परन्तु वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किए हैं, इस अभिप्राय से कि यहाँ तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि पहुँच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे। इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्ष-पात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूँ। और वह अर्थ सब सज्जनों के दृष्टिगोचर हुआ है, होता है और होगा भी। यदि कहीं भ्रान्त हो तो उक्त साहब प्रकाशित करें।

बड़े शोक की बात है कि आज पर्यन्त एक भी दोष वेदभाष्य में से कोई भी नहीं निकाल सकता है फिर भी इसका भ्रम दूर नहीं हुआ। ऐसी निर्मूल शंका कोई भी किया करे, इससे कुछ भी हानि नहीं हो सकती और सत्यार्थ होने ही से वेदों का निर्भ्रान्तत्व यथावत् सिद्ध है। यदि इस मेरे बनाए भाष्य में मिस्टर ए० ओ० ह्यूम साहब का भ्रम हो तो इसमें भ्रान्ति-मत्व किसी मन्त्र के भाष्य द्वारा आपके पत्र में छपा देवे। मैं उत्तर भी आप ही के पत्र द्वारा दूंगा और जो थियोसोफिस्ट के अध्यक्ष ऐसी बातें करें इसमें क्या आश्चर्य है क्योंकि अनीश्वरवादी बौद्ध मतावलम्बी होकर भूत-प्रेत और चुटकलों के मानने वाले हैं। बड़े शोक की बात है कि सर्वथा विद्या सिद्ध परमात्मा को न मानकर भूत-प्रेत मृतकों में फंस कर और भोले मनुष्यों को फंसा अपने को सुधारने वाले मानना, यह कितनी बड़ी अनुचित बात है। इनको नास्तिक मत जो कि ईश्वर को न मानना है वही प्रिय लगता है। परन्तु इसमें इतनी ही न्यूनता है कि भूत-प्रेतों ने इनको घेर लिया। सच है, जो सत्य ईश्वर को छोड़ेंगे, वे मिथ्या भ्रमजाल, भूतप्रेतों और बंध्या पुत्रवत् कुटुम्बीलाल आदि में क्यों न फंसेंगे? बहुत से समाचारों में छपवाते हैं कि इतने ही इतने हजार मनुष्यों को मि० एच० एस० कर्नल आल्काट साहब ने रोग रहित किया यदि यह बात सच होती तो मुझको क्यों नहीं दिखलाते और मनवाते और मेरे सामने कि जिसको मै कहूँ उस एक को भी नीरोग कर दें तो मैं थियोसोफिस्टों के अध्यक्ष को धन्यवाद देऊं। इसमें मुझ को निश्चय है कि जैसे एक थियोसोफिस्ट दम्भ के मारे लाहौर में अंगुली कटवाके अंग-भंग हो गया, कहीं ऐसी गति मेरे सामने इनकी न हो जावे और करामात कुछ भी काम न आवेगी। मैं प्रसिद्धि से कहता हूँ कि यदि उनमें कुछ भी अलौकिक शक्ति वा योग विद्या हो, तो मुझको दिखलावें।

मैंने जहाँ तक इनकी लीला सिद्ध और विद्या योग्य देखी है, वह मानने के योग्य नहीं थी। अब क्या नई विद्या कहीं से सीख आए ? मुझ को तो यह विषय निकम्मा आडम्बर रूप दिखता है। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु। मिती श्रावण बदी ४, सं० १९४० वि०, स्थान जोधपुर।

—दयानन्द सरस्वती

मित्रगणो, यह लीला इन थियोसोफिस्टों की हैं। तिस पर हमारे भाई भ्रम रहे हैं, क्या यह थोड़ी हानि की बात है। तो बस ऐसों ही के सुखी होने अर्थ ऊपर लिखे अनुसार श्रीमान् परम कारुणिक श्री स्वामी जी महाराज ने यह सब परिश्रम किया और उस दिन से बराबर सर्वत्र सब को अपने व्याख्यानों में भी अच्छे प्रकार सुचेत करते रहे। पाठक जन थोड़े दिनों की बात है, तब कर्नल आल्काट साहब की यह प्रशंसा सुन कि वे बड़े बड़े हर प्रकार के दीर्घ रोगियों को क्षण मात्र में छू-छाकर करा के चट चंगा कर देते हैं, श्रीमान् मृत काश्मीराधिपति ने उनको अपने यहाँ बड़े सम्मान से बुलाकर रक्खा, परन्तु वहाँ कोई एक भी मन्त्र साहब बहादुर का काम न आया। हार कर बहुत दिन बाद यह कह कर कि महाराज का विश्वास ठीक नहीं छिपकर भाग गए। इतने पर भी वे और उनके अनुयायीगण यदि लज्जित न हों तो क्या हो। कुछ हो, विद्वानों को ऐसी दशा में जो कुछ कि करना आवश्यक होता है, वह हमारे श्रीमान् ने किया। अग्रे हरेरिच्छा वलीयसी।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य्यश्रीस्वामीदयानन्दसरस्वती-दिग्विजयार्कीयतृतीयखण्डे थियोसोफिस्टसंसर्गविमोचनं नाम तृतीयो मयूखः।

अथ चतुर्थो मयूखो

मिथ्यापवादसम्मार्जन

सुहृद्गण

श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने महान् संकटसागर में पतित मुरादाबाद निवासी वैश्य कुलोद्भव मुन्शी इन्द्रमणि जी को संवत् १९३७ विक्रमी में जैसा कुछ कण्वलंबन दिया वह सब को, यहाँ से लेकर लंदन नगर तक, अच्छे प्रकार विदित है॥

सहस्रावधि वर्षों के पश्चात् इस देश में यह एक ऐक्यता और स्वजातीय सहानुभूति करने का नया उदाहरण प्रशंसित महानुभाव की पूर्ण कृपा

और तपोबल से हम भारतनिवासियों के हाथ चढ़ा था और वास्तव में बड़े ही आनन्द और सौभाग्य का विषय था, परन्तु शोक कि उसका परिणाम विपरीत हुआ अर्थात् उस अनुपम सुख का उपभोग न स्वयं मुन्शी जी आप कर सके न उन्होंने औरों के लिए शेष छोड़ा[1], यद्यपि (श्रेयांसि बहु विघ्नानि) अवश्य कहा है परन्तु यहाँ वैसा कुछ भी नहीं हुआ और न होता यदि मुन्शी जी जैसे थे, वैसे बने रहते। "आदौ नम्रः पुनः स्तब्धः।" ऐसे वाक्य वैश्यों की प्रशंसा में प्रथम ही से जब सत्पुरुष लिख गए हैं तो वे मिथ्या कैसे हो सकते थे।

हाँ उनको—"न कृतान्धस्य निष्कृतिः" इत्यादि सब वचन भी भूल गए अतएव जो चौबे जी छब्बे बनने को गये थे, वे दूबे बन घर आये।

फिर भी सहस्रशः धन्यवादार्ह हैं हमारे पूर्ण प्रतापी श्रीमान् जिन्होंने अपना सिद्धान्त। (निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।१।।) इस वाक्य पर रखकर महीनों अनेकविध मुन्शी जी को यथार्थ रीति से सत्यपथ पर चलने और अपकीर्त्ति से बचने का ही परमहित चित्त से उपदेश किया लेकिन (लोभाविष्टा न ऐहन्ति स्वामिनं भ्रातरं गुरुम्) की कथा को सत्य करने वाले क्योंकर मान सकते हैं। परिणाम में मुन्शी जी ने श्री महाराज प्रकाशित अति उचित वक्तृत्व पर किंचित् मात्र ध्यान तो न दिया किन्तु असीम खुल खेले और अपना सिद्धान्त नीचे लिखे श्लोक पर रखकर मनमाने राग गाने लग गये। तदुपरि जो कुछ हुआ वह सर्वत्र प्रथित अर्थात् जिस आर्यावर्त में जिधर देखो उधर मुन्शी जी मुन्शी जी ही सुनाई देते थे, तहां अब उनका कोई नाम तक नहीं लेता—अतः पर कोई ऐसी भूल में न पड़ें, एतदर्थ कुछ थोड़ा सा उनका बृत्तान्त यथाप्रथित लिखता हूँ। विद्वज्जन भी विवेचना करें कि उन्होंने अश्रार्थ किया या दया।

---

१. नोट—तारीख १७ और २४ सितम्बर सन् ८५ आदि के भारतमित्र देखे जावें कि अन्य मतावलम्बी और पण्डित सोहनप्रसाद मुदर्रिस ग्राम पड़री, जिला गोरखपुर के विवाद ने चन्दा देने के समय सत्पुरुषों ने अपनी क्या-क्या सम्मति दी, क्या ऐसा बुरा उदाहरण इस देश में सदैव के लिए बनना मुन्शी जी को उचित था। अत्यन्त लज्जा की बात है परन्तु अब शोक करने के सिवाय और क्या उपाय हमारे हाथ है। यह दिन पेश न आवे इस दृष्टि से श्री जी ने मुन्शी जी को गीता का नीचे लिखा वाक्य भी लिख दिया था ।। (संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।)

जातिर्यातु रसातलं गुणगणास्तस्याप्यधोगच्छतां,
शीलं शैलतटात् पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना ।
शौर्य्ये वैरिणि वज्रमाशु पततामर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायः समस्ता इमे ॥

मुन्शी जी ने आगे लिखे अपने विज्ञापन आदि लेखों में श्री जी के पूर्वोक्त वक्तृत्व आदि का आशय ले-ले कर उत्तर प्रकाशित किया है इसलिए यहाँ वक्तृत्व का संग्रह व्यर्थ समझ छोड़ दिया है जिसको उसका देखना अवश्य हो वह अजमेर आर्यसमाज का देशहितैषी नामक मासिक पत्र अंक ७, मास कार्तिक, संवत् १९३९ में देख लेवें। इसी प्रकार मुन्शी जी की भी एक आगे नाम लिखी पुस्तक भी आगे छुटी है ॥

मुन्शी इन्द्रमणि जी का दिया हुआ विज्ञापन

प्रकट हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की सम्मति से जगन्नाथदास की प्रश्नोत्तरी के खण्डन में एक व्याख्यान सर्वथा मिथ्या देशहितैषी नामक मासिक पत्र अजमेर में एक उचित वक्ता के नाम से मुद्रित हुआ है और उसमें प्रायः मेरा नाम भी निन्दा के साथ लिखा है। उसका उत्तर भी शीघ्र ही मासिक पत्र के द्वारा जो कि हम धर्माधर्म के निर्णय में प्रचरित करना चाहते हैं, मुद्रित होकर सज्जनों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जायगा। वरन् उक्त व्याख्यान के अन्त में जो यह लिखा है कि जगन्नाथदास और इन्द्रमणि की प्रतिज्ञा से विरुद्ध करना आदि अन्यथा व्यवहारों को जो कोई सज्जन पुरुष जानना चाहें वो आर्यसमाज मेरठ के लाला रामशरणदास आदि भद्र पुरुषों से पूंछ देखें कि अन्य मार्गियों के विवाद विषय की शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में इन्होंने कैसा-कैसा विपरीत व्यवहार किया है। मैंने अद्य पर्यन्त उस विषय को स्वामीजी की अति निन्दा का कारण जानकर मुद्रित नहीं कराया, परन्तु जब कि वे उल्टा चोर कोतवाल को डांटे इस दृष्टान्त के सदृश अब मेरी मिथ्या निन्दा लोगों से करने और छपवाने लगे, तब उस विषय को प्रकाशित कर देना अत्यावश्यक जाना। विदित हो कि जिस समय मुझ पर मुसलमानों के झगड़े में ५००) रु० दण्ड हुआ तो स्वामी जी ने समाजों को पत्र लिखे कि मुन्शी

इन्द्रमणि की सहायता के लिए चन्दा करके हमारे[1] तथा लाला रामशरण-दास सभासद् आर्यसमाज मेरठ के पास भेजो। यहाँ से एकत्र करके मुन्शी जी के पास भेजा जायेगा, जिससे कि वह उक्त दंड क्षमा होने के लिए अपना मुकदमा लड़ावें। स्वामी जी के लेखानुसार लाहौर, अमृतसर, रुड़की, फर्रुखाबाद, फीरोजपुर, शाहजहांपुर और गावाद, दार्जिलिंग, गुरुदासपुर, जेहलम, मुल्तान, बटाला, आदि के सज्जनों ने यथोचित द्रव्य इकट्ठा करके स्वामी जी तथा लाला रामशरणदास के पास भेजना प्रारम्भ किया, जब कि उक्त मुकद्दमे का अपील जजी मुरादाबाद ही में दायर था तो मुझ को ९००) रु० मिस्टर हिल साहब वैरिस्टर हाईकोर्ट के पास भेजने की आवश्यकता हुई, तब मैंने आप मेरठ जाकर लाला रामशरणदास से कहा कि ६००) रु० वैरिस्टर साहब के पास भेजने हैं, जिसमें ४००) रु० तो मेरे पास हैं २००) रु० चन्दे के रुपये में से जो तुम्हारे पास जमा हुआ है। दे दीजिये लाला साहब ने उत्तर दिया कि यहाँ से तो अभी तुमको रु० न मिलेगा, वहीं से कुछ यत्न करके भेज दो। फिर मैंने उनसे प्रश्न किया कि अब तक आप से पास कितना रुपया जमा हुआ है तो उत्तर दिया कि समाज से बतलाने की आज्ञा नहीं है। धन्य है जिसको सहायता के लिए सज्जनों ने धन भेजा उसको देना तो क्या? यह भी न बतलाया जाय कि इतना द्रव्य है। निदान मैं वहाँ से अपने स्थान को चला आया और एक सज्जन की सहायता से वैरिस्टर साहब को ६००) रु० भेज दिये फिर जब जजी मुरादाबाद से ५००) जुर्माने में से ४००) रु० जमा होकर १००) रु० शेष रहे, तब लाला रामशरणदास जी मुरादाबाद आए थे। मैंने उनसे कहा कि अब हाईकोर्ट में अपील करनी है, रुपया भेजिए। तब भी लाला साहब ने वही उत्तर दिया कि वहां से तो रुपया न मिलेगा यहीं से यत्न करके हाईकोर्ट की अपील कर दीजिए। फिर लाला रामशरण दास जी अपने स्थान को चले गए और मैंने रुपये के लिए कई बार स्वामी जी को तथा लाला रामशरणदास जी को लिखा मुझे दोनों जगह से कुछ न उत्तर मिला। तब मैंने भारतमित्र कलकत्ते में यह छपवाया कि जिन सज्जनों को मेरे मुकदमे में सहायता करनी

---

१. समाज फर्रुखाबाद के नाम आए हुए इस विषयक पत्र में ऐसा लेख नहीं था किन्तु यह था कि रुपया मेरठ में भेजो, वहां से उसकी उचित व्यवस्था मुन्शी जी के कार्य में होगी यदि कुछ धन बचेगा तो दूसरे कोई इसी प्रकार के काम में लगाया जावेगा और न्यूनता होगी तो ऋण लेकर पूरा करेंगे।

हो वह जो देना चाहें, वह मेरे ही पास भेजें अन्य जगह का भेजा हुआ द्रव्य मुझ को नहीं मिलता। फिर स्वामी जी को लिखा कि इस मुकद्दमे के लिए आपके तथा रामशरणदास के पास धन जमा हुआ और हमको नहीं मिलता यदि आपका विचार ऐसा ही है तो स्पष्ट लिख दीजिए। हम हाईकोर्ट का अपील न करें इस लिखा-पढ़ी के उपरान्त स्वामी जी ने ६००) रु० रामशरण-दास जी ही के पास रखा[1] हां जिन महाशयों ने मेरे पास धन भेजा वह मेरे पास पहुँचा और उन्हीं के सहाय से इस मुकदमे का काम चला। यहाँ यह विषय संक्षेप से निवेदन किया गया विस्तारपूर्वक फिर प्रकट किया जायगा। अब बुद्धिमान् न्याय करें कि जो धन सज्जनों ने मेरी सहायता के निमित्त स्वामी जी तथा रामशरणदास जी के पास भेजा और उन्होंने सम्पूर्ण मुझ को न दिया किन्तु आप उसके स्वामी बन बैठे[2] तो अन्य मार्गियों के विवाद

---

१. यहां यह प्रश्न होता है कि लाला रामशरणदास जी खादानी लक्षाधीश रईस मेरठ जो सर्वत्र प्रसिद्ध थे सो क्या मिथ्या है और वे दो चार हजार रुपया वामहस्त से फेंक देने की तबीअत रखते थे वा नहीं। यदि मुन्शी जी इसको मिथ्या कहें तो उनकी प्रतिष्ठा मेरठ आदि नगर और यावत् समाजों में क्यों अधिकतर रही और उनकी मृत्यु पर शोक लोगों ने किया तथैव सरकार ने उनका इलाका क्या समझ कोर्ट किया है—इसी प्रकार द्वितीय प्रश्न यह भी होता है कि—

२. श्री स्वामी महाराज "समलोष्ठाश्च काञ्चनेन" थे वा नहीं यदि नहीं थे तो उनके किन गुणों पर यह समस्त विश्व अब तक रुदन कर रहा है और क्या समझ यथा नाम तथा गुण श्री १०८ महाराणा सज्जनसिंह ऐसे महाराजाधिराजों ने उनको सम्मान पत्र दिए। इस भ्रम के मिटाने को प्रत्येक पुरुष को आज अधिकार है कि वह उदयपुरस्थ श्रीयुत पण्ड्या मोहनलाल जी आदि सत्पुरुषों से ज्ञान कर लेवें कि प्रशंसित महा-राणा जी अपने यहां के एकलिंग जी का आधिपत्य जहां लाखों ही का संचित और हजारों की जागीर है, स्वामी जी को देने की बड़ी आरजू रखते थे। उस पर एक दिन उनको उनका अति तीक्ष्ण उत्तर सहन करना पड़ा है वा नहीं। इसी प्रकार तीन हजार का लोभ दिखाने पर संवत् ३७ विक्रमी में श्रीमान् ने इस ग्रन्थकार का भी मुंह सफेद कर दिया था। वही सत्पुरुष आगे चल कर थोड़े ही दिन पीछे मुन्शी जी के परम घृणित चन्दे में अन्य हो जाय, सरासर असम्भव है। अस्तु यहां यही समाधान है कि 'स्वार्थी दोषं न पश्यति' अथवा 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'॥

विषय के शान्तिकारक व्यवहार प्रसंग में स्वामी जी और रामशरणदास जी ने विपरीत व्यवहार किया है या मैंने ॥ इन्द्रमणि मुरादाबाद

श्रीयुत देशहितैषी सम्पादकसमीपेषु,

मान्यवर नमस्ते—विदित होय कि एक पत्र मुन्शी इन्द्रमणिजी के विज्ञापन रूप मेरे पास आया इसका उत्तर वहुत लम्बा है परन्तु इस समय इस पत्र के थोड़े से उत्तर को आप अपने पत्र में स्थान देके मुझ को कृतार्थ कीजिए। यदि मुन्शी इन्द्रमणि जी अपने लेखानुसार सच्चे हों तो उस व्यवहार में अन्यत्र से जितना आय-व्यय हुआ हो आपके पत्र (दे० हि०) में छपवा के प्रसिद्ध करें और इसी प्रकार लाला रामशरण जी भी करें। जिसके देखने में सज्जन लोगों को स्वयं सत्यासत्य का विचार हो जायगा अर्थात् समझ लेंगे। और उस हिसाब के नीचे यह भी लिखा हो कि जिस-जिस भद्र आर्य जन ने मुन्शी जी और मुसलमान मुरादाबाद के झगड़े में जितने-जितने रुपये जिस-जिस के पास भेजे हों और जिस-जिस की रसीद भी उनके पास हो, नाम लेखपूर्वक वह देश हितैषी पत्र में छापकर प्रसिद्ध कर दिया करें जिससे सत्य और असत्य सब सामने प्रकाशित हो जाय। इसमें सत्य तो यह है कि मुन्शी जी जो झूठा अपराध स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और लाला रामशरणदास रईस मेरठ के ऊपर आरोपित करते हैं, वह सब अपराध मुन्शी जी ही का है, क्योंकि जब मुन्शी जी पर मेजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने ५००) रु० दण्ड किए थे उसके पश्चात् मुन्शी जी मेरठ में आये (जहाँ उस समय स्वामी जी भी उपस्थित थे) और कहा कि यह विवाद सब वेद मतानुयायियों के ऊपर समझना चाहिए न केवल मुझ पर। स्वामी जी और अन्य सब सज्जनों ने कहा कि यह ठीक है क्योंकि मुन्शी जी ने वेद मत की रक्षा के लिए इतना बड़ा परिश्रम किया है, इसलिए इस समय इस मामले में सब वैदिकों को सहाय करना उचित है। इस पर सब की यही सम्मति हुई कि इस बात के लिए एक सभा नियत हो और चन्दा इकट्ठा करे जिससे उसके आय-व्यय का हिसाब वह सभा रखे और मुन्शी जी को उसमें से इतना धन दिया जाय कि जितना खर्च उचित होना होय। अन्त को यह सभा मेरठ में नियत हुई और मुन्शी जी से कहा कि जो कोई आप के पास रुपये भेजे, उसको आप भी इस सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदास जी के पास भेज दिया करें और उसके आय-व्यय की परताल (जांच) यह सभा किया करे और हिसाब भी लेवे। इन सब बातों को मुन्शी जी ने भी स्वामी जी आदि के

संमुख स्वीकार किया था और यह भी उसी समय निश्चय हुआ था कि सिवाय उस सभा के सभासदों के दूसरे से उस धन का आय-व्यय व संख्या प्रसिद्ध तब तक न करनी चाहिए कि जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय, यदि चन्दे का धन कम आवे और खर्च अधिक करना होय तो किसी योग्य धनाढ्य पुरुष से सभा उधार लेकर कार्य्य करे। इसीलिए लाला रामशरणदास जी ने जमा हुए धन की संख्या मुन्शी जी को नहीं बतलाई थी। क्योंकि सभा की आज्ञा बतलाने की नहीं थी, इस गुण को मुन्शी जी ने दोष समझा। धन्य है मुन्शी जी की बुद्धिमत्ता को! इससे सब सज्जन लोग समझ सकते हैं कि यह मुन्शी जी को संख्या न बतलाने में लाला रामशरणदास जी का दोष है? वा इसपर क्रोधित होकर यथा-तथा कुवाच्य कहने-लिखने में मुन्शी इन्द्रमणि जी का। इस विपरीत व्यवहार का कारण यह विदित होता है कि जब इधर-उधर से बहुत धन मुन्शी जी के पास आने लगा तब लोभ के वश में होकर जो पूर्वक्त नियमानुसार अर्थात् जितना धन मुन्शी जी के पास आवे वह मेरठ सभा के कोषाध्यक्ष लाला रामशरणदास जी के पास तो भेजना दूर रहा, किन्तु जब लाला रामशरणदास जी ने कई बार पत्र भेजकर हिसाब मांगा तो मुन्शी जी ने मौन साध के हिसाब नहीं दिया, तब लाला रामशरणदास जी को निश्चय हुआ कि मुन्शी जी के मन में कुछ अन्य आशय है। इस बात के निश्चयार्थ लाला श्यामसुन्दर रईस मुरादाबाद के पास लाला रामशरणदास जी ने पत्र भेजा कि मुन्शी से हिसाब पूंछकर मेरे पास भेजो उनको भी मुन्शी जी ने हिसाब नहीं दिया किन्तु इस सर्व वैदिक मत के रक्षार्थ धन को अपना धन ही समझ लिया। तब से लाला रामशरणदास जी ने मुन्शी जी को धन देना बन्द किया और स्वामी जी को पत्र द्वारा विदित किया तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस समय इस बात के होने से कार्य में विघ्न होगा, कार्य होने दीजिए और ६००) रु० जो मांगते हैं दे दीजिए, तब उन्होंने दे दिए और इससे अधिक धन मुंशी जी को कितना दिया और कितना लाला रामशरणदास जी के पास जमा रहा, यह बात हिसाब छपने से सब को प्रसिद्ध हो जायगी और स्वामी जी ने उक्त लाला श्यामसुन्दर कोठी वाले रईस मुरादाबाद के पास भेजा कि मुन्शी जी से हिसाब लेकर लाला रामशरणदास जी के पास भिजवा दीजिए उन्होंने उत्तर दिया कि मुंशी जी हिसाब नहीं बताते[1] धन्य रे! धन! तेरे में बड़ी आकर्षण शक्ति है तू

१. क्यों ये मुरादाबाद के परम सुप्रसिद्ध रईस जी भी मुन्शी जी के

बड़ों-बड़ों को भी धर्म से डिगाकर नीचे गिरा देता है। फिर जब देहरादून से आते समय मेरठ के स्टेशन पर लाला रामशरणदासादि से मेल हुआ तब मुन्शी जी के विषय की बात सुन बड़ा आश्चर्य मान के उनसे (स्वामी जी ने) कहा कि मैं कोयल इसीलिए ठहर के वहाँ मुन्शी जी को बुलाकर समझा दूंगा। स्वामी जी ने कोयल में आकर मुन्शी जी को बुलाने के लिए तार दिया, उसके उत्तर में मुन्शी जी ने तार में खबर दी कि मैं बीमार हूँ, नारायणदास प्रयाग को गया है अर्थात् मैं नहीं आ सकता। पश्चात् स्वामी जी ने आगरे में आकर मुन्शी जी के पास पत्र भेजा कि यदि यह बात सत्य है तो इसमें आपकी बड़ी निन्दा होगी, आप यहाँ शीघ्र आइये। मुन्शी जी ने बहुत क्रोधित होकर असभ्यता की बातें जो कि उनके लिखने योग्य न थीं, लाला रामशरणदास जी की निन्दापूर्वक बहुत सी लिखीं और यह भी उस पत्र में लिखा कि आप लाला रामशरणदास जी से हिसाब मंगवाइये। तब स्वामी जी ने लाला रामशरणदास जी को लिखा कि आप हिसाब लिखकर मेरे पास यहाँ भेज दीजिये। जब मैं आपके हिसाब को मुन्शी जी को दिखा दूँगा तब वे भी अपना हिसाब देंगे। इसके थोड़े ही दिनों के पश्चात् मुन्शी जी तथा लाला जगन्नाथदास जी आदि मथुरा होते हुए आगरे में स्वामी जी के पास आये जब स्वामी जी ने उनसे कहा कि हिसाब लाये हो या नहीं, तब मुन्शी जी ने कहा कि हाँ लाये हैं, परन्तु पहिले लाला रामशरणदास जी का हिसाब मंगवा लो तब हम भी दिखा देंगे। तब स्वामी जी ने कहा कि जब आपके पास हिसाब है तो क्यों नहीं दिखलाते, तब पुनः मुन्शी जी और लाला जगन्नाथदास जी ने कहा कि उनका हिसाब आने दीजिए, तब दिखलावेंगे। पाठक गणो! परमेश्वर की कृपा और लाला रामशरणदास जी की सच्चाई से दूसरे ही दिन मेरठ से हिसाब आ गया। स्वामी जी ने मुन्शी जी तथा लाला जगन्नाथदास को दिखला दिया। पश्चात् स्वामी जी ने कहा कि अब तो तुम दिखलाओ, तब मुन्शी जी के कहने से लाला जगन्नाथ जी ने बैग को हाथ लगाया, इधर-उधर हाथ फेर-फार कर कहा कि मुन्शी जी वह हिसाब का कागज तो मैं मुरादाबाद में भूल आया। सभ्य गणो! देखो! क्या मिली हुई चेले

साथ न हो सके इसका सत्पुरुष विचार करेंगे तो यही सिद्ध होगा कि धार्मिक पुरुष धर्मात्मा के ही साथी हुआ करते हैं बल्कि थोड़े दिन पहले ये इनके अच्छे प्रकार से साथी रहे और वहाँ के आर्य्यसमाज के भारी भार-वाहक हैं।

को भक्ति है, तब स्वामी जी ने कहा कि जितना स्मरण हो उतना ही कण्ठ से लिखवाइये तब मुन्शी जी लिखवाने लगे, अनुमान है कि २०००) दो हजार तक का हिसाब तो लिखवाया, और कहने लगे कि अब मुझे याद नहीं है। हम मुरादाबाद पहुँच कर शीघ्र हिसाब भेज देंगे सो आज तक नहीं भेजा। अब आप लोग इन बातों से विचार लेंय कि मुन्शी जी सच्चे हैं वा लाला रामशरणदास जी ! ! ! फिर मुन्शी जी और लाला जगन्नाथ जी व्यर्थ वितंडावाद करने लगे और कहा कि २५०) लाला बल्लभदास जी ने भेजे थे सो इस हिसाब में जमा क्यों नहीं। तब स्वामी जी ने कहा कि वे रुपये तो गुरुदासपुर से मेरे नाम आये थे, मैंने लाला रामशरणदास जी को दिये थे न जाने उन्होंने जमा क्यों नहीं किये इसका समाचार मैं लिख कर मंगवा दूँगा। स्वामी जी ने उसी दिन लाला रामशरणदास जी को पत्र लिख कर उत्तर मंगवाया था तब उन्होंने लिखा कि यह मेरे मुन्शी की भूल से लाहौर के रुपयों के साथ गुरुदासपुर के भी २५०) जमा लिख गये हैं अर्थात् जिस दिन १५०) लाहौर समाज से आये थे, उसी दिन २५०) के नोट आपने भी दिए थे, भूल से ४००) लाहौर समाज के नाम जमा किये हैं। अब मुन्शी जी इसका निश्चय करें वा करावें अर्थात् इन २५०) रु० के सिवाय किसी ने स्वामी जी के पास रुपया नहीं भेजा हो तो जिसके पास स्वामी जी के हस्ताक्षरी रसीद होगी, भले ही प्रसिद्ध से छपवा देवें किन्तु स्वामी जी की कुछ इसमें विपरीत बात होती, स्वामी जी प्रतिज्ञा-पूर्वक कहते हैं कि सिवाय २५०) के मेरे पास एक कौड़ी भी किसी की नहीं आई क्योंकि जो कोई स्वामी जी से पूछता वा पत्र भेजता था, तो स्वामी जी यही उत्तर देते थे कि जो भेजना हो सो लाला रामशरणदास जी के पास मेरठ सभा को भेजो, क्योंकि उसी सभा के आधीन यह सब प्रबन्ध है। इस उत्तम प्रबन्ध को तोड़ने वाले मुन्शी जी हैं कि जिन्होंने भारतमित्रादि समाचारों में अपना मतलब सिद्ध करने के लिए अंड-बंड छपवा कर स्व-प्रयोजन सिद्ध किया और अपनी प्रशंसा कर बट्टा लगाया। शोक है यह धन बुरी बला है जो बड़े-बड़े चतुरों को भी फंसा लेती है, उसी दिन स्वामी जी ने मुन्शी जी से कहा कि हिसाब ठीक-ठीक मेरठ सभा में भेज दीजिए, जो एक नियम हुआ है, उसका तोड़ना अच्छा नहीं। आप पूर्वकृत नियमा-नुसार बनिए, जिससे प्रीतिपूर्वक सब सहायक रहें, इसी में अच्छा है विरोध होना अच्छा नहीं। तब तो मुन्शी जी और लाला जगन्नाथदास जी दोनों क्रोधाविष्ट होकर कहने लगे कि हम से हिसाब लेने वाला कौन है ?

इसके मालिक हम हैं, हमारे पर यह सब मामला चला है, हमारे नाम चन्दा जो आता है, हमारा ही है और लाला जगन्नाथदास जी बोले कि यदि आपसे कोई वैदिक यंत्रालय का हिसाब पूंछे क्या आप देंगे। स्वामी जी बोले कि कल लेते हो, वह आज ही लो, यहाँ कोई बात गुप्त नहीं किन्तु जब कोई आर्यसमाज का प्रतिष्ठित सभासद् हिसाब लेना चाहे उसको कोई अटकाव नहीं, फिर स्वामी जी ने मुन्शी जी को एकान्त में ले जा के समझाया कि ऐसी बात करना आपको उचित नहीं है। एक तो वह बात जो मेरठ में आपने कही थी कि यह सब वैदिक धर्म वालों का मामला है मेरा अकेले का नहीं और इससे विरुद्ध आज की बात है, मेरे ही अकेले का मामला आदि है ॥

सुनिए मुन्शी जी यदि मैं आपको पहले से ऐसा जानता तो आपके साथ एक क्षण मात्र भी न ठहरता और आपका कुछ भी सामर्थ्य नहीं था कि अकेले इस प्रकार सहाय प्राप्त कर सकते। अस्तु मैं तो उसी बात को समझा हूँ कि यह सब वैदिक मतानुयायियों के साथ की बात है। तब तो मुन्शी जी कुछ शान्त हुए, पीछे स्वामी जी ने कहा कि अस्तु अब शेष कार्य आप सिद्ध कीजिए और प्रयाग में दो पुरुषों का नाम लिखवाया कि उनकी सम्मति से सब काम कीजिएगा, और मुरादाबाद पहुँच के हिसाब मेरठ में शीघ्र भेज दीजियेगा। मुन्शी जी ने कहा कि जाते ही भेज दूंगा, सो भी न किया और न हिसाब भेजा करते और भेजते तो तब जब मन में भाव होता। प्रयाग में भी गुप्त व्यय कर कराके (जैसा कि मुरादाबाद जजी में व्यय-व्यवस्था हुई थी) अपनी नियत का फल पाकर घर चले आए। फिर भी न जाने किस-किस सज्जन पुरुष के पुरुषार्थ से श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर से प्रार्थना करके २००) रु० का दण्ड भी माफ कराया गया। यदि अब भी मुन्शी जी अपनी बात को सच्चा करना चाहें, तो मुसलमानों के साथ के मामले में जहाँ-जहाँ से जितना-जितना धन जिस-जिस ने भेजा हो उन सबका धन, नाम, ठिकाना आदि लिखें और जितना-जितना जिस कार्य में व्यय हुआ हो, वह प्रसिद्ध सब समाचारों में छपवा दें, और जितना धन उस मामले के विषय में व्यय से शेष रहा हो, उसको मेरठ सभा में भेज देवें क्योंकि मेरठ सभा का वह विचार नियत हुआ था कि यदि मुन्शी जी के मामले से चन्दे का धन बचे तो उसका क्या किया जाय? इस पर सब की यही सम्मति हुई थी कि उस धन को ।।) आने ब्याज में किसी धनाढ्य के पास रक्खा जाय और जब अन्य मतावलम्बियों के साथ वैदिक आर्य्यों का विवाद राज न्याय घर में चले, तब उसी में से इसका व्यय किया जाय

अन्यत्र नहीं, क्योंकि यह धन इसी बात के लिए इकट्ठा किया जाता है और जैसा आज मुन्शी जी पर कष्ट पड़ा है सम्भव है कि अन्य पर भी कभी न कभी आ पड़े। इसलिए इस धन की स्थिरता और उन्नति सदा करते जाना चाहिए—परन्तु पाठक गणो! यह महोपकारक कार्य भी मुन्शी जी के लोभ ने बढ़ने न दिया। अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि इसमें स्वामी जी और लाला रामशरणदास जी का अन्यथा व्यवहार है वा मुन्शी इन्द्रमणि जी का, अधिक लिखना बुद्धिमानों के सामने आवश्यक नहीं। क्योंकि प्राज्ञजन थोड़े ही लेख से बहुत समझ लेते हैं। अलमिति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु। निधिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे पौषमासे सिते दले। प्रतिपत्सौम्यवारे हि पत्रमेतद-लेखिषम् ॥ १ ॥ संवत् १९३९ पौषशुक्ले। बुधवासरे (वही आपका परम मित्र उचितवक्ता) दे० हि०। हमने अपने नियमानुसार दोनों महाशयों के पत्र यावत् प्रकाश कर दिए। अब हम इतना और कह सकते हैं कि जिस प्रकार से हमारे पत्र "उचित वक्ता" ने जो मुन्शी जी के प्रति लिखा है कि "अपनी बात को सच्ची करने के लिए इस मामले में जहाँ-जहाँ से जितना-जितना रुपया जिस-जिस ने भेजा हो, उसका नाम धन ठिकानादि सहित लिखें और जितना जिस-जिस कार्य में खर्च हुआ हो, प्रसिद्ध सब समाचारों में छपवा दें इत्यादि"। वास्तव में यह बहुत उत्तम बात है और ऐसा करने से मुन्शी जी को कभी लेशमात्र भी कलंक नहीं लग सकता और वैसे मुन्शी जी इसके विरुद्ध अपना अमूल्य समय बृथा खोय वादानुवाद से समाचारों के कालम भले ही काले किया करो, कभी इस कलंक से नहीं बच सकते और यह हम सत्य कहते हैं कि जो सच्चा होता है, उसको टालमटोल करने से क्या प्रयोजन। यदि मुन्शी इन्द्रमणि जी सच्चे हैं, तो अपना हिसाब समाचार पत्रों द्वारा प्रकाशित कर अपनी सत्यता का परिचय दिखावें। अन्यथा व्यवहार करने से मुन्शी जी के लिए अच्छा फल नहीं निकलता दीखता। दूसरे अब हम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और लाला रामशरण-दास जी से भी सविनय निवेदन करते हैं कि यदि हमारे पत्र प्रेरक उचित वक्ता का यह कथन सत्य-सत्य है तो आप महाशयों को भी उचित है कि जितना-जितना रुपया मुन्शी इन्द्रमणि जी के मुकद्दमे के विषय का आप लोगों के पास आया है, उसको किसी समाचार पत्र द्वारा प्रकाशित कर इस विषय का शीघ्र निर्णय करना योग्य है और जब यह निश्चय हो जाय कि इतना रुपया मुन्शी जी की सहायता में आया और इतना खर्च होकर इतना बचा, उस बचे हुए धन को उसी नियमानुसार (जो मुन्शी जी आदि ने मेरठ समाज

में स्वीकार किया था) किसी महाजन की कोठी में ।।) के सूद पर दे दिया जाय और जब-जब अन्य मतवालों से वैदिक मतावलम्बियों का झगड़ा पड़े तो इसी रुपये से सहायता ली जाया करे ।।

सम्पादकः देशहितैषी

विज्ञापन

(दिया हुआ मेरठ समाज का)

विदित होता है कि जो विक्रम संवत् १९३७ तदनुसार १८८० में मुन्शी इन्द्रमणि जी रईस मुरादाबाद का मुसलमानों से विवाद होकर मुन्शी जी पर ५००) रुपया मजिस्ट्रेट मुरादाबाद ने जुर्माना किया, तब तत्पर आर्य-जनों ने उस मामले को अपना समझ सहाय किया था। वह मामला तभी हो चुका था परन्तु मेरठ में उस समय इनके लिए यह नियम नियत किया गया था कि मुन्शी जी के मुकद्दमे में जितना धन बचे वह अच्छे प्रतिष्ठित साहूकार के यहाँ ।।) आने ब्याज पर रक्खा जाय जब कभी ऐसा ही किसी अन्य वैदिक धर्मावलंबी आर्य का अन्य मतवादियों से धर्मविषय का विवाद होके कचहरी में जाय, तब उसकी सहायता इस धन से हो और मुन्शी जी ने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आदि के सम्मुख मेरठ में स्वीकार कर लिया था परन्तु शोक का विषय है कि उक्त मुन्शी जी ने ऐसे उत्तम नियम को तोड़ा। अब हिसाब नहीं देते और 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' इसके सदृश लाला रामशरणदास मेरठ और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी पर मिथ्या दोषा-रोपण करते हैं। इस कारण मेरठ आर्यसमाज को आय-व्यय का हिसाब प्रकाश करना पड़ा जिससे मिथ्या भ्रम जैसा मुन्शी जी को हुआ वैसा किसी अन्य आर्य्य पुरुष को न हो और मुन्शी इन्द्रमणि जी का सत्यासत्य तथा यह हिसाब और मुन्शी जी के विज्ञापन देख कर सब पर प्रकट हो जायगा। मुन्शी जी लिखते हैं कि बहुत आर्य्य जनों ने मेरे मुकद्दमे की सहाय में मेरठ समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास धन भेजा था, उसमें केवल ९००) रु० मेरे पास पहुँचे बाकी उनके पास रहे परन्तु मेरठ के इस मितिवार क्रमानुसार हिसाब देखने से निश्चय होता है कि मुन्शी जी के पास उन्हीं के मामले में ९६३।।।≡)।।। रु० मेरठ समाज से पहुँचे हैं, न जाने मुन्शी जी ने केवल ९००) पाना क्यों अपने विज्ञापन द्वारा प्रकाश किए। इस बात से मुन्शी जी की अति असत्यता प्रकट होती है, यदि मुन्शी जी का कथन सत्य है तो इन रुपयों के सिवाय लाला रामशरणदास वा स्वामी जी के पास

किसी ने और रुपये भेजे होयं और उनकी हस्ताक्षरी सहित रसीद होय, शीघ्र प्रकाश करें अथवा करवावें, क्योंकि सांच को आंच कहां, और जो मुन्शी जी ने हिसाब के छपवाने में ढच पच की वा और ही कुछ राग गाने लगे तो यह उनके लिए युग कलंक है। इसके निवारणार्थ उनको अवश्य चाहिए कि जब-जब जितना-जितना खर्च हुआ है यथावत् मितीवार छपवा देवें और शेष धन आर्यसमाज मेरठ में कार्यार्थ भेज दें, पूर्व स्वीकृत नियम को भी सत्य करें, तो बहुत अच्छी बात है, नहीं तो रुपये गये हुए आ भी जाते हैं, परन्तु धर्म्म युक्त कीर्ति गई हुई कभी नहीं आती (सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते) सत् पुरुष को मरणे से अपकीर्ति बहुत बुरी समझनी चाहिए, यदि हमारे आर्य जनों, विशेष कर उपदेशकों का आरम्भ से मृत्यु तक एक सा सत्याचरण रहे तो देश की बड़ी ही उन्नति हो। सर्वशक्तिमान् परमात्मा आर्य्यावर्त देश पर कृपा करें, जिससे हमारे आर्य्यावर्तीय उपदेशक अपने किए हुए उत्तम उपदेश को लोभादि दोषों से कलंकित न करके आद्योपान्त पर्यन्त शुभाचरण से देश की सुदशा बढ़ाया करें। अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु। एति जीवन्तमानन्दः॥ विक्रमी संवत् १९३७ तदनुसार सन् १८८० ई० नकल हिसाब जो कि मेरठ के समाज और मुन्शी इन्द्रमणि जी के विषय का है।

जमा चन्दा कुल १५१६)

३०) आर्यसमाज मुलतान	१०५) मेम्बरान व्यासा
११५) आर्यसमाज लाहौर	१००) आर्यसमाज रुड़की
५०) आर्यसमाज अमृतसर	२३३।≡) आर्यसमाज फीरोजपुर
१००) आर्यसमाज फर्रुखाबाद	१५०॥–) आर्यसमाज गुरदासपुर
१००) आर्यसमाज जेहलम	११) लाला केवलकृष्ण

१३८॥) लाला रकुनराय व लाला मुरलीधर औरंगाबाद से

१३९।॥) पाण्डे रामदीन सेकिन मास्टर दार्जिलिंग

२४५॥) आर्यसमाज मेरठ (इस रकम में मेरठ शहर के और मेरठ के जिला के तीन चार महापुरुषों का जो समाज के मेम्बर नहीं हैं, चन्दा शामिल है)

खर्च कुल ९६३।॥=)।॥

।)॥ रजिस्ट्री मुन्शी इन्द्रमणि जी के पास भेजी ता० ७ अगस्त सन् ८० ई०

३००) रुपये दिए मुन्शी इन्द्रमणि जी को मा० लाला श्यामसुन्दर लाल रईस मुरादाबाद के तारीख ७ अगस्त सन् १८८० ईसवी।

११।) रुपये किराया रेल गाड़ी मेरठ से मुरादाबाद तक चार आदमियों का ता० १४ अगस्त सन् १८८० ई०। ६) रु० किराया रेलगाड़ी का बरेली से मेरठ और बरेली से मुरादाबाद तक। ।–) लाला शादीराम के खत का महसूल जो इलाहाबाद से आया।

।।) किराया गाड़ी जोहुल साहब बेरिस्टर के पास मेरठ में जाते समय दिया गया ता० १४.८.८० ई० २३) रु० मुकद्दमे पहिले में खर्च हुआ मुकाम मुरादाबाद इसका हाल मुन्शी जी को मालूम है। १७≡)। रुपये खर्च रवानगी मेरठ से इलाहाबाद तक ता० ९ सितम्बर सन् १८८० ई०। ३००) रु० वजरिये नोट के मुन्शी जी के पास भेजे गए। ।–) रजिस्ट्री-खत का महसूल ३००) रु० वजरिए हुँडी के मुन्शी जी के पास भेजे गए।

१।।) हुँडीवन दिया गया ३०-१०-८० ई०।

३।।) रुपये किराया रेल झंडू नौकर मेरठ से अलीगढ़ तक मये वापिस खुराक के ।।–) मुन्शी इन्द्रमणि जी के खत का महसूल।

५५२–)। बाकी रहा यह रुपया त्रैराशिक के हिसाब से ऊपर लिखे चन्दा देने वालों को मेरठ समाज ने उनकी इच्छानुसार फेर दिए।

ग्रन्थकार—यह लेख देश हितैषी में का है और इसी प्रकार हिसाब इनका भारतमित्र में भी मुद्रित हुआ उन्हीं दिनों देखा गया है परन्तु इतनी प्रेरणा पर भी मुन्शी जी महाशय ने अपने वसूल हुए चन्दे का हिसाब किसी तरह पर भी प्रकाशित कर न दिखाया। हां निःसन्देह आगे लिखे नाम की एक किताब उन्होंने स्वयं मुद्रित कर अवश्यमेव सर्वत्र भेज दी है। उचित यह था कि जैसा सब लोग चाहते थे वैसा हिसाब उसी में दर्ज कर उजले होते, सो तो कुछ एक न किया किन्तु आंय बांय शांय बहुत कुछ लिख मारा है, क्या कहूँ मुझको उनकी यह लीला देख कुछ कहते ही नहीं बनती। स्पष्ट जान पड़ता है कि सभ्य जनों का हिसाब का मांगना उनको केवल विषवर्द्धनम् हो गया है। उन्होंने इस प्रकार श्री जी महाराज और लाला रामशरणदास जी आदि कितनों ही आर्य्यों को लिख सुनाई हैं कि जिसका लिखना इस लेखनी की शक्ति से बाहर है।

श्री जी महाराज तो वह सब सुन खबर भी नहीं हुए और न उनमें से कोई बोला, जिन पर उन्होंने यथेच्छ पुष्प बर्साये हैं परन्तु तिहायतों ने

अच्छे प्रकार मुन्शी जी का मन भर दिया है, उनमें के दो लेख आगे उपस्थित कर दिए हैं। कृपा करके उनको भी अवलोकन कर लीजिए। साथ ही उसके चतुर्थ मयूख की समाप्ति है।

नीचे लिखा मुन्शी इन्द्रमणि जी की पुस्तक का नाम

मुन्शी इन्द्रमणि का इलतिमास। स्वामी दयानन्द सरस्वती का संन्यास भी अल्लिफे पण्डित जगन्नाथदास छपाव: राहत माम मुन्शी नारायणदास।

पुस्तकोत्तर सदसद् प्रदर्शकानुप्रास पच्चीसी

आर्यो देखो श्री जगदीश विलास। जिसकी जड़ है केवल भूख ओ प्यास ॥१॥ धन्याति धन्य है श्री स्वामी जी का संन्यास। जिस पर है सब सभ्यों को पूरा विश्वास ॥२॥ जिनके कृत्यों का सर्वत्र हो रहा है भास्करवत् पूर्ण प्रकाश। शोक कि इस परमाभ्युदय में खल कौशिक पाते हैं अति त्रास ॥३॥ अतएव देखा गया अभी एक नूतन इन्द्रमणि इलतिमास। जिस पर हो रहा है जगत् में सर्वत्र अतीव उपहास ॥४॥ देखा था न देखोगे कभी ऐसा है यह विलक्षण इलतिमास। पहना है जिसने नख से सिख तक खुबही लोभ-लिवास ॥५॥ मानो मुद्दत से कर रहे थे मुंशी साहब सह कुटुम्ब उपवास। अतएव जगदुकारक चन्दे को ठानते हैं खुद भोगस ॥६॥ वंचको चाहो जितना विस्तारो तुम वाग् विलास। परन्तु नहीं हो सके कभी बुरे, स्वामी जी वा रामशरणदास ॥७॥ मित्रो धन्य थे इस अवनि पर, लाला रामशरणदास। जिनकी अकाल मृत्यु सुन कौन नेक नर न हुआ होगा असीम उदास ॥ ८ ॥ दोयम् बहु धन्यवादार्ह हैं माथुर वंशावतंसी जयकृष्णदास। जिनकी इमदाद पाकर जग में प्रकटा, प्रथम सत्यार्थप्रकाश ॥ ९ ॥ इन महाशयों ने आरम्भ ही में कह दिया था, कुटिलों की कुटिलता का ठीक इतिहास। परन्तु श्री जी का सिद्धान्त, कि कभी किसी के किए नहीं हो सकता दागी अकाश ॥ १० ॥ प्यारे आर्यो जो करेगा फारित भाषा में पूर्ण अभ्यास। उसको अवश्य ही होगा बीच सत्य, मिथ्या का आभास ॥ ११ ॥ प्रत्यक्ष ठग डाकू अरु नास्तिकों का किया है जिसने पास। फिर कौन कहेगा कि उसकी बुद्धि को हो नहीं गया है ह्रास ॥१२॥ जिनका है ऐसा चित्र विचित्र और अपवित्र इतिहास, कर्ते थे वे बहुत पसन्द, किसी कटुओं का आवास ॥१३॥ होय फल जिसका ऐसा जैसा कि नारायण वा जगन्नाथदास। तो क्योंकर न होगा उस पेड़ का इकदम सत्यानाश ॥ १४॥ धन्य है वह सत्पुत्र

नारायणदास। जिसने जीवत् पिता चढ़ा दिये अग्गास ॥ १५ ॥ धन्य कहूँ वा कुछ अन्य, तुझ से भाई जगन्नाथदास। जिस्ने कर दिखाया सरासर, गुरु बुद्धि-विनाश ॥ १६ ॥ सुशील वैश मानते हैं अपने तईं विप्र वर्णों का दास। कहाते हैं वह बुरे जीवन बैठते हैं पंडित खास ॥ १७ ॥ जिस चंदे की मालिक थी सभा अरु सभापति मेरठ निवासी रामशरणदास। उस पर किया चाहते थे मलकियत, गुरु चेला खासुल खास ॥ १८ ॥ जब न देखी हाथ आती किसी विध, वह पूरी दौलत की रास। तब कर सलाह तीनों ने धर धांगी वह खाक स्याह इलतिमास ॥ १९ ॥ न जाने किस नासमझी से, इस विधि नाहक किया प्रयास। थोड़े न बहुत यों ही रंगते-रंगते रगउ डाले सफा पचास ॥ २० ॥ ज्यों कभी कोई श्वानिनी नहीं पाती है यज्ञान्न की बूबास। उसी तरह व्यर्थ होती है सदा सब दुराचारियों की आस ॥ २१ ॥ बड़े साहसी और धर्म-धुरंधर देखिए मुन्शी दुर्गाचरण अरु क्षेमकरणदास जिन्होंने समाज मुरादाबाद से गुरु चेला यों निकाले ज्यों तोड़ फेकियत तिनुका घास ॥ २२ ॥ यारो यह सब श्रुतदृष्ट जगत है काल को ग्रास। उचित होय सो कर लो प्यारो, जौलौं घट में स्वांस ॥ २३ ॥ और बने तहां जौंव जोर पुकार-पुकार कर कहो धन्य दयासागर, तुम संन्यास। तथा हो सके वहां लों जल्द दौड़कर करो, उनके चरणों का सहवास ॥ २४ ॥ फिर सत्य जानो ठीक मानो उनके उपदेशों को जिन्हें वे सर्वत्र करते फिरते हैं यथावकाश बस भाई आर्यो इसे लिखन था सो सब लिख चुका, बन पड़े तो लो कृपा कर विनय नमस्ते ठाकुरदास ॥ २५ ॥

भाई आर्यो सुनो (काल स्तुति) सुनावे सदा सबको यह अनुप्रास पच्चीसी। जिससे होय बन्द सदा को, सब नव विरोधियों की बतीसी ॥ १ ॥ इति अनुप्रास पच्चीसी (समाप्ता)

इसी मूल लेख के अनुसार दूसरा विस्तारपूर्वक उत्तर मुन्शी जी के इलतिमासनामे पर बाबू चन्दनगोपाल जी ने स्थान गोंडा मुल्क अवध से दिया है। मानो वह इसकी व्याख्या है अतः उसकी भी नकल देश हितैषी पत्र से लेकर आगे लिख दी है।

इलतिमासनामे का दूसरा उत्तर

बाबू चन्दनगोपाल प्रदत्त

श्रीयुत देशहितैषी सम्पादकसमीपेषु—आर्य भाइयों पर विदित होगा कि एक पुस्तक पं० जगन्नाथदास ने प्रकाशित की है जिसका नाम मुन्शी

इन्द्रमणि का इलतमास स्वामी दयानन्द सरस्वती का संन्यास रखा है, इस पुस्तक से उक्त मुन्शी जी और पण्डित जी की बुद्धि की तीव्रता, सत्य व्यवहार धर्मचर्य्या और देशोन्नति में प्रयत्न का परिचय भली भाँति प्रतीत होता है अब कुछ उनके उदाहरण आगे लिखे जाते हैं।

(१) यह लो बहुत से देशवासियों और राज्याधिकारियों पर मेजिस्ट्रेट से लेकर श्रीयुत वैसराय भारत खण्ड तक विदित है कि आर्य-समाज की ओर से मुन्शी जी के मुकद्दमे में कितना प्रयत्न हुआ अर्थात् पारितोषिक चन्दा, एकत्र कर मुन्शी जी को हाईकोर्ट तक अपील करने के लिए सहायता देना, अनेक पत्र द्वारा मेजिस्ट्रेट के न्याय को अन्यथा सिद्ध कर उत्तम सम्मति से राज्याधिकारियों को सूचित करना, पृथक् प्रार्थना-पत्र श्रीयुत वैसराय भारतखण्ड की सेवा में भेजना। पौराणिक भाइयों पर दोषारोपण होने को अपने पर दोषारोपण समझना, आर्यसमाज के सिवाय किसका काम था। क्या मुन्शी जी विना आर्यसमाज की सहायता के केवल पौराणिक भाइयों को साथ ले अपना कार्य्य सिद्ध कर सकते थे? यदि कहा जाय कि हां तो इस हां के सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरण पौराणिक भाइयों की ऐक्यता के सामान्य विषयों में दिखाने होंगे। क्या मुन्शी जी उक्त सहायता पाने को युक्तिपूर्वक अस्वीकार कर सकते हैं। जब यह सिद्ध हुआ कि आर्यसमाजों से उक्त सहायता पहुँची। तो अब विचारना चाहिए कि समाज किस वृक्ष की शाखा है और किस मूल से उत्पन्न हुआ है क्या कोई बुद्धिमान् पुरुष शाखाओं के लाभ को मान मूल के लाभ से पृथक् हो सकता है। नहीं। किन्तु वह सब लाभ जो शाखाओं से मिलता है मूल से ही उत्पन्न हुआ मानता है। जो पुरुष अन्यथा माने तो क्या वह कृतघ्नता दोष से बच सकता है। परन्तु शोक है कि वर्तमान समय में विपरीत लक्षण देखने में आते हैं अर्थात् मुंशी जी ऐसे कठिन समय में आर्यसमाज की सहायता से ही यवनारोपित दोष से उद्धार हो अब समाज रूपी शाखाओं के गुणों को भूल उलटा उन शाखाओं के मूल सहायता के कारण श्रीयुत स्वामी जी महाराज को दुःखित किया चाहते हैं। क्यों नहीं सहायता देने का यही फल है। मुन्शी जी भी क्या करें बेचारे लोभ के जाल में ग्रसित होने से परवेश हो समाज रूपी शाखाओं पर आकाश वेल डाल, उसको शोषित कर उसकी जगह फूट की लता को स्थापित करना उन्होंने चाहा परन्तु यह न समझा कि मूल उस वृक्ष की कैसी दृढ़ है कि एक क्या सहस्रों आकाश बेल से भी शोषित नहीं हो सकती। प्रमाण इसका जगद्विख्यात है कि वर्तमान से अधिक

कितने धावे दुराचारियों ने किये परन्तु (सत्यमेव जयति नानृतम्) कोई भी उनका बाल बांका न कर सका अब समाज को रोहित होता और अपने पास ऐक्यता को प्रत्यक्ष करता देख उसके मूल रूपी दिवाकर से अपने नैमित्तिक प्रकाश को तुच्छ हुआ जान उस दिवाकर की हानि में तत्पर हुए जो सर्वथा असंभव है और इस निर्मूल आशा के सिद्ध करने के अर्थ पंडित जगन्नाथ दास ने ऐसा बीड़ा उठाया जैसे रावण के सेनापति आदि ने श्री रामचन्द्रजी के नाश करने को उठाया था। बाहरी बुद्धि की तीव्रता और सत्याचार ऐसे-ऐसे कर्म करते हुए अपने आपको देशोन्नति होती, तो इस समय तक जितने वर्ष मुन्शी जी को मुसलमानों के साथ लड़ते हुए, तो क्या कुछ देशोन्नति प्रत्यक्ष न होती। देखिए श्रीयुत स्वामी जी महाराज ने इतने अल्प समय में कितनी उन्नति की। यदि कोई आर्य्यावर्तस्थ इस गुण को न माने तो वह कृतघ्नता दोष से क्या अपने को बचा सकता है ?

(२) मुन्शी जी के कुपित होने का कारण यह हुआ कि आर्यसमाज मेरठ ने मुन्शी को उनकी तृष्णा पूर्णार्थ सब रुपया न दिया किन्तु केवल ६०० रु० दिये और मुन्शी जी से हिसाब मांगा। मुन्शी जी को उनके लेखानुसार नहीं किन्तु ९६३ रुपये पौने पन्द्रह आने दियेगये कि जिसकी रसीदें तक आर्यसमाज मेरठ के लेखानुसार उपस्थित हैं परन्तु यह मुन्शी जी को ही सुशोभित है कि केवल ६०० रुपये स्वीकार करें तो आश्चर्य ही क्या है जिसने इतने महान् परोपकार को त्याग किया उसको ९६३ रु० पौने पन्द्रह आने को अस्वीकार करना कौन बड़ी बात है। इसमें मुन्शी जी कहते हैं कि ऐसे भारी काम में क्या केवल ६०० रु० ही व्यय हुआ। इसका उत्तर यह है कि क्या मेरठ समाज यह न जानती थी कि बहुत सी समाजों और अन्यान्य समाज पुरुषों से सीधा मुन्शी जी के पास पारितोषिक पहुँचा है और यदि पहुँचा तो मुन्शी जी का उक्त प्रश्न सर्वथा निर्मूल हुआ।

और यदि मुन्शी जी अपने व्यवहार में सच्चे थे तो मेरठ समाज को आय और व्यय का हिसाब देकर रुपया क्यों न मांगा ? परन्तु मांगें क्यों वह तो सम्पूर्ण आर्यों के धन को अपने पुरुषों का धन समझे हुए हैं। भला अब तो किसी से एक छदाम मांग लें। मुन्शी जी का प्रथम तो यह कहना है कि ऐसे-ऐसे मुकद्दमों में अनेक प्रकार के व्यय होते हैं जिनका पत्रादिक में प्रकाशित होना उचित नहीं। इसका उत्तर यह है कि क्या मेरठ समाज ने प्रथम ही से प्रकाशित करना चाहा था। द्वितीय मुन्शी जी यह कहते हैं

कि पारितोषिक हमारे लिए एकत्र हुआ था हम क्यों हिसाब दें। स्वामी जी अथवा मेरठ समाज को पारितोषिक धन पर इसके अतिरिक्त कि उक्त धन को हमें अर्पण करते और क्या अधिकार था ? क्योंकि समाज इस विषय में केवल साधन मात्र थी, इसका उत्तर यह है कि विशेष करके आर्यसमाजों और आर्य-पुरुषों से ही मेरठ समाज में पारितोषिक एकत्र हुआ था और उन समाजों वा पुरुषों का अभिप्राय यह था कि पारितोषिक केवल मुकद्दमे में व्यय होगा कि मुन्शी जी के निज सम्बन्धी कार्यों में। अब यह क्योंकर सिद्ध हो सकता है कि सम्पूर्ण पारितोषिक (चंदा) जो मुन्शी जी के पास पहुँचा, उससे अधिक व्यय हुआ, यावत् मुन्शी जी हिसाब न दें। क्योंकि उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक ब्राह्मण एक कुमारी कन्या को साथ ले देश-विदेश जाकर विवाह के नाम से अनेक राजा व सज्जन पुरुषों से धन इतना एकत्र कर लेता है कि एक क्या यदि दश कन्याओं के विवाह किया चाहे तो कर ले परन्तु तृष्णा के कारण अन्त को यही कहता है कि कलियुग है कोई देता भी है लड़की के हाथ पीले करने हैं, सो दो-चार धर्मात्माओं के उद्योग से इतना ही हो गया, नहीं तो वर्तमान काल में किसी को इतनी भी आशा नहीं थी। ठीक यही उदाहरण हमारे मुन्शी जी पर घटता है और यह जो कहा कि समाज को तथा स्वामी जी महाराज को इस धन में क्या अधिकार था, उसका उत्तर यह है कि शाखा मूलवत् श्रीयुत स्वामी जी महाराज सब समाजों के अधिपति हैं और आर्यपुरुष भी जो समाज से पृथक् हैं स्वामी जी को ऐसा ही मानते हैं फिर जो धन समाजों तथा आर्य पुरुषों से एकत्र हुआ वह स्वामी जी वा किसी एक विशेष समाज के अधिकार में क्यों न हो ? क्योंकि इस धन के श्री स्वामी जी वा विशेष समाज की सम्मति से व्यय होने में पारितोषिक दाता और सामाजिक पुरुष सब संतुष्ट हैं। यदि इसके प्रमाण की आवश्यकता हो तो उन समाजों वा पुरुषों से जिन्होंने कि पारितोषिक उक्त महाशयों की सेवा में भेजा है पत्र द्वारा पूछ लिया जावे और जो मुन्शी जी ने यह कहा कि यदि उन समाजों वा पुरुषों का अभिप्राय यह होता तो हमको यह क्यों लिखते कि इतना रुपया हमने तुम्हारे मुकद्दमे की सहायता में मेरठ समाज को भेजा है सो आपके पास पहुँचेगा। सो उक्त समाजें वा पुरुष ऐसा लिखने में सत्य है क्योंकि उनको क्या मालूम है कि कितना रुपया मुन्शी जी के पास एकत्र हो चुका है। आवश्यकता से अधिक वा न्यून, इस अवस्था में मेरठ समाज ने मुन्शी जी को जो एकत्र हुए पारितोषिक का प्रमाण न बतलाया

सो अनुचित नहीं किया क्योंकि मुन्शी जी ने तो इसको अपने घर का रुपया समझ लिया, यदि ऐसा न समझे होते तो इतना कुपित न होते। और जब कि मुन्शी जी उस रुपये के लोभ में इतना ग्रस्त हैं, तो उसका प्रमाण जान उनका हृदय और भी कुपित और शोकातुर होकर वे और कुछ अधिक फल न दिखायें। ऐसा विचार कर उन्होंने जो एकत्र धन की संख्या को न बतलाया तो भी उत्तम ही किया। क्योंकि बहुत से धनवान् वैश्यों का समाचार श्रवण गोचर हुआ है कि धन के लेन-देन में प्राणों के लेने-देने पड़ जाते हैं। और नहीं तो ज्वरातिसार नगर की सैर तो अवश्य ही करनी पड़ती है। उससे उक्त पारितोषिक पर समाज का अधिकार होने से मुन्शी जी क्यों कुपित होते हैं। यदि पारितोषिक दाता कुपित हों तो उचित है क्योंकि धन उनका है। सो वह तो यह समझ कर कि जिस प्रकार समाज व्यय करे उचित है संतुष्ट रहें परन्तु मुन्शी जी के लोभ ने उनको संतोष न दिया। इससे सिद्ध हुआ कि मेरठ समाज उस रुपये को उचित रीति से व्यय करने वा पारितोषिक दाताओं को रुपया फेर देने से कदापि दूषित नहीं हो सकती। किन्तु मुन्शी जी यावत् पारितोषिक के आय और व्यय का लेखा न दें तावत् इस कलंक से उद्धार नहीं पा सकते।

(३) मुन्शी जी ने उक्त पुस्तक में जगन्नाथदास द्वारा अपना अभिप्राय विदित किया है कि वर्तमान विषय के निश्चय होने पर हम एक मासिक पुस्तक निकाला करेंगे जिसमें स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत वेद की श्रुतियों का विरुद्धार्थ खण्डन किया जायगा और ईश्वर को धन्यवाद देते हैं कि यह सुअवसर स्वामी जी कृत वेदभाष्य के खण्डन करने को मिला। यद्यपि यह एक ऐसा जगद्विख्यात असम्भव अभिमान है कि जिस पर व्याख्या या खण्डन करने की कुछ आवश्यकता नहीं, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष इस लेख को ही देख तत्काल मुन्शी जी वा पण्डित जी की विद्या का अनुमान कर उनके अभिमान की सत्यता वा मिथ्यात्व अवश्य जान लेंगे। परन्तु केवल इस कारण [कि इस व्याख्या में उक्त महाशयों का गुणानुवाद है उनके इस अभिमानयुक्त लेख का भी उत्तर देना उचित समझा। आश्चर्य की वार्ता है कि स्वामी जी अनुमान दस वर्ष से वेदार्थ पर शास्त्रार्थ कर रहे हैं और ६ वर्ष से वेद-भाष्य भी प्रकाशित होता है। उस समय से अद्य पर्यन्त अनेक पुरुष वेदभाष्य के खण्डन में तत्पर हुए और सत्य रूपी सूर्य से छिन्न-भिन्न हो गये परन्तु मुन्शी जी का हृदय उन बेचारों की सहायता में दयालु न हुआ और न मुन्शी जी ने आपके वेद-भाष्य के खण्डन का

बीड़ा उठाया। इसमें चार कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम किञ्चिदपि इस समय तक स्वामी जी पर कृपा दृष्टि होने से देश-हानि में तत्पर रहे। अब स्वामी जी पर कुपित होने से देशोन्नति की सुधि आई। एतदर्थ वेद-भाष्य का खण्डन देशवासियों पर सूचित करना चाहा। अच्छा जब सुषुप्ति अवस्था से विगत हुए तभी सही, प्रातःकाल का भूला यदि सायंकाल तक घर आ जावे तो भूला नहीं कहाता। द्वितीय, यावत् स्वामी जी के साथ भक्ति-भाव था तावत् मुन्शी जी को इतनी विद्या न थी। अब शत्रु भाव होते ही मुन्शी जी का हृदय वेद-शास्त्र से परिपूर्ण होकर उनके सत्यार्थ-प्रकाश खण्डन पर तत्पर हुआ। अत्यन्त आश्चर्य है कि क्रोधातुर होने से तम छा जाता है। परन्तु मुन्शी जी की जैसी और सब वार्ताएँ विपरीत प्रतीत होती हैं वैसी एक यह भी है। अर्थात् अन्धकार के स्थान में ज्ञानोदय का प्रकाश हुआ। ऐसी बुद्धि की प्रशंसा कहाँ तक की जावे। पाठक गणो! प्रशंसा क्या यदि ब्रह्मा भी ऐसी बुद्धि की तीव्रता का वर्णन किया चाहें तो असम्भव ही प्रतीत होता है।

तृतीय, इस समय तक मुन्शी जी को कोई सहायकारी न मिला था। अब पं० जगन्नाथदास बाल्यावस्था से उद्धार हो युवावस्था में प्रवेश कर मुन्शी जी के सहायकारी हुए। खैर बुढ़ापे में चाहिए भी थे। हिन्दी कहावत प्रसिद्ध है कि जरठ आयु होने से मनुष्य का ज्ञान नष्ट हो जाता है। मुन्शी जी को इतनी विद्या न थी परन्तु चाहते थे कि किसी रीति से वेद-भाष्य खण्डन हो। सो अब जब पं० जी की विद्या ने प्रकाश किया तो मुन्शी जी के हृदय ने एक अनुपम शास्त्र पाकर वेद-भाष्य के खण्डन में तत्पर होना स्वीकार किया।

चतुर्थ, यदि मुन्शी जी को सम्पूर्ण रुपया दे दिया जाता तो यह सुअवसर मुन्शी जी को न मिलता क्योंकि इसके पूर्व कभी ऐसा प्रण किया ही न था। ऐसा करना कैसा वरन आर्यसमाज मुरादाबाद के सभापति के पद को ग्रहण किया और इस पदवी को ग्रहण करने से जो उपयोग मुन्शी जी ने विचारा था, उससे अधिकतर प्राप्त किया। परन्तु काम, क्रोध, मोह, लोभादि जो महान् भयंकर शत्रु हैं इनमें से एक ने इनको आ पकड़ा और वह इनकी प्रतिष्ठा को ले डूबा। करें क्या बेचारे निर्बल होने के कारण इसका निवारण न कर सके। देखिए तो ऐसे महापुरुषार्थी पुरुष भला काहे को बारम्बार जन्म धारण करते हैं। मुन्शी जी ने अब वेद-भाष्य का खण्डन करना स्वीकार किया है। वाह रे आर्यो, धन्य है आपको जो आपने ५५२ रुपये न देकर

ही मुन्शी जी को उद्यत किया कि सर्व साधारण मनुष्यों के लिए ऐसा महान् परोपकारी कार्य करें (अर्थात् वेद-भाष्य का खण्डन) धन्य है शतशः धन्य है।

(४) उक्त पुस्तक में लिखा है कि स्वामी जी को प्रथम प्रकृति और जीव का नित्यत्व विदित न था किन्तु ईश्वर से उत्पन्न मानते थे। तदनन्तर जब मुन्शी जी से वार्तालाप हुआ तब मुन्शी जी ने उक्त पदार्थों का नित्यत्व बताया। क्यों न हो, स्वामी जी ने सम्पूर्ण वैदिक मत के सिद्धान्त और ऋषि मुनिकृत ग्रन्थों के इतिहासादि भी तो पं० जगन्नाथदास कृत पोपलीला से ही (जो सत्यार्थप्रकाश, भूमिका आदि से कितने ही वर्ष पीछे रची गई है) सीखे हैं। जब अभिमान और लोभ द्रोह बुद्धि का आवरण कर लेते हैं तब यही प्रतीत होता है कि सूर्य ने दीपक से प्रकाश पाया है। यदि मुन्शी जी कुछ भी वेद जानते होते तो मुसलमानों के साथ युद्ध में इतना समय न लगता, किन्तु क्षण भर में विजय हो जाता। क्योंकि वैदिक मत के सामने किरानी, कुरानी, पुरानी और जैनी एक मुहूर्त्त मात्र भी नहीं ठहर सके।

(५) उक्त पुस्तक में मुन्शी जी ने कर्नल आल्काट साहब और मुन्शी बख्तावरसिंह का उदाहरण दिया है। अर्थात् स्वामी जी ने उक्त महाशयों के साथ जैसा व्यवहार किया उससे स्वामी जी की सत्यता भले प्रकार विदित होती है। क्यों नहीं समान गुण वाले पुरुष ही तो, मित्र भाव वर्तते हैं। कहावत भी है कि (कुनद हम जिन्स वा हम जिन्स परबाज) कबूतर वा कबूतरबाज वा बाज चोर के साथी गठकटे। कर्नल और सिंह जी के गुणों का इस सम्बन्ध में वर्णन करना कुछ आवश्यक नहीं है। क्योंकि जगद्विख्यात हैं। क्या बुद्धिमान् पुरुषों के सामने उक्त महाशय विश्वासघात के दोष से बचे हुए हैं। और इसलिए उनके साथी उनकी प्रशंसा करने वाले अपने आपको उनके समान समझने वाले भी उक्त दोष से उद्धार कैसे पा सकते हैं?

उक्त महापुरुषों को गुणानुवाद एक पृथक् विषय है। इसलिए इस सम्बन्ध में विशेष कुछ न लिखा जाएगा।

अब यह समझ के कि बुद्धिमान् पुरुष इस थोड़ी व्याख्या से ही मुन्शी जी और पण्डितजी के गुणों का अनुमान कर उनके वाक्यों की सभ्यता वा मिथ्यात्व अवस्था निश्चय कर लेंगे, इस विषय को समाप्त करता हूँ।

गोण्डा ह० चन्दनगोपाल (पूर्व मन्त्री)

ता० २ जून, १८८३ ई० आर्यसमाज लखनऊ

परिणाम

महाशय नमस्ते ! विदित हो कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और आर्यसमाज के नियमों से विरुद्ध आचरण करने के कारण मुन्शी इन्द्रमणि जी प्रधान और लाला जगन्नाथदास जी पुस्तकाध्यक्ष अपने अपने पद और सभासदी इस आर्यसमाज से २९ मई, १८८३ ई० को अलग किए गए और मुन्शी दुर्गाचरण जी प्रधान नियत हुए। आगे की खत वगैरा मुन्शी क्षेमकरणदास मन्त्री के नाम ठिकाना, मकान साहू श्यामसुन्दरजी रईस मण्डी बांस, मुरादाबाद भेजे जावें। ता० ३० मई, १८८३ ई० ह० क्षेमकरणदास, मन्त्री आर्यसमाज मुरादाबाद।

हा ! इस विज्ञापन को देख किसको शोक न हुआ होगा और ग्रन्थकार के तो शोक की तो सीमा ही नहीं, क्योंकि इनको अपने द्वितीय खण्ड के बीच प्रशंस्यों में आसन दे चुका था। उसी की क्या यह दशा हो परन्तु (यथा कृतिस्तथा फलम्) इस परमेश्वर व्यवस्था के सम्मुख सबका परतन्त्र है। अस्तु अलमतिविस्तरेण।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्रीमान् स्वामी दयानन्द-सरस्वती दिग्विजयार्कीयतृतीयखण्डे कृतघ्नोत्पादितमिथ्यापवादसंमार्जनं नाम चतुर्थो मयूखः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो मयूखः

श्रीमान् का उदयपुर की ओर प्रस्थान

बंधुगण, इस प्रकार ऊपर लिखे मुख्य कार्यों से निश्चिन्त होकर श्रीमान् करुणानिधान स्वामी जी महाराज बम्बई के निकटवर्ती कतिपय नगरों में तत्रस्थ भक्तजनों की इच्छा और उत्साह के अनुसार सदुपदेशार्थ थोड़े दिनों को हो आये थे। इससे वहाँ के लोग बहुत कृतमन्य हुए।[1] पश्चात् इसके श्रीमान् श्रावण मास में बम्बई नगर से प्रस्थान करके स्थान खँडवा में पधारे। तहाँ कुछ दिन ठहरकर तत्रस्थों को अपने अनेक सदुपदेशों से

१. इस समय यह बम्बई प्रान्त श्री जी महाराज के सुयश से खूब ही आच्छादित हो गया था। यावत् सत्पुरुषों के मुंह और प्रसिद्ध समाचार पत्रों में श्री जी के लिए धन्यवाद लिखा सुनाई पड़ता था। कितने ही नवीन ग्रन्थ गुजराती और महाराष्ट्री भाषा में श्रीमान् के सद्गुण-प्रपूरित बन गए हैं। उनका कुछ वृत्तान्त आगे किसी प्रसंगान्तर में देखने को मिलेगा।

सन्तुष्ट कर राजधानी उदयपुर की ओर बढ़े। बीच में कुछ दिन जावरा नगर में निवास रहा। इस यात्रा में श्रीयुत आत्मानन्द जी का समागम हो गया था। उनके सह वर्तमान श्रीमान् कूच-मुकाम करते हुए अधिक श्रावण-कृष्ण १३, सं० १९३९ विक्रमी, तदनुसार ११ अगस्त, सन् ८२ ई० दिन गुरुवार को उक्त राजधानी में दाखिल होकर नौलखा बाग के राजमहल में, जहाँ कि प्रथम से ही प्रबन्ध हो चुका था, पधारे। देर नहीं लगी कि समस्त शहर में इस शुभागमन की वार्ता फैल गई। कितने ही सज्जन सरदार और राजपुरुषों को बड़ा ही हर्ष हुआ। वे उसी दिन से श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होने लगे। प्रजागण की भीड़ का भी कुछ ठीक नहीं था। परन्तु पोपवृन्द में खलबली पड़ गई।

थोड़े ही दिन पीछे चिर प्रतापी मेदपाट-देशाधीश श्री १०८ महाराणा जी महोदय सद्गुरु महाराज के दर्शनार्थ सोपायन पधारे और परस्पर परम प्रीतिपूर्वक वार्तालाप होकर बड़ा ही आमोद रहा।

इस प्रकार कतिपय समागम और श्री जी महाराज के परमोपकारक सदुपदेशों तथा व्याख्यानों को श्रवण कर श्री दरबार ने अपने बहुत से सभ्य सरदारों सहित श्री जी महाराज के समीप पढ़ना आरम्भ कर दिया। प्रत्यह सायंकाल को उनके स्थान पर उपस्थित होते थे। वस्तुतः काल दो घण्टे का नियत था, परन्तु किसी-किसी दिन उससे भी अधिक समय हो जाता था; यहाँ तक की तीन चार और पांच घण्टे तक अध्ययन करते हो जायँ, पर श्री महाराज न अघायें। अतएव सात मास से न्यून ही काल में श्री दरबार ने इतना समीचीन तथा हृद्गत कर लिया जितना कि इतर कोई साधारण दो-तीन वर्ष में भी न पढ़ पाता। पाठक, पढ़ना और पढ़ाना इसका नाम है। व्यवस्था इसकी श्री जी महाराज के लेखों और समाचार-पत्रों की पेल से भली-भाँति प्रकाशित हो चुकी है कि श्री जी अधीश ने उस सुअवसर में षड् दर्शनों का सार और कुछ 'विदुर प्रजागर' और मनुस्मृत्यन्तर्गत राजनीति-सम्बन्धी सातवें, आठवें और नौवें अध्यायों में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली थी। बीच में श्रीदरबार की प्रकृति अस्वस्थ भी हो गई थी, तो भी इन्होंने आलस्य इस काम में नहीं किया। उस दशा में श्रीमान् सद्गुरु महाराज स्वयं राजयानाधिरूढ़ होकर राज-भवन में ठीक नियत समय पर पधारते रहे; परन्तु इन्होंके इस परिश्रम का श्रीदरबार के चित्त में बड़ा ही संकोच होता था और वे आरम्भ से अन्त तक अपने परम गुरु की अत्यन्त मर्यादा (अदब) भी करते रहे और अपने चित्त में उनका बहुत भय भी रखते थे। नृत्यादि का देखना

साफ छोड़ दिया था। इसके व्यतिरिक्त श्री जी अधीश के राजमहल में श्री स्वामी जी महाराज के आज्ञानुकूल एक होम-कुण्ड बन गया था, जिसमें प्रत्यह वैदिक विधि से हवन होता था। और एक महान् यज्ञ बाहर किसी उद्यान में भी कराया था। तत्रैव उन्हीं दिनों एक विद्यालय राजधानी में स्थापित कर दिया था। उसमें व्याकरणादि संस्कृत के सद्ग्रन्थ पढ़ाए जाते थे। श्री दरबार में व्याख्यान भी बड़ी धूम-धाम के साथ हुए, जिनमें श्रीजी महाराज बराबर पुराणी, जैनी, कुरानी और किरानी आदि लोगों के मतों का यथेच्छ खण्डन करते रहे और प्रसिद्ध कर दिया था कि जिनको मत्कथन में कुछ भी शंका हो, वे समक्ष आकर शास्त्रार्थ कर लें। परन्तु वह कौन था जो उस तेज-पुञ्ज के सम्मुख होता ? हाँ, एक यवनाचार्य ने कुछ चित्त चलाया था, सो अच्छी प्रकार समझ घर आये।

यहाँ पर श्रीमान् ने तीन पुरुषों-अर्थात् जिनका नाम अब आत्मानन्द जी सहजानन्द जी प्रसिद्ध है, उनको संन्यास देकर आज्ञा दी कि अपनी विद्या पूर्ण करते हुए सदाचरणों के साथ जगत् का अच्छे प्रकार से उपकार करो। इस प्रकार हमारे श्रीमान् प्रतापभानु उस परम पुण्यशालिनी नगरी में सात मास तक प्रकाशमान रह कर वहाँ से नगरान्तर की यात्रा करने को जब समुद्यत हुए, तब उन्होंने कुछ दिन प्रथम से वहाँ एक अपना उत्तराधिकार-दर्शन-पत्र तैयार किया और उसके परिपालनार्थ एक परोपकारिणी नाम से सभा नियत कर उसका आधिपत्य परम प्रशंस्य, सकल-गुण-रत्नाकर धीर-वीर, चिर प्रतापी श्री महाराणा जी को दिया तथैव उनकी अधीनता में एक वैदिक निधि का भी स्थापन किया। इस कृत्य का विस्तार और चमत्कार आगे लिखी महद्राज-सभा की सुव्यवस्था से भली-भाँति प्रकाशित है। इस प्रशंसित महद्राज-सभा होने की तिथि का निश्चय कितने ही दिन पूर्व से स्वयं श्रीदरबार ने कर दिया था। तदनुसार समस्त सरदार और सभासद्गण उस दरबार में नियत समय पर बड़े आनन्द और उत्सव के साथ उपस्थित हुए। उनके सम्मुख प्रशंसित पत्र पढ़ा गया और दोनों ओर से स्वीकृत हुआ। पश्चात् उसके श्रीमान् यावदार्य-कुल-दिवाकर ने श्री स्वामी जी महाराज के अलौकिक गुणग्राम की बहुत प्रशंसा की और उनका पूर्ण-अनुग्रह अपने पर मान उनको द्वादश शतकलदार रौप्य मुद्रा और महार्ह वस्त्र-सहित एक सम्मान-पत्र समर्पण कर अति आदर-पुरस्कार सहित स्थान पर पहुँचाया। इस व्यतिरिक्त एक शत मुद्रा और एक दुशाला स्वामीजी के छात्र रामानन्द को और पञ्च शत मुद्रा फीरोजपुर के अनाथ आश्रमस्थ लड़कों को और द्वि शत मुद्रा लड़कियों को उसी समय दिया, सो पृथक्।

स्वीकार-पत्र

कहिए पाठकजन ! कितना सर्वोत्तम और सर्वोपकारक यह कृत्य श्री जी महाराज ने किया और अपनी मृत्यु से आठ मास, दस दिवस प्रथम से मृत्यु दिवस तक का कृत्य अच्छी-चंगी हालत में करने को लिख प्रसिद्ध कर देना, उनकी कितनी दूरदर्शिता थी। इसको सब लोग सदैव सूक्ष्म दृष्टि से विचारते रहें।

सन्मानपत्र की प्रति।

श्रीमदेकलिङ्गेश्वरो जयति।

स्वस्ति श्री सर्वोपकारार्थकारुणिकपरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्री श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीयतिवर्येषु इतः महाराणासज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु उदन्तस्तु। आपका अठै सात मास का निवास सूँ चित्त अत्यन्त आनन्द में रहयौ। क्योंकि आपकी शिक्षा बहुत प्रकार श्रेष्ठ और उन्नति-दायक है और आपका संयोग सूं के ही न्यायधर्मादि शारीरिक कार्यों में निस्सन्देह लाभ प्राप्त होवा, की म्हां का सभ्य जना सहित दृढ़ाशा हुई। कारण कि शिक्षा और उपदेश वां श्रेष्ठ पुरुषां का हद होवे है, ज्यो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै। सो भी आप में यथार्थ मिल्यौ। अब कहें, आपका वियोग को संयोग तो नहीं चावां हाँ, परन्तु आपको शरीर अनेक मनुष्याँ के उपकारक है जी सूं अवरोध करणो अनुचित है। तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हाँका चित्त ने शीघ्र अनुमोदित करोगा। इत्यलम्।

संवत् १९३९ फाल्गुण कृष्ण ५ भौमे।

हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य।

आर्यगण, इस प्रकार महाराजाधिराज श्रीमान् अन्वर्थाभिधान याव-दार्य-कुल-दिवाकर महाराणा जी ने अपने परम गुरु श्री स्वामीजी महाराज को महद्राज सभा के बीच यह सम्मान-पत्र और उपायनादि बहु सत्कार विनय और प्रणाम के सहित समर्पण करि महत्कृच्छ्र से विदा किया। उस समय जितने विद्वान्, सभासद, शूर-सामन्त, अमीर सरदार, प्रधान, मुन्शी-मौलवी और जितने प्रतिष्ठित पुरुष उस दरबार में विद्यमान थे उन सबों ने बहु धन्यवाद-पुरस्कार श्रीजी महाराज को प्रणाम करके पुनरागमनार्थ प्रार्थना की। उन सबका श्रीजी महाराज ने सम्मान के साथ समाधान किया और उपायनस्थ मुद्रा वैदिक निधि में स्थापित करके निज निवास-स्थान पर आए।

ता० २८ फरवरी बुधवार सन् ८३ ई० के दिन श्री दरबार से स्वामीजी के लिए सर्व-सौकर्य अर्थात् यान और भृत्यादि का प्रबन्ध हुआ और बहुत से प्रशंसित सत्पुरुष श्रीजी महाराज से मिलने को नौलखा बाग में आये। पश्चात् इसके यात्रा की तैयारी होती रही। ता० १ मार्च, गुरुवार के दिन, जगद्गुरु महाराज उदयपुर को छोड़ शाहपुरा की ओर सम्प्रस्थित हुए।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीयतृतीयखण्डे श्रीमदुदयपुराधीश-समागम-संभूतानन्दवारिदाभिवर्षणन्नाम पञ्चमो मयूखः ॥

अथ षष्ठो मयूखः

श्री जी महाराज का शाहपुरा को प्रस्थान

भ्रातृगण, जिन दिनों श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज राजधानी उदयपुर में विराजमान थे, उन्हीं दिनों की बात है कि महाराजा शाहपुराधीश जी उनका बराबर निमन्त्रण अपनी राजधानी में आगमनार्थ करते रहे। उत्तर में श्रीमान् सत्य-प्रतिज्ञ स्वामी जी महाराज ने लिख दिया था कि यहाँ से निश्चिन्त हुए पीछे आपका समागम करेंगे। परन्तु बीच में, जब कि महाराजा जोधपुराधीश भी ऐसी ही लालसा जताने लग गए तब तो श्रीमान् शाहपुराधीश जी कुछ शंकित और विकल से रहने लग गए कि देखिए, अब क्या होता है। इन दिनों जिस समय इनके समीप यह शुभ पत्र पहुँचा कि श्री जी महाराज अमुक तिथि को उदयपुर छोड़कर आपकी तरफ आने के लिए चित्तौड़ में तीसरे दिन पहुँचेंगे और वहाँ से आपकी राजधानी में अमुक तिथि और समय पर पहुँचना चाहते हैं, इसलिए आप स्थान चित्तौड़ पर उनके आगमनार्थ यानादि का अच्छी प्रकार प्रबन्ध कर दीजिएगा जिससे वे सुखपूर्वक नियत समय पर राजधानी में पहुँच जायें, तो फूले-अंग नहीं समाते थे। तुरन्त आज्ञानुकूल सब सिद्ध रहेगा, ऐसा उत्तर लिख, यथोचित सब प्रबन्ध के साथ राजपुरुषों को चित्तौड़ भेज दिया और स्वयं उस दिन की प्रतीक्षा करते हुए श्रीजी महाराज के लिए स्थित स्थानादि की तैयारी कराते रहे।

इधर श्रीजी महाराज भी राजधानी उदयपुर से चल कर तीसरे दिन निम्बाहेड़ा स्टेशन पर पहुँचकर रेल द्वारा ता० ३ मार्च, १८८३ ई०, शनिवार को चित्तौड़ जा उतरे। वहाँ पर उदयपुर राज्य के लेख से स्थानादि का सब समीचीन प्रबन्ध तत्रस्थ अधिकारी ने प्रथम ही से सिद्ध कर रक्खा था।

यह स्थान और यहाँ का जल-वायु, पर्वत-स्थली और अरण्यादि बहुत ही रमणीय तथा सुहावना है। कुछ मार्गजन्य काम विचार भी था, इसीलिए श्री जी महाराज ने इस पूर्वोषित परम रमणीय स्थान पर त्रिरात्र निवास करने का प्रबन्ध कर रक्खा था; तदनुसार ही सब किया। उस अवसर में कुछ दिनों का काम जो कि करना अवशिष्ट रह गया, वह सब निपटाया, अर्थात् बहुत से तार-पत्रादि का उत्तर यहाँ से जहाँ-तहाँ को भिजवाया।

बन्धुगण! अभी तक श्रीजी रहाराज का शाहपुरा में पहुँचना शेष है, परन्तु सब ठौर से पत्रादि के उत्तर उक्त राजधानी में पहुँचने लग गए, कारण कि समाचार-पत्रों के द्वारा प्रथम से ही सर्वत्र उधर यात्रा होने की खबर फैल गई थी। और जब यह खबर लोगों को लगी कि श्रीजी महाराज को यात्रा के समय श्रीमान् धीरवीर, चिरप्रतापी उदयपुराधीश ने इस प्रकार महोत्साह के साथ दरबार किया और उसमें उनको बड़े चाव और सत्कार के साथ इस आशय का सम्मान-पत्रादि समर्पण कर विदा किया है, तो समस्त आर्य समाजों में इस विषयक बड़ा ही उत्सव माना गया। इतना ही नहीं, किन्तु उन सब लोगों ने अपने यहाँ से प्रशंसित मही-महेन्द्र की सेवा में धन्यवाद-पत्र भेजना भी आरम्भ कर दिया था, जिनको अवलोकन कर श्री महाराणाजी भी अतिप्रमुदित हुए और उसके उत्तर में प्रत्येक समाज को श्रीमान कृपा निकेतन ने अति आनन्द के साथ अपनी महद्राज-सभा से वैसे ही प्रेमपूरित कृपा-पत्र भी भिजवाये। ये दोनों पत्र देखने-दिखाने के योग्य हैं, अतः यहाँ प्रथम उनकी प्रति लिख, पश्चात् आगे चलेंगे।

आर्यसमाज समर्पित धन्यवाद-पत्र

श्रीमन्महाराजाधिराज मही-महेन्द्र यावदार्य-कुल-दिवाकर महाराणा श्री श्री १०८ श्री सज्जनसिंह वर्मा धीर वीर चिरप्रतापी जी० सी० एस० आई० भेदपाटाधीशचरणेषु। महामान्यवर महाशय,

श्रीमान्! इस आर्यसमाज का सविनय निवेदन यह है कि हमारे आर्यावर्त देश की यावत् भूत, भावी और वर्तमान आर्यसमाजों के सर्वस्वरूप परमपूजनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी महाराज का सर्वत्र उपदेश करते-करते इस वर्ष यावदार्य-कुल-दिवाकर के प्राचीन और अक्षत राज्य मेवाड़ में भी पधारना होकर सात मास के लगभग निवास हुआ और जब तक उक्त स्वामी जी महाराज का तत्र निवास हुआ, तब तक श्रीमान् ने अपनी परम प्रसिद्ध योग्यता के अनुसार स्वामी जी महाराज का आतिथ्य और आदर-सम्मान बहुत ही अच्छी

तरह रक्खा, जिसके सविस्तर समाचार हम लोगों के जानने में आकर यह उत्कण्ठा हुई कि हम सब लोग हमारे उस सनातन यावदार्य-कुल-दिवाकर को इस निवेदन पत्र द्वारा अन्तःकरण से धन्यवाद अर्पण करें जिनके शूरवीर पुरुष हमारे प्रजापति उस समय से लेकर इस समय तक निरन्तर रहे कि जिस समय की आर्य विद्या, धर्म और राजनीति का उपदेश और प्रतिपादन उक्त स्वामी जी महाराज वर्तमान काल में करते हैं। श्रीमन् राजन्! महाशय जैसे इस वर्ष स्वामी जी महाराज का अकस्मात् पधारना मेदपार देश में होने से आर्यावर्त की सनातन आर्य विद्या, धर्म और राजनीति के उपदेश श्रवण करने का अवसर श्रीमान् को अपने सभ्य सुभटगण-सहित प्रथम ही प्राप्त हुआ है, वैसे ही सब आर्यसमाजों को भी आज श्रीमान् को अपने सनातन यावदार्य-कुल-दिवाकर जानने और सविनय धन्यवाद देने का अवसर प्रथम ही हस्तगत हुआ है। निदान श्री जगदीश्वर से यही प्रार्थना है कि श्रीमानों को चिरस्थायी रक्खे।

श्रीमान्! आपने जो एक अपना निज हस्ताक्षरी पत्र स्वामी जी महाराज को अर्पण किया है, उसकी प्रति अवलोकन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैसी हम लोग श्रीमान् की योग्यता इतने दूरस्थ प्रदेशों में बैठे-बैठे सुनते थे, वह आज सर्वरीत्या निश्चित हुई, और उसमें भी विशेषता यह है कि जो कुछ श्रीमानों ने उक्त पत्र में लिखा है, वह छह-सात महीनों तक निरन्तर स्वामी जी महाराज की परीक्षा करके लिखा है और इसके अतिरिक्त यह भी आपको अनेक धन्यवाद देने योग्य विषय है कि श्रीमानों ने उक्त स्वामी जी महाराज-कृत स्वीकार पत्र और उसमें नियत की हुई व्यवस्थापक सभा के सभापति का पद अपने कतिपय सभ्य सुभटों सहित अंगीकार किया कि जिससे यह दृढ़ाशा हुई कि श्रीमान् हम सब आर्यों पर अब से वही सनातन पुत्रवत् कृपादृष्टि रक्खेंगे। अन्त में सब आर्यों की यही सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर से प्रार्थना है कि श्रीमानों को धनवान्, पुत्रवान्, पूर्ण आयुष्मान् और प्रतापयुक्त करे। मिति संवत् १९४० वि०

श्रीमदीय चरणसेवक समस्त आर्यसमाज के प्रधान सभासदों की ओर से

हस्ताक्षर—सभापति
हस्ताक्षर—उपसभापति
हस्ताक्षर—मन्त्री
हस्ताक्षर—कोषाध्यक्ष
हस्ताक्षर—पुस्तकाध्यक्ष

श्रीमान् उदयपुराधीश के आज्ञापत्र की प्रति
श्री रामजी

श्री एकलिंग जी   श्री सज्जनमहीशस्य ह्येकलिङ्गरतेरियम् ।
नम्बर १५९   स्वतन्त्रसदसो मुद्रा मुद्रिता हि दयानिधेः ।। १ ।।

सिद्धि श्री श्री आर्यसमाज अमुक योग्य लिखी राज्येस्थान उदयपुर से राजे श्री महद्राजसभा—अपरंच राज में जो एक आर्यसमाज अमुक का धन्यवाद पत्र लिखा मिति आश्विन कृष्णा ३, सं० १९४० का श्रीमन्महाराजाधिराज मही-महेन्द्र यावदार्य-कुल दिवाकर महाराणा जी श्री श्री १०८ श्री सज्जनसिंह जी वर्मा धीर-वीर-प्रतापी की सेवा में उक्त समाज की ओर से सविनय निवेदन करने को राज के पत्र लिखे मिति आश्विन, कृष्णा ३ सं० ४० के साथ भेजा। वह आज श्रीमान् यावदार्य-कुल-दिवाकर की सेवा में यथाविधि निवेदन होकर उसके प्रत्युत्तर में श्रीमदीय आज्ञानुसार लिखने में आता है कि उक्त धन्यवाद-पत्र को श्रीमानों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और उक्त समाज के सभासदों ने जो अपने शुद्ध अन्तःकरण से अपनी बृत्ति और विचार इस अक्षत राज्य के प्रति उक्त धन्यवाद-पत्र में प्रकाशित किये हैं, उनको ज्ञात करके भी श्रीमान् अति प्रसन्न हुए और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से आशा रखते हैं कि सर्व आर्यों के ऐसे ही श्रेष्ठ विचार सदैव रहकर मेदपाटेश्वर के लालन और पालन के भागी होंगे और प्रतिदिन आर्यावर्त देश की सनातन आर्य विद्या, धर्म, उच्च नीति और नीति-मर्यादादि को सम्प्रति काल के क्षय से संरक्षित करके यथास्थित पालन करेंगे। किमधिकम् संवत् १९४० आश्विन कृष्णा १४, तदनुसार ता० २९ सितम्बर, १८८३ ई० ।

हस्ताक्षर मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, मंत्री, राजे श्रीमहद्राज-सभा
श्री दरबार देश मेवाड़ ।

सुहृदगण, देखा आपने श्रीमान् यावदार्य-कुल-दिवाकर महाराणाजी का औदार्य और प्रजा-वात्सल्य। कहाँ तक उन्होंने प्रेम, प्रीति और धर्मोत्सुक्यादि दर्शाया है। हम लोग कहाँ के कौन, जिन पर इतने बड़े महाराजाधिराज इस प्रकार कृपामृत वर्षा कर समस्त जगत् का उत्सा बढ़ावें। क्या यह श्रीमानों का अलौकिक कृत्य नहीं है। भला उनकी इस विलक्षण गुणग्राहकता की प्रशंसा करने में किसकी लेखनी समर्थ हो सकती है। देखिये तो सही, उन्होंने इस परमादरणीय परम प्रशंस्य पत्रस्थ पदों का लालित्य, माधुर्य

और गाम्भीर्य कैसा हमारे चित्त को आकर्षित करता है और कैसी हमको कर्त्तव्यता जता रहा है। इतना ही नहीं, किन्तु उसका सदाशय उन महामना के चित्तोदधि में जैसे-जैसे जो-जो गुण-रत्न भरे हैं, उनको भी अच्छे प्रकार झलका रहा है। सिद्धान्त यह कि इस अवनि पर अन्वर्थाभिधान इस काल में यही एक नृप श्रेष्ठ हुए जान पड़े।

अब रहा यह विवेक कि इस समय के यावत् राजगणों में यही ऐसे अनुपम और विलक्षण सच्चरित्र कैसे हो गये, तो सोचते-सोचते इसका मूल कारण उन्हों का प्राक्तन तपोबल और साम्प्रतिक सद्गुरु-समागम ही कहने में आवेगा। सो सब प्रत्यक्ष है। अतः इसकी विशेष व्याख्या करना कुछ आवश्यक नहीं। हाँ, यह प्रार्थना करना परमात्मा से परमावश्यक है कि वह अपना ऐसा ही अनुग्रह हमारे भारतवर्षीय इतर राजगणों पर भी करे, अर्थात् उनको हमारे महाराणा जी महोदय के उदाहरण पर चलता कर दे। एवमेवाऽस्तु।

इसी प्रकार जिस समय फिरोजपुर के अनाथालय में श्रीमान् महाराणा जी प्रदत्त सात सौ रौप्य मुद्रा अनाथ बालकों और बालिकाओं के लिए पारितोषिक पहुँचा उस समय उन्होंने भी एक धन्यवाद-पत्र प्रशंसित मही महेन्द्र की सेवा में भेजा। उसको अवलोकन कर श्रीमानों ने अति प्रमुदित होकर अपनी महद्राज-सभा से उसी क्षण प्रसन्नता-पत्र भिजवाया। उसमें का यह वाक्य हम लोगों को कभी विस्मरण न होगा कि "हे बालको, तुम लोग अब से कभी अपने को अनाथ न समझो और जिस प्रकार तुम लोग श्रेष्ठ विद्या और सद्गुणादि ग्रहण करने में परिश्रम करोगे, उसी प्रकार श्रीमान् मेदपाटेश्वराधीश को प्रिय होगे।"

कहिये, बंधुजन! अब कौन हम दीन प्रजा के अनाथ बच्चों का इस रीति से आश्वासन करेगा। अस्तु हरेरिच्छा बलीयसी।

पुनस्तदेव प्रकृतम्

ता० ७ मार्च, १८८३ ई० को श्रीमान् सर्व-विद्या-निधान स्वामी जी महाराज राजधानी शाहपुरा में दाखिल हुए। उस समय के अमितानन्द की प्रशंसा हो नहीं सकती। मानो उमड़कर महार्णव आ मिले। मंगल-प्रचुर शुभचरणाम्बुज-समागम सुन महाराजा नाहरसिंह जी वर्मा बड़ी ही तैयारी और धूमधाम के साथ पेशवाई करके लाये और स्वस्थान पर पधारे। बार-बार नमस्ते पर नमस्ते करते, धन्यवाद देते, अपना और अपनी राजधानी का

सुख-सौभाग्य सराहते थे। फिर, इसी एक दिन की यह बात न थी, किन्तु प्रतिदिन घड़ी और प्रतिक्षण उनकी भक्ति इसी प्रकार श्री चरणों में शुक्लेन्दुवत् वृद्धिगत रही। उनका चित्त-चकोर सदैव उसी अपूर्व सुधाकर के ही ध्यान, धारणा में रहा करता था। इस राजधानी में व्याख्यानों की भी बड़ी धूमधाम रही। यथा राजा तथा प्रजा भी हो गई। श्रीमान् के समीप इन्होंने भी, यावत् उनकी स्थिति, बहुत कुछ न्याय-नीति उपयोगी शास्त्र पढ़ा और ऐसा प्रेम बढ़ाया कि यहाँ पर स्वामी जी महाराज को जाता हुआ काल जान ही न पड़े। परन्तु यह केवल इन महाराजा के प्रेम-प्रमोद का चिह्न और उत्कर्ष समझिए। बाकी जो सदैव जाग्रत और जगत् का जगाने वाला हो वह कब ऐसा अचेत हो सकता है! निस्सन्देह प्रशंसित नृप-रत्न को यही विदित होता था। इस स्थल पर सद्गुरु महाराज राजधानी उदयपुर से कुछ अधिक ही निवास करेंगे, परन्तु देर न लगी, चलने की तैयारी हो गई।

व्यवस्था इसकी यह है कि अकस्मात् श्रीमान् जोधपुराधीश की सभा के कतिपय कार्य-दक्ष सन्नद्ध सरदार अपने महाराजाधिराज श्री श्रीप्रतापसिंह जी का एक विनय-पत्र श्री जी महाराज के नाम लेकर शाहपुरा आ पहुँचे। सदाशय उस पत्र का यह था कि "भगवन् बहुत दिन हो गये! अब कृपा करके अपने इस आतुरतापूर्ण भक्त की लगी लालसा को भी अति सत्वर पूर्ण कीजिए। आपके लिए रेल और रथ गजादि यानादिक का यथावत् प्रबन्ध करके इन सेवकों को श्री सेवा में भेजा है।" इत्यादि।

इस प्रकार के पत्र और सरदारों के मुख से यह समाचार, सुनकर कि "महाराज श्री की हमारे श्रीजी को हुजूर की अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है···अहर्निश इन्हीं चरणारविन्दों के ध्यान में रहते हैं प्रतिक्षण दरबार में आप ही की चर्चा रहती है, सो आप तैयारी कीजिए" श्रीजी महाराज ने प्रसन्न होकर कहा कि "यदि ऐसा है तो लो, प्रातःकाल ही चलेंगे। आज सब प्रस्तुत हो जाए।" तदनुसार सब तैयारी हो गई और उसी दिन शाहपुराधीश ने घोषणा भी कर दी कि आज के परमोत्सव में राज्य के सब छोटे-बड़े दरबारी उपस्थित हों। श्रीमान् सद्गुरु महाराज को सम्मान-पत्र समर्पण होगा। ठीक समय पर सब लोग आ गये और सुष्ठु प्रकार से आगे लिखा सम्मान-पत्र और एक दुशाला तथा पञ्चशत मुद्रा उपायन श्रीमान् परमभक्त शाहपुराधीश जी ने भक्तवत्सल के चरणों में अतिविनय और

नम्रतापूर्वक निवेदन किया। वृत्तान्त उसका समस्त समाचार-पत्रों के द्वारा प्रकटित है।

जिस प्रकार और जिस रीति, आदर-सत्कार और उत्साह के साथ सम्मान पत्रादिक का देना श्रीमान् उदयपुराधीश जी महाराज का पूर्व में वर्णन हो आया है, उसी प्रकार इसकी भी शोभा वर्णनीय है। उसको स्वीकार करके श्रीमान् यतिवर्य जी महाराज अपने भक्त-शिरोमणि महाराजा शाहपुराधीश को सान्त्वना करके जोधपुर की ओर सुप्रस्थित हुए।

सम्मान पत्र की प्रति

स्वस्ति श्री सर्वोपकरणार्थ-कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज के चरणारविन्दों में महाराज राजाधिराज शाहपुरेश की बाम्बार नमस्तेऽस्तु ! वैदिक धर्म-उपदेशक मण्डली में मेरी ओर से एक उपदेशक रहे जिसके व्यय के वास्ते एक रुपया मुद्रा नित्य प्रति अर्थात् मासी ३० रौप्य यहाँ से निरन्तर आज की तिथि से प्राप्त होते रहेंगे। सो वैदिक धर्म की महिमा सुना कर पाखण्डादि का खण्डन करते रहें।

अपरंच यहाँ आपका विराजना सार्द्ध-द्वय मास-पर्यन्त हुआ, तथापि आपके सत्यधर्मोपदेश के श्रवण से मेरी आत्मा तृप्त न हुई। आशा थी कि आप ग्रीष्मान्त अत्र स्थित होते। परन्तु जोधपुराधीशों की ओर से दर्शनों की और वेदोक्त धर्म-उपदेश-ग्रहण की, पुनः सत्याचरण, असत्य का त्याग आपके मुखारविन्द से श्रवण करने की अभिलाषा देख के आपने वहाँ पधारना स्वीकार किया और भवच्छरीर भी करोड़ों मनुष्यों के उपकारार्थ प्रकट हुआ है, यह समझ के मेरी भी सम्मति यही हुई कि आपका पधारना ही उत्तम है। यही समझ के यहाँ विराजने की प्रार्थना नहीं की। आशा है कि कृतकृत्य करने के निमित्त पुनरागमन करेंगे। संवत् १९४० मिति ज्येष्ठ कृष्णा ४। —ह० महाराजा नाहरसिंहस्य

प्रिय सुहृद्गण ! यद्यपि श्रीमान् स्वामी जी महाराज के समागम में बहुत से राजपुरुष और राजयानादिक थे, तथापि इस यात्रा में प्रथम दिन से ही उन्हों को बहुत कुछ क्लेश सहना पड़ा। प्रथम तो राजपुताना देश का ऐसा नष्ट मार्ग कि जहाँ खड़े होने को कोसों वृक्ष की छाया नहीं। तिस पर ग्रीष्म ऋतु और आँधी पानी का घेरा। ज्यों-त्यों ता० २७ मई को अजमेर पहुँचे। यहाँ एक दिन निवास करके अत्रस्थ अपने समस्त भक्तों से

मिले। यहाँ से दूसरे दिन रेल पर सवार होकर पाली नामक स्टेशन पर उतरे। तहाँ पर श्रीमहाराजा जोधपुर की ओर से हाथी, रथ, पालकी आदि वाहन और भृत्य-आदि जन, अर्थात् सब प्रकार का सुखप्रद राजसी सामान, समुपस्थित था। तत्सहित प्रशंसित राजधानी में पहुँचे और भाई फैजुल्ला खाँ की परम दिव्य कोठी, जो प्रथम से ही इन्होंके ठहरने के लिए सुसज्जित की गई थी उतारे गए। इन्होंके पधारने के समाचार सुनते ही श्री १०८ महाराजाधिराज जोधपुराधीश जी अपने समस्त बन्धु-बांधव और सरदार-मण्डल को साथ ले श्रीमान् सर्व-विद्या-निधान जगद्गुरु महाराज के दर्शनार्थ समुपस्थित हुए। समीप पहुँचते ही ५ सौवर्ण और २५ रौप्य मुद्रा भेंट कीं और बहु-विनय-पुरस्सर प्रणाम करके नीचे बैठ गए। परन्तु श्रीजी महाराज ने उसी क्षण उनको बहु प्रीतिपूर्वक अपने दोनों हस्त कमलों से उठाकर अपने समीप उच्चासन पर बिठा लिया। पश्चात् इसके परस्पर बहुत कुछ कुशल-प्रश्नादि वार्ता परमादरपूर्वक करके विदा हुए।

उस दिन से निरन्तर यावत्-स्थिति परमगुरु महाराज तत्रस्थ राजा-प्रजा को अनेक सदुपदेश करते रहे और व्याख्यानों की भी यथापूर्व धूमधाम और खण्डन-मण्डनादि होता रहा। उसमें निरन्तर सब लोगों, अर्थात् राजा-प्रजा को जैसा कुछ करना और सदाचरण से रहना उचित होता है, वह सब बराबर बेधड़क समझा कर उनको सुचेत और प्रमुदित करते रहे। उसी प्रकार उन लोगों की भी प्रत्यह श्रीचरणों में प्रीति बढ़ती गई अर्थात् राज्य के समस्त अमीर, सरदार, प्रधान विद्वान्, बांधव जन, तथैव स्वयं महाराजाधिराज यथावकाश, श्रीजी महाराज के आश्रम पर आते जाते रहे। सारांश, ये सब लोग इस अपूर्व समागम को पाकर अपने को बहुमानी मानते और श्रीमान् सद्गुरु महाराज को अन्तःकरण से अपरिमित धन्यवाद देते थे। इस प्रकार श्रीमान् जोधपुराधीशों की प्रबल प्रीति, उत्साह और लालसा देख उनके कल्याण की अपेक्षा से उस राजधानी में श्रीजी महाराज चार मास तक बहुत आनन्दपूर्वक रहकर अपना नित्य नैमित्तिक कृत्य करते रहे। परन्तु पंचम मास यहाँ पर उनको अच्छा नहीं गया। उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था सातवें मयूख के द्वारा प्रकाशित होगी।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती-दिग्विजयार्कीय-तृतीयखण्डे श्रीमच्छाहपुरजोधपुराधीश-संमिलनं नाम षष्ठो मयूखः ॥

अथ सप्तमो मयूखः

अनिष्टोत्थान

सुहृद्गण ! अब तक आपको जिस रीति अनेक प्रकार की इष्ट कथा सुनाई, उसी प्रकार अब परमानिष्ट वार्ता का सुनाना भी आवश्यक आ पड़ा है। परन्तु क्या कीजिए ! दैवी सिद्धान्त यही है [1] कि जिस भाँति दिन के पीछे रात्रि हो जाती है, उसी भाँति जगत् में तुरन्त सुख के पीछे दुःख भी आ पहुँचता है। इसके अनेक उदाहरण इतिहासों में वर्तमान हैं। जैसे सर्व कला-निधान श्रीमान् रामचन्द्र जी महाराज का विजय और राज्याभिषेक हुए, पीछे तुरन्त काल का आगमनादि हमको सुनना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार यहाँ का प्रसंग है। अर्थात्, राजधानी जोधपुर में पंचम मास श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज को बहुत ही खेद के साथ व्यतीत हुआ।

विस्तार उसका यह है कि सं० १८४० वि०, आश्विन कृष्णा एकादशी, गुरुवार के दिन प्रथम कुछ श्लेष्मा, अर्थात् जुकाम, श्रीजी महाराज को हुआ, उसके चौथे दिन, अर्थात् चतुर्दशी की रात्रि को, धूड़ मिश्र पाकाध्यक्ष से, जो कि शाहपुरे का रहने वाला था, दूध पीकर सोये। पीछे स्वामी जी महाराज को रात्रि भर में तीन वमन हुए। परन्तु उन्होंने उस समय किसी को नहीं जगाया। स्वयं जल से कुल्ली कर-कर सोते रहे। इनका सदैव यह नियम रहा कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठ वन में शुद्ध वायु के ग्रहणार्थ जाते थे। परन्तु इस अमावस को बहुत दिन चढ़े उठे और उठते ही फिर उनको एक वमन हुआ। इस पर संदेह हुआ कि यह क्या बात है। तब दो-तीन वमन उन्होंने खुद आप जल पी-पी कर-कर डाले और शीघ्र अग्निकुण्ड में धूप डलवा कर कोठी से दुर्गन्ध-निवृत्ति के पश्चात् जब उदर में शूल उत्पन्न हुआ देखा, तब डाक्टर सूरजमलजी को बुलाया। उन्होंने आकर वमन बन्द करने की औषधि दी और पूछा कि अब आपका दिल कैसा है ? स्वामी जी ने कहा कि सब पेट में शूल हो रहा है और प्यास बन्द होने की औषधि दी और कहा कि महाराज जी बड़े शोक का कारण यह है इस परम भयंकर निर्जल मारवाड़ देश में आप ऐसे महात्मा का निवास हुआ। नहीं तो इस महाशूल का मूल काहे को जमता। इतने में वह शूल बढ़कर त्रिशूल हो गया। शरीर के सब अवयवों में प्रविष्ट हो, स्वामीजी को बहुत सताने लगा

१. सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
द्वयमेतद्धि जन्तूनां भोग्यं स्यात् दिनरात्रिवत्॥

और श्वास के साथ बड़े वेग से वह चलता था। परन्तु धन्य है स्वामी जी को, कि ऐसे महत् कष्ट में भी ईश्वर के ध्यान के सिवाय कभी आह नहीं की।

ता० १० सितम्बर १८८३ ई० के चार बजे श्री महाराणा प्रतापसिंह-जी के नौकर भारत और अमरदान जी ने बड़े डाक्टर अलीमर्दान खाँ साहब को बुलाया। उन्होंने आकर एक पट्टी पेट पर बँधाई और पूर्वोक्त डाक्टर साहब भी वहाँ उपस्थित थे। फिर उसी दिन आठ बजे संध्या को श्रीयुत रूपराव और राजा तेजसिंह जी आए। उसी समय उनके मुन्शी नित्याभार ने अमरदान जी और दामोदरदास जी को बुलाया। तत्पश्चात् फर्रुखाबाद-निवासी कप्तान साहब आदि बहुत से योग्य पुरुष भी आए। सब महाशय नमस्ते करके बैठे और कहा कि "श्री महाराज, हमने तो आपके उदर में साधारण शूल जाना था; अब देखा तो अत्यन्त दुःख हुआ। अलीमर्दान खाँ जी, स्वामी जी के गिलास लगा दो परन्तु अब तो रात्रि हो गई है। कल अवश्य लगा देना।" यों एक घण्टा तक वार्तालाप कर-कराकर वे सब चले गये और सेवक जन परम सेव्य की सेवा करते रहे।

ता० १ अक्टूबर को ६ बजे डाक्टर साहब आए और ग्लास लगाए। उनसे सांस के साथ जो दर्द होता था, वह तो बन्द हो गया, परन्तु बाकी पीड़ा वैसी ही बनी रही।

ता० २ अक्टूबर को प्रातःकाल के सात बजे स्वामीजी ने डा० अलीमर्दान खाँ से कहा कि "हम जुलाब लिया चाहते हैं।" उन्होंने कहा कि "बहुत अच्छा।" परन्तु प्रथम बलगम फूले पश्चात् दस्त आवें तो अति उत्तम है।" स्वामीजी ने कहा कि "जिससे रोग-निवृत्ति हो, वह कीजिए।" तब डाक्टर साहब ने घर पर गोलियाँ बना कर भेज दीं और जिस प्रकार उन्होंने कहा था, उसी प्रकार खाईं।

दूसरे दिन अर्थात् ३ अक्टूबर को जुलाब दिया, जिससे ९ बजे तक कोई दस्त नहीं आया। तब डाक्टर साहब ने कहा कि "महाराज, हलका जुलाब है। जब फुजला पेट में गर्मी करेगा तब खूब दस्त होंगे।" ऐसा कह-कर चले गए। १० बजे से दस्तों का आना आरम्भ हुआ। रात्रि भर में तीस से अधिक दस्त पतले पानी से हुए। प्रातःकाल अर्थात्, ४ अक्टूबर को पुनः डाक्टर लोग आये। तब स्वामी जी ने कहा कि "तुम तो कहते थे कि छह-सात दस्त होंगे, सो तीस से अधिक हुए। अब हमारा जी बहुत घबड़ाता है।" इस दिन भी अधिक दस्त हुआ। उसके पश्चात् स्वामी जी को मूर्छा हो गई। फिर तो यह हाल हो गया कि प्रति दस्त के साथ मूर्छा हो जाती थी।

६ अक्टूबर को स्वामी जी ने कहा कि "भाई अब दस्त बन्द होने चाहिए, क्योंकि मुझको बिन मूर्छा आए एक भी दस्त नहीं होता और मेरा जी भी बहुत घबराता है। शरीर में अग्नि लग रही है।" तब डाक्टर साहब ने कहा कि "महाराज, दस्त बन्द होने से रोग की वृद्धि का भय है। यदि आप से आप बन्द हो जावें तो अच्छा है, ऐसा कह चले गए।" तत्पश्चात् डा० सूरजमल आए और कहा कि "इस जुलाब के देने में मेरी तो कदापि सम्मति नहीं थी, परन्तु क्या किया जावे! बड़े तो बड़े ही होते हैं।" परिणाम में उदर से लेकर कण्ठ, तालू और मुख-पर्यन्त बहुत छाले पड़ गए तथा शीर्ष, हस्त और पादों पर भी फोड़े हो आए, जिनकी पीड़ा से बोल नहीं सकते थे। इसके उपरान्त दस्तों के साथ हिचकी भी उत्पन्न हो गई। परन्तु धन्य श्री स्वामी जी महाराज का साहस, कि जिन्होंने फिर भी आह न की और जब-जब हिचकियों ने अधिक सताया, तब-तब उसके निवारणार्थ दो-दो घण्टे अपना प्राण चढ़ा कर सुखी रहते थे।

भ्रातृगणो! यह विचारने का स्थान है न जाने यह किस प्रकार का जुलाब और औषधि थी। इस पर बहुधा मनुष्य कई प्रकार की शंका करते थे। स्वयं श्रीमान् स्वामी जी ने भी कई पुरुषों और महाराज प्रतापसिंह जी से इस विषय में स्पष्ट कह दिया था। परन्तु अब क्या हो सकता था? हमको तो इस स्थल पर इतना ही शोक है कि इनके रोग की इतने प्रबलता होने पर भी इन्होंने किसी आर्यसमाज को सूचित न किया। यदि यह वृत्तान्त उसी समय जाना जाता तो कभी यह रोग इतनी प्रबलता न पाता। यहाँ पर "अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते।" इस वाक्य को भी सत्य जानना चाहिए।

देखिये, १२ अक्टूबर की बात है कि आर्यसमाज अजमेर को उसके किसी सभासद् ने इस वृत्तान्त की खबर दी, तो उस पर प्रथम उस समाज ने यह बात सोच कर कि यह खबर किसी शत्रु ने मिथ्या उड़ाई होगी, अपना कुछ ध्यान ही नहीं दिया। क्योंकि इससे प्रथम एक बार अजमेर में यह मिथ्या खबर उड चुकी थी कि जोधपुर में स्वामी जी से फौजदारी हो गई है। जब इस विषय में स्वामी जी से पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि "तुम लोग किञ्चित् मात्र भी अपनी बुद्धि तो काम में नहीं लाते। यदि ऐसा होता तो अब तक कितने ही तार दौड़ गए होते।" परन्तु बन्धुगण! मन भी एक विचित्र वस्तु है। उन्होंने उसको कई प्रकार से समझाया, परन्तु उसने न माना; और जब अधिक ही अधिक

सन्देह बढ़ा, तब समाज ने अपने एक सभासद् जेठमल सोढ़ा को स्वामी जी के समीप भेजा। उसने स्वामी जी की यह दशा देख प्रार्थना की कि "श्रीजी महाराज! यह क्या हुआ? और अधिकतर शोक का विषय यह है कि आपने किसी समाज को भी सूचित न किया।" तब दयालु महाराज ने यह उत्तर दिया कि "भाई, बीमारी की दशा को क्या लिखते? यह तो शरीर का धर्म ही है। कुछ अन्य वार्ता होती तो अवश्य सबको लिखते। इसके लिखने से तुम लोगों को भी बहुत क्लेश होता, इसलिए नहीं लिखा गया।"

भ्रातृ गण! जब इस सभासद् ने आकर अपने समाज को सुचेत किया, तब उसने उसी समय बम्बई, फर्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर आदि बहुत से समाजों को तार दिए। फिर तो सर्वत्र कोलाहल मच गया और चहुँ ओर से शतशः तार-पत्र और समाजीय सभ्य श्रीमान् के समाचारार्थ दौड़े। सो यह तारों का तार और पत्रों पर पत्र तथा मनुष्यों-पर-मनुष्य आबू व अजमेर में चले आने का प्रचार और इन सबसे उत्तर-प्रत्युत्तर करने-कराने का विचार समस्त भरतखण्ड में एक मास से अधिक काल तक ऐसा लगातार रहा कि जिसका विस्तार जानना केवल उसी एक कर्तार के रहा है।

इधर जब जोधपुर में रोग-निवृत्ति के चिह्न दृष्टि न पड़े, तब एक दिन रात्रि को पं० देवदत्त, लेखक और लाला पन्नालाल जी मुदर्रिस जोधपुर ने स्वामीजी से कहा कि "महाराज, यह नगर शीघ्र छोड़ने योग्य है।" तदनुसार स्वामी जी ने उसके प्रातःकाल ही श्री १०८ महाराज जोधपुराधीश को पत्र लिखा कि हम आबू जायेंगे। श्रीमान् ने उत्तर दिया कि ऐसी दशा में मेरे राज्य से जाना मेरी भारी अपकीर्ति है। परन्तु जब स्वामी जी का विचार ठहरने का न देखा, तब १६ अक्टूबर को आबू जाना नियत हुआ। उसी दिवस संध्या के समय श्रीमान् जोधपुराधीश अपने सब बंधुओं और अमीर-उमरावों सहित स्वामी जी के पास आये और विनय किया कि "महाराज जी! आप ऐसी दशा में मेरे राज्य से पधारते हैं, परन्तु आपकी यह दशा देख कुछ कह नहीं सकता हूँ।"

पश्चात् २००० मुद्रा और दुशाले स्वामी जी को भेंट किए और उनको गर्मी की व्याकुलता देख अपना खस का डेरा और खस का पंखा साथ दिया और स्वामी जी को पीनस में सवार कराकर नगर के द्वार तक प्रशंसित श्रीमान् अपने भाई बन्धुओं और अमीर-उमरावों के सह

वर्तमान स्वामी जी महाराज की पीनस के साथ-साथ पैदल आये। पश्चात् पीनस ठहरा कर स्वामी जी से बहुत कुछ विनय की, और कहा कि "महाराज, आपने श्रीमान् महाराणा साहब को तो पढ़ाया ही है, परन्तु मुझको भी उनसे किसी प्रकार कम अपना सेवक न समझिए और मैंने यहाँ से आबू में समाचार पहुँचा दिये हैं। वहाँ आप अपनी खास कोठी पर ही ठहरिए, जहाँ सब प्रकार के सुख-सौकर्य के साथ राजपुरुष आपकी बराबर सेवा करेंगे। और जब आप आबू पर रोग से निवृत्त हों, तो मुझको अवश्य तार द्वारा सूचित कीजिए। मैं पुनः वहाँ आपके लेने के अर्थ आऊँगा।" और पीनस के कहारों से कहा कि "यदि तुम लोग स्वामी जी महाराज को अति प्रसन्नतापूर्वक पहुँचा कर उनकी चिट्ठी लाओगे, तो तुमको राज्य से पारितोषिक मिलेगा।" ऐसा कह बहुत दुःखी और अश्रुपाती हो ज्यों-त्यों निज भवन को सिधारे।

बन्धुगण, निस्सन्देह महाराजा जोधपुराधीश जी का श्रीचरणों में बड़ा ही अकृत्रिम प्रेम था। आज उनके वियोग से जो कुछ उनके अन्तरात्मा में असह्य खेद हुआ, उसका वर्णन कौन कर सकता है? इन्होंने प्रकाशित कर दिया था कि "जो कोई सद्वैद्य श्री जी महाराज को चंगा कर देगा, उसको दो सहस्र मुद्रा का पारितोषिक इस राज्य से मिलेगा।" इस समय उन्होंने बहुत-सा राज्य खर्च देकर अपने दो मुसाहिब आबू पर श्री जी की सेवार्थ उनके साथ भेजे। इस व्यतिरिक्त रेल तक आराम से पहुँचाने को ३ रथ, २ सेजगाड़ी, २ पालकी गाड़ी, ६ सवार, ६ ऊँट, ३२ कहार आदि बहुत से परिचारक तथा डाक्टर सूरजमल जी को बहु-प्रेमपुरस्सर साथ कर दिया था। इधर मार्ग में स्वामी जी महाराज को दस्त और हिचकी बराबर आती रहीं और एक-दो वमन भी हुए। यों अति क्लेशों से २१ अक्टूबर के सायंकाल को आबू पर पहुँचे। संयोगवश एक आर्य डाक्टर पं० लक्ष्मणदास जी, जो कि अजमेर जाने को पहाड़ उतर रहे थे, मार्ग में मिल गये। उन्होंने स्वामी जी को जब इस प्रकार रोग-ग्रस्त देखा तो तुरन्त उनके साथ लौट पड़े और आबू पहुँच कर औषधि दी। उससे श्री जी महाराज के दस्त और हिचकी थम गये और विश्वास हुआ कि अब अच्छे हो जायेंगे। उक्त डाक्टर साहब ने बहुतेरा चाहा कि हम आबू पर ठहर कर अच्छे प्रकार स्वामी जी की औषधि करें, परन्तु उनके साहब ने उनको न ठहरने दिया। जब देखा कि यह साहब इस्तीफा तक स्वीकार नहीं करता, तब वह परवश हो चले गये, परन्तु उन्होंने चार दिन की औषधि बनाकर धर दी थी और सेवकों से कह गये थे कि इसको नित्य देते रहना

और जो तुम लोग स्वामी जी को अजमेर ले आओगे तो मैं बड़ी सावधानी से औषधि करूँगा।

उसी दिन उनके गये पीछे बहुत जगह के समाजीय सभ्य श्री जी महाराज की सेवा में २३ अक्टूबर को मध्याह्न के समय उपस्थित हुए। उन्होंने उनकी परिचर्या के व्यतिरिक्त बड़ा भारी काम यह किया कि जितने तार और पत्र वहाँ पर श्री जी महाराज के नाम आ पड़े थे, वा आते-जाते थे, उन सबका उसी क्षण उत्तर श्री जी की इच्छानुसार भेज कर समाज मात्र की घबड़ाहट मिटाई। निस्सन्देह उन दिनों श्रीजी महाराज की प्रकृति वहाँ कुछ अच्छी हो गई थी, अतः वे लोग उनको समझा कर उक्त डाक्टर साहब के समीप ता० २६ अक्टूबर को स्थान अजमेर में ले गये।

तहाँ उक्त डाक्टर साहब की औषधि बम्बई, फर्रुखाबाद, मेरठ, लाहौर और कानपुर आदि के सभासदों की सम्मति से, जो कि वहाँ श्री जी महाराज के साथ आकर एकत्र थे, होने लगी और उससे दो-तीन दिन में बहुत-कुछ श्री जी महाराज को गुण जान पड़ा। तब २८ अक्टूबर को उक्त समाजों से आये हुए समस्त सभ्यों को श्री जी महाराज ने स्व-स्थानों पर जाने की आज्ञा दी। तथा वे भी निश्चित होकर चले गये। तदन्तर और कितने ही आर्य वहाँ नवीन आते रहे और कितने ही समागम में थे। वे सब तथा अजमेर समाज परम हित चित्त से अहर्निश श्री जी महाराज की सेवा और सम्हाल बराबर करते रहे और प्रत्यह बाहर से जो तार और पत्रादि आते थे, उनका उत्तर भी उसी दिन ये लोग बराबर सर्वत्र सबको भेजते रहे।

आशा थी कि यदि इसी प्रकार प्रकृति सधी चली गई, तो अवश्य श्री जी महाराज थोड़े ही दिनों में बहुत अच्छे हो जावेंगे। क्योंकि डाक्टर लक्ष्मणदास जी ने भी निश्चयात्मक कह दिया था कि "अब श्रीमान् स्वामी जी महाराज को कुछ सन्देहयुक्त रोग नहीं है। जो कुछ प्रथम भयानक दशा थी, वह सब चली गई। अब केवल साधारण रोग रह गया है। वह भी गया जानो। बाबत इसके हम तुमको तमस्सुक लिख दे सकते हैं कि अब स्वामी जी का कुछ भी बिगाड़ न होगा और तीन ही दिन में दिखा देवेंगे कि स्वामी जी महाराज अपने पैरों चलते हैं।" परन्तु शोक कि हमारी यह आशा पूरी न हुई। पूरी तो तब होती जब कि हम भारतवासियों

का अभीष्ट करना जगदीश्वर को स्वीकार होता। अस्तु ! अतः पर का वृत्तान्त सर्व महाशय ८वें मयूख में अवलोकन करें।

इति श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमद्दयानन्द-दिग्विजयार्कीय तृतीयखण्डे अनिष्टोत्थानं नाम सप्तमो मयूखः ॥ ७ ॥

अथाष्टमो मयूखः

महाप्रस्थान वा परमपदावगाहन

बंधु गण ! ता० २३ से लेकर ता० २९ अक्टूबर, सन् १८८३ ई० तक सात दिवस चहुँ ओर नगर-नगरान्तरों से बराबर तार-पत्र और लौटकर आए हुए मनुष्यों के द्वारा यही खबर पहुँचती रही कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने खेद तो अतिशय पाया, परन्तु जब से आबू और अजमेर पहुँचे, क्रमशः अच्छे होते जाते हैं। आशा है कि शीघ्र चंगे होकर यथानुक्रम अपना काम करेंगे। इस बार की बीमारी से उठना उनका पुनर्जन्म होना है। इत्यादि प्राप्त समाचारों से वह कोलाहल, जो श्रीजी महाराज को रोगग्रस्त सुनकर भरतखण्ड-भर में मच गया था, शान्ति पर आते कुछ भी विलम्ब नहीं हुआ था, कि इतने में एकदम से हवा पलट गई। अर्थात्, ३० अक्टूबर को प्रातःकाल होने के पूर्व अजमेर समाज से जहाँ-तहाँ के समाजों में 'तू चल, मैं चल' के तारों की ऐसी कतार बँध गई, कि जिससे समस्त भरतखण्ड में फिर हलचल मच गई।

विस्तार इसका इस प्रकार है कि ता० २९ को अर्द्धरात्रि के समय रोग ऐसा प्रवल हो गया कि जिसको देखकर डा० लक्ष्मणदास के छक्के छूट गये और कहने लगे कि इसे बुलाओ, उसे बुलाओ, यह करो, वह करो। परन्तु परम प्रशंसनीय काम करना चाहिए अजमेर आर्यसमाज के उन सभापति आदि भद्र पुरुषों का, जिन्होंने इस दुरवस्था में भी अपने चित्त को भली भाँति व्यवस्थित रक्खा। उन्होंने उसी क्षण से खूब-दौड़ की। तुरन्त वहाँ के बड़े डाक्टर न्यूमैन साहब को बुला कर दिखाया तथा आगरे के सुप्रसिद्ध डाक्टर बाबू मुकुन्दलाल जी को जवाबी तार दिया और घड़ी-घड़ी के समाचार, तार और पत्र द्वारा राजधानियों को और जल्द-तर दौड़ आने के लिए ताकीदी तार इतर नगरस्थ समाजों को भेजकर जो कुछ वहाँ पर कर्तव्य था, वह सब बराबर और यथास्थित किया।

जिस समय ता० ३० को डा० न्यूमैन साहब ने स्वामी जी को आकर नीचे से ऊपर तक देखा, तो प्रथम अत्यन्त विस्मित होकर रह गये, फिर बोले कि "धन्य है इस सत् पुरुष को ! हमने आज तक ऐसा दिल का मजबूत

कोई दूसरा मनुष्य नहीं देखा कि जिसको इस प्रकार नख से शिख तक अपार पीड़ा हो, वह तनक भी आह वा अह तक न करे। परिणाम में जो कुछ उपाय उचित जाना, वह बताय अपनी दक्षिणा के सोलह रुपये लेकर चले गये। डा० मुकुन्दलालजी ने भी आने का तार दिया था, परन्तु आवश्यकता न रहने के कारण वे रोक दिये गये और जो कुछ जिसने कहा, वह सब बराबर किया। परन्तु किसी का कोई भी यत्न काम न आया। बस, इसी ता० ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई०, अर्थात् कार्तिक कृष्णा ३०, मंगलवार, सं० १६४० वि० के दिन, ठीक सूर्यास्त होने के समय, यह अपर भानु भी क्षण मात्र में अस्त हो गया और समस्त भूमण्डल न जाने किस काल तक के लिए तिमिरावृत हो गया।

हा शोक ! हा शोक ! हा शोक !

बंधु गण ! इस जगत् में बहुधा लोग विपत्ति-समुद्र और संसारादि कतिपय वस्तु को अपार कहते हैं। परन्तु जब कि शोध लगाने वाले विज्ञानियों को उन सबका पार मिल सकता है, तो कभी वे अपार नहीं कही जा सकतीं, तो भी बहुत लोग प्रसंग वश उनको वैसा ही कहे जाते हैं। सो इसका मुख्य मूल केवल यही है कि सुनने वाले उसको अपार अर्थात् परम असह्य वा दुर्गम समझें। इसी प्रकार नहीं किन्तु उससे कहीं बढ़ कर श्रीमान् जगद् गुरु स्वामी जी महाराज के वियोगजनित शोकार्णव का अपार विस्तार इस आर्यावर्त-भर में विस्तृत हो गया जानिये, और ज्यों-ज्यों काल अधिक होगा, त्यों-त्यों यह शोकसागर अधिकतर फैलेगा, क्योंकि सम्प्रति स्वदेशीय प्रजा जैसी मुग्ध दशा में है, वैसी कभी भविष्यत् काल में न रहेगी। उस समय के लोग इस समय के वर्तमान अपने पितृ-पितामहादि पुरुषों की बुद्धि और स्थिति पर भी अपार शोक करेंगे। बस, वही समय इस देश वालों के लिए पूर्ण सौभाग्यप्रद होगा और उसी काल के अत्रस्थ मनुष्यों का जन्म भी सफल कहावेगा। तथैव उन्हीं की संस्था पुनः इस भूमण्डल-भर में उदाहरणीय व सराहनीय होगी। यदि इस अवस्था में भरतखण्ड आज होता इस समय ऐसा शोक करने की आवश्यकता न होती। अस्तु ! "हरेरिच्छा बलीयसी" कहने के सिवाय और कोई समाधान हमारा नहीं। आशा है कि वह सर्व-नियन्ता किसी रूपान्तर द्वारा भारत का सुधार करेगा।

बंधु गण ! अब लिख जताना इस बात का परमावश्यक है कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज की चरमावस्था इस अन्तिम दिवस किस विधि

रही और किस रीति से उन्होंने अपना पाञ्चभौतिक शरीर छोड़ा। देखिये, कई दिन से उनको बोलने तक की शक्ति न थी। और न बिना चार-छः मनुष्यों की सहायता के करवट तक ले सकते थे। उसमें भी गत अर्द्ध रात्रि से ऊर्ध्व श्वास अति वेग से चल उठा था। परन्तु वे अपने योग-बल से उस पर बराबर विजयी बने रहे। यह अवस्था उनकी चार पहर वर्तमान रही। अर्थात् अन्तःस्थ वायु के बल को श्रीमान् बराबर परास्त करते रहे और परिणाम में मध्याह्न के समय एकदम से अच्छे प्रकार चंगे बन बोलने लगे। उसी समय उठ चलकर शारीरिक शुद्धि से निश्चिन्त हो पलंग पर आये। पीछे कुछ देर बड़ी सावधानी से बैठे रहे। पश्चात् लेट गए। श्वास अति वेग से चल रहा था। तो उनकी चेष्टा से स्पष्ट जान पड़ता था कि श्रीमान् उसको बलात् अवरुद्ध कर जगदीश्वर के ध्यान में बारम्बार अपने आत्मा को लगाये रहते थे। नेत्र खोलने के समय जब लोग पूछते थे कि "श्रीमहाराज ! आपकी प्रवृत्ति कैसी है ?" तब स्पष्ट उत्तर यह मिलता था कि बहुत अच्छी है और परमानन्द है। एक बार के उत्तर में यह भी कहा कि एक मास के पश्चात् आज का दिवस बड़े ही आराम और आनन्द का है। इसी प्रकार दो दिन पूर्व, जिस समय श्री जी महाराज ने मसूदा से चलने के लिए ताकीद की थी और लोगों ने उसके उत्तर में यह कहा था कि महाराज आपको आराम हुए पीछे ले चलेंगे, तो आप बोले थे कि "हाँ, ठीक है, दो दिन पीछे हमको अच्छे प्रकार आराम हो जायेगा। अस्तु !" इस अवस्था में एक प्रहर व्यतीत करके चार बजे के समय श्रीमान् ने आत्मानन्द सरस्वती और काशी-निवासी गोपाल गिरि जी को सम्मुख बुलाकर कहा कि बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? और क्या चाहते हो ? जो कुछ इच्छा हो वह कहो और पूछो। इतना सुनते ही उन दोनों के नेत्रों में जल भर आया और उन्होंने तुरन्त सिर उठाकर नमस्कार किया। तब उनके सिर पर श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने कर-कमल रख कर कहा कि आनन्दित रहो ! फिर उन्होंने श्री स्वामी जी महाराज से कहा कि "श्रीमहाराज, हम ईश्वर से यही चाहते हैं कि आपका शरीर अच्छा हो जाय।" इस पर उत्तर दिया कि "भाई, शरीर का क्या अच्छा होना है। बनना-बिगड़ना उसका धर्म ही है। इस व्यतिरिक्त जो अच्छा है, वह अच्छा ही बना रहता है।"

इतने में और भी बहुत से भक्त गण वहाँ आ गए। उन्होंने भी नमस्कार किया। उन सबकी ओर बहुकाल तक प्रेम सनी दृष्टि से निहारकर

बोले कि "अच्छा सब लोग आनन्दित रहो और किसी प्रकार का मद्विषयक शोक मत करो।" इस पर सब लोगों ने पूछा कि "भगवन् ! आपका चित्त कैसा है ?" तो "आनन्द-आनन्द" कहकर सबसे कहा कि "अब तुम लोग मेरे सम्मुख से हट जाओ और फिर किसी को सम्मुख मत आने दो और कोठी के सब द्वार खोल दो।" इस अवसर पर श्रीयुत मोहनलाल विष्णुलाल जी पण्ड्या भी श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञानुसार आ पहुँचे। उनसे कुशल-प्रश्नादि हुए। पीछे आपने पूछा कि "आज की तिथि, पक्ष और वार क्या है ?" किसी ने उत्तर दिया कि "कृष्ण पक्ष का अन्तिम दिवस, अमावस, मंगलवार है।" यह सुन सबको अपने सिरहाने की ओर करके स्वयं कोठी के भीतरी-बाहरी प्रदेशों की ओर अवलोकन करने लगे। इस समय साढ़े पाँच बज चुके थे। इस प्रकार किञ्चित् काल कोठी की चहुँ ओर से छवि निहार, प्रथम कुछ वेद-मन्त्रों को पढ़, पश्चात् संस्कृत और भाषा में जगदीश्वर का कुछ गुणानुवाद अति प्रसन्नतापूर्वक करके, कुछ काल समाधिस्थ रहकर, नेत्र खोल उच्चस्वर से बोले कि "हे दीनदयालु, सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! तेरी यही इच्छा है तो अति उत्तम !" ऐसा कह गायत्री मन्त्रोच्चारण के सहित "ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः" कहते हुए तीसरी शान्ति के उच्चारण के साथ ही परमधाम को पधार गए।

रात्रि-भर सारे अजमेर नगर, में हाहाकार पड़ा रहा और इसी एक रात्रि ही में यह खबर भरतखण्ड के समस्त नगरों में फैल गई और प्रातः-काल होते ही समस्त आर्यावर्त शोकाक्रान्त हो गया। इसी रात में पं० सुन्दरलाल जी भी अजमेर पहुँच गये। ज्यों-त्यों अजमेर वालों की वह रात्रि कटी और प्रातःकाल होते ही विमान-रचना की तैयारी की गई। उसके पश्चात् स्वामी जी के मृतक शरीर को अच्छे प्रकार से स्नान कराया, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से चर्चित कर, पुष्प-माला और वस्त्र पहनाय, विमान में अच्छे प्रकार से पधरा दिया। उस समय श्रीमान् का परम दिव्य मुखारविंद अवलोकन करने के लिए सैकड़ों मनुष्य चहुँ ओर से झपटे, परन्तु उनके तेजः प्रचुर चेहरे को देख बेचारे अति विस्मित और हर्ष-शोक-समाकुल हो रहे। इस प्रकार रेशमी वस्त्र, पुष्प-तोरण, माला और कदली-स्तम्भादि से मंडित विमान-विराजित मृत मूर्ति के समन्तात् खड़ी सुयोग्य मनुष्य-मण्डली ने प्रथम बहुकाल परमोच्च स्वर से वेद-मन्त्रों का पाठ किया। तदनन्तर दस बजे के समय विमान उठाया गया और बराबर सब सब लोग पुष्प-वृष्टि करते हुए गाजे-बाजे के साथ चल दिए।

उस समय सबसे आगे स्वामी जी के शिष्य रामानन्द ब्रह्मचारी देवदत्त जी, गोपाल गिरि और पण्डित वृद्धिचन्द्र आदि पण्डित जन विमान के आगे-आगे वेद-मन्त्रों का पाठ उच्च स्वर से करते जाते थे। उसके चहुँ ओर आर्य पुरुषों के यूथ के यूथ उमड़ चले थे। श्रीयुत पण्डित भागराम जी जज अजमेर व रामबहादुर और पं० सुन्दरलाल जी अधिपति वर्कशाप अलीगढ़ आदि बड़े प्रतिष्ठित और भद्रपुरुष मार्ग में यथोचित बड़ी सावधानी से प्रबन्ध करते जाते थे। इस रीति से आगरा दरवाजे से निकल कर बड़ा बाजार चौक, धान की मण्डी और दरगाह बाजार आदि में होकर ठौर-ठौर ठहरते, वेद-ध्वनि करते मलुसर सरोवर के श्मशान में स्वामी जी का विमान जा उतारा।

यह स्थान अजमेर शहर के दक्षिण कोण में एक पहाड़ी के नीचे है। और यही आज्ञा स्वामी जी की थी कि नगर के दक्षिण भाग में हमारा शरीर दग्ध किया जाय। जब वहाँ सब लोग स्वामी जी का विमान रख बैठे और संस्कारविधि में लिखे अनुसार वेदी बनाने का आरम्भ हुआ, तो उस परम कठिन अवसर में श्रीयुत पं० भागराम जी जज ने शोक-समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को धीरज बँधाने के अर्थ श्रीमान् अखिल-विद्या-निधान स्वामी जी महाराज को विद्या, परोपकार, देश-हितैषिता आदि अनुपम और अद्भुत गुणों की प्रशंसा में एक परमोत्तम व्याख्यान सुनाकर वहाँ पर एकत्रित हुए सहस्रों मनुष्यों को भित्ति-लिखित सा कर दिया।

वास्तव में इन महाशयों का यह सदुद्योग, साहस, वीर्य और पौरुष परम प्रशंस्य है, क्योंकि ऐसे समय पर जब कि बात कहना भी कठिन हो तो फिर व्याख्यान देना कैसा? कहते हैं कि उस समय पत्थर-सम हृदय भी दाडिमवत् विदीर्ण हो गये थे और फूट-फूट कर रुदन करते थे। तहाँ पर व्याख्यान पूरा करना शूरों का ही काम है। हा शोक! हा शोक! इसके अनन्तर पं० सुन्दरलाल जी ने भी अपना हृदय कठोर करके कुछ व्याख्यान करना चाहा और आरम्भ भी किया, परन्तु नहीं कहते बना। लाचार हिया हार चुप हो बैठे। इतने में वेदी तैयार हो गई और समस्त सत्पुरुष उसके चहुँ ओर घुमड़ आये। उन सबों ने मिलकर स्वामी जी के स्वीकार पत्रानुसार २ मन चन्दन, १० मन आम्रादि काष्ठ, ४ मन, घी ५ सेर, कपूर, २॥ बालछड़, आध सेर केसर, २ तोला कस्तूरी आदि संचित किये पदार्थ लगा कर, तैयार की हुई चिता को रामानन्द द्वारा प्रज्वलित कराय, संस्कार-विधि-लिखित वैदिक रीति से अन्त्येष्टि की। उस समय चिता जन्य सुगन्ध

से वह समस्त प्रदेश और समुपस्थितों का मस्तिष्क सुवासित हो गया था।

इस प्रकार इस विधान को समाप्त करके चिता पर चौकी-पहरा बिठलाकर सब लोग उक्त सरोवर पर स्नानादि कर अति शोकाक्रान्त सायं-काल को निज-निज वास-स्थानों पर गये। हा शोक! हा शोक! हा शोक!

दूसरे दिन अजमेर समाज ने स्वामी जी का हिसाब-किताब, वस्त्र पुस्तकादि पदार्थ और जो कुछ कि वेदभाष्य छपने के लिए तैयार हो चुका था, वह सब श्रीयुत मोहनलाल विष्णुलाल जी पण्ड्या को एक सूचीपत्र के अनुसार, जो स्वामी जी की पुस्तकों में मिला था, सम्हला दिया और जो सभासद् जहाँ कहीं के उस समय उपस्थित थे, उन्होंने उस सूचीपत्र पर अपने-अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस अवसर पर यह भी लिख देना परमावश्यक है कि श्री १०८ महाराणा उदयपुराधीश जी ने प्रशंसित पण्ड्या जी को श्रीमान् स्वामी जी की सेवा में भेजने के समय कह दिया था कि यदि जगद् गुरु महाराज का शरीर छूट जाय तो किसी प्रकार से वह चार-पाँच दिवस तक रक्खा जाय तो अतीव अच्छा होगा जिससे कि हमको भी उनका अन्तिम दर्शन हो जाय। परन्तु समयोपस्थित सभ्यों ने यह बात इसलिए स्वीकार नहीं की कि डाक्टर से चीरफाड़ करानी पड़ेगी सो यह बात अच्छी नहीं। अतः यह दाहादि सब कर्म इसी स्थान पर समस्त भक्त जनों ने श्री जी महाराज की आज्ञानुसार यथाविधि समाप्त किया। अतः पर देश देशान्तरस्थों का आक्रन्दन वृत्तान्त अवेक्ष्य है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीयतृतीयखण्डे परम प्रशंस्ययतिवर्याणां महाप्रस्थान और परमपदावगाहन कथाविवर्णनं नाम अष्टमो मयूखः॥

अथ नवमो मयूखः

बंधुगण! ऐसा लिखा देखा गया है कि परम पद-निवासी श्रीमान् स्वामी जी महाराज ने अपने महाप्रस्थान के दिवस, जब कि मध्याह्न काल से अच्छी तरह सावधान हो बैठे थे, किसी के इस प्रश्न के उत्तर में कि "श्रीमहाराज, आज आपका क्या हाल है?" प्रथम 'अच्छा' कहा; फिर कहा कि "प्रकाश और अन्धकार का भाव है।" इसका तात्पर्य समयोपस्थित मनुष्यों में से कोई कुछ न समझा और न फिर इस विषय में किसी ने उनसे कुछ

पूछा। अतः बुद्धिमानों के समीप विचारणीय है कि वास्तव में इस कथन से श्रीमान् पवित्रकीर्ति ने क्या बोधित किया।[1] परन्तु अब यहाँ मुख्य प्रकृत प्रश्न तो यह है कि श्रीमान पुण्यश्लोक शिखामणि श्री स्वामी जी महाराज महाप्रस्थान कर गए। पीछे यह समाचार नगर-नगरान्तरों में कब पहुँचा और तदनन्तर तत्रस्थों की क्या दशा हुई?

विदित हो कि इस महाप्रस्थान का समाचार अजमेर समाज ने तो उसी ३० तारीख की रात्रि को, जिसके कि अस्तमान के समय श्रीमान् जगद् गुरु महाराज ने लोकान्तर को गमन किया, तार द्वारा जहाँ-तहाँ भेज दिया था; परन्तु वास्तव में यह तार दूसरे दिन ता० ३१ अक्टूबर के प्रातःकाल को मिला। इस विलम्ब का कारण स्पष्ट यह है कि प्रथम तो स्वयं उक्त समाज ही बहु रात्रि तक उस परम दारुण शोक में डूब कर जामे से बाहर

---

१. मदल्प बुद्धि को तो यह भासित होता है कि हम लोगों के लिए यह उनकी अन्तिम वसीयत थी; अर्थात्, उस समय श्रीमान् कृपानिकेतन स्वामी जी महाराज को जो कुछ कि अपना हर्ष और शोकादि हमसे अति विस्तारपूर्वक कहना था, वह सब निःशेष उन्होंने यथावसर अपने इस अति अनुष्टुप कथन में धर कर स्पष्ट कह दिया। आगे जितनी जिसकी समझ और बुद्धि, उतना ही उस पर उसका विचारादि हो सकता है। बहुत नहीं तो इतना तो भी हम लोगों को परमावश्यक समझ लेना उचित है कि इस कथन से प्रथम श्रीमान् ने परम हर्ष के साथ अपना ठीक मृत्यु का समय आगामी सायंकाल दर्शाया, क्योंकि उसी समय प्रकाश और अन्धकार का भाव होता है। मानो साफ कहा कि हाल हमारा बहुत अच्छा, क्योंकि आज एक मास से पीछे पड़े हुए परम दारुण रोग से मुक्त होकर जाते हैं। फिर साथ ही उसके मानो अपना अत्यन्त शोक यह कह प्रकाशित किया कि भाई, हम हठात् जिस भारत को अँधेरे से प्रकाश में लाकर छोड़ जाने वाले थे, हा! वह अधबिच हो रहा और हम चले। हालाँकि ऐसी पूरी पूँजी (ब्रह्मचर्य-संवर्द्धित शरीर) हमने हाथ कर ली थी कि जिससे वैसा कर ही छोड़ते; परन्तु क्या करें, उसे व्यर्थ विश्वासघातकों ने लूट लिया, जिससे परतंत्र हो गया हूँ। तो भी तुमको सुचेत कर जाता हूँ कि हे प्यारो, अब तुम ऐसे ठौर पर बिछुरते हो कि यदि तनिक भी पीछे हटे, तो वहाँ उसी महान् अन्धकार का भाव है और आगे बढ़े चले आओगे तो पूर्ण प्रकाश के भाव में पहुँच कर अनन्तकाल मौजें करोगे। इसलिए खूब खबरदार होकर वह काम करना, जिससे मेरा यह परम असह्य शोक अति शीघ्र मिट जाय।

रहा। पश्चात् जब वह ज्यों-त्यों सावधान होकर लिखे, तो फिर यही तार-तारघरों के लेने-देने वाले बाबू लोगों को होता रहा। अर्थात् जो सुनता था, वही मानो धक्का खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिरता था। अब यह सावधान हो ड्यूटी करता है, तो खबर लेते-लेते लेने वाला ही मानो नदारद है कि देखो तो दोनों ही चुप। इस प्रकार लगातार यह तार डूबता-उछलता यदि प्रातःकाल होते-होते भी दूसरे दिन आ गया, तो भी यह अतीव सत्वर आया जानो।

हा! इसको तार कहूँ कि कोई विषधर उन्हार। आर्यों के प्राणों का हार कहूँ—पहुँचा जहँ-तहँ यह तार, तो हो गया वहाँ सब तार-कुतार—हो जिसका अतीव अपार विस्तार। तो क्यों कर लिखूँ उसे अब बिना आधार? पर है वह कथा बहुत हो विचित्र अरु पुरसार, अतः देखिये तनक बढ़-बढ़ उसके कुछेक अखबार॥

स्पष्ट वृत्तान्त तो यह है कि श्री जी—परित्यक्त शरीर की दाह-क्रिया अजमेर में होने से पूर्व समस्त भरतखण्ड में एकदम से हाहाकार पड़ गया और इसके थोड़े ही काल पीछे द्वीप-द्वीपान्तरों में यह महाशोक-सागर ऐसा फैला कि जिसका ठीक-ठीक वर्णन करना परम कठिन है।

बन्धुगण! जब कि श्रीमान् के लिए बहुत से जहाँ-तहाँ के समझदार अंग्रेज और मुसलमान आदि अनेक अन्य जातीय मनुष्यों के चित्त में इस शोक का पूरा असर हो गया और वे उस दिन त्राहि-त्राहि की आवाज भरने लगे, तो आर्यों का असीम शोकाकुल होकर आक्रोश और आक्रन्दन करना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अब इस कथन की विशेष पुष्टि करना साम्प्रत काल के लिए अपेक्षित नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष सब को अनुभव है तथा कहा भी गया है कि "प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्"। परन्तु आगामी काल के लिए अवश्य ऐसा उदाहरण अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से यहाँ आगे कुछ प्रमाण संचित कर रक्खे हैं जिनके अवलोकन से सर्वकाल प्रतीत रहेगा कि उस समय इस देश में यह एक ऐसे विद्वान् और देशानुरागी मनुष्य हो गये हैं कि जिनकी पवित्र कीर्ति से यह भूमण्डल यावच्चन्द्र-दिवाकर अलंकृत रहेगा।

प्रसिद्ध है कि समाचारपत्रों के सम्पादक लोग समस्त देशों में सर्व साधारणों के शुभचिंतक और प्रतिनिधिस्वरूप कहे जाते हैं। अतः उनमें से कुछ पत्रों के अन्तर्गत लिखा शोक-वृत्तान्त यहाँ उद्धृत कर दिखाया जाता है। जानना चाहिए कि इसी प्रकार ६ मास तक छेड़-छाड़ इस देश के हर

प्रकार के अखबारों में होती रही है। वास्तव में यह केवल शोक-संवाद नहीं, किन्तु उन जगत् पूज्य श्रीमान् के परम पवित्र गुणों का पूरा अनुवाद है। अतएव सर्वत्र सबने इसके लिखने का परिश्रम उठाया। इच्छा उनकी यह थी कि हमारे देश-निवासी सज्जन पुरुष आगे इनका अनुकरण स्वीकार करें। वही मनोरथ इस ग्रन्थकार का भी है।

(१) हिन्दीप्रदीप[1]

स्वामी दयानन्द का शोकवृत्तान्त

यह भी हम इस हिन्दुस्तान तक को अभागा ही कहें कि इसके ऐसे हितैषी परलोक-यात्रा के लिए दत्त-चित्त हो झटपट सिधार गये। सिवा कतिपय प्रतारक धूर्त ब्राह्मण और कोरे पण्डितों के, जो इनकी गुप्त नीति के मर्म समझने को सर्वथा असमर्थ हैं, और कोई प्रसन्न न हुआ होगा। आर्य-समाज की बाँह टूट गई, सरस्वती का भण्डार लुट गया, यहाँ के बिगड़ी समाज के संशोधन का फाटक ढ गया; यह इन्हीं महात्मा का पुरुषार्थ है कि भारतवर्ष के धर्म तत्त्व का सर्वस्व वेद, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मण भी केवल पाठ-मात्र पढ़ लेने के (अर्थ-ज्ञान की ओर से निपट मूर्ख थे) और कुछ भी न जानते थे कि इसमें क्या चील-विलार भरा है, सिवा 'मक्षिका-स्थाने मक्षिका' के, सो भी केवल पाठ-मात्र में अर्थ से क्या सरोकार! उसे सब जाति और चारों वर्ण के लोग समझने लगे। और अब बहुतों के मन में लगी है कि इस वेदरूपी अगाध महोदधि में गहरी डुबकी मार इसकी थाह लेनी चाहिये कि इसमें क्या-क्या रत्न भरे हैं। अतिरिक्त वेद के उद्धार के, हिन्दू समाज की सैकड़ों बिगड़ी बातों को सुधारने में भी कोई कल बल इन्होंने नहीं छोड़ रक्खा। 'कद्र मरदुम बाद मरदुम'[2]। सरस्वती महाशय के न रहने पर अब इनकी कदर लोगों को होगी। कच्चे जौहरी, जिन्होंने हीरा को काँच समझ रक्खा था, चाहे जो कहें, पर हम अंग्रेजी (मोटो) सिद्धान्त पर दृढ़ रह दयानन्द की सर्वतो भाव से सराहना ही करेंगे।

---

१. यह पत्र हिन्दी के विख्यात लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट के सम्पादन में प्रयाग से प्रकाशित होता था।

२. एक फारसी मुहावरा—जिसका अर्थ है "मरने के पश्चात् ही मनुष्य का आदर होता है।"

[२] प्रेरक 'हिन्दी प्रदीप', प्रयाग

हा ! आज भारतोन्नति कमलिनी का सूर्य अस्त हो गया ! हा वेद का खेद मिटाने वाला सद्वैद्य गुप्त हो गया ! हा दयानन्द सरस्वती, आर्यों की सरस्वती जहाज का पतवारी, बिना दूसरे को सौंपे तुम क्यों अन्तर्धान हो गये ? हा सच्ची दया के समुद्र, हा ! सच्चे आनन्द के वारिद, अपनी विद्यामयी लहरी और हितोपदेश रूपी धारा से परितृप्त भारत-भूमि को आर्द्र कर कहाँ चले गये ! हा, चार दिन के चतुरानन, इस असभ्यता-प्रिय मण्डली में आपने अपनी विलक्षण चतुराई को क्यों इस प्रकार सरल भाव से फैलाया ? क्या आप नहीं जानते थे कि काल कराल ने भारत को असाध्य आरत बनाने के निमित्त ब्राह्मणों से तपः-स्वाध्याय विद्या छीन, विषय-लंपट और शिश्नोदर-परायण बना दिया; क्षत्रियों को ऐसा चौपट और लतभर्द कर डाला कि वे बेचारे किसी काम ही के न रहें, वह धनुर्वेद वह अस्त्र-शस्त्र-विद्या, वह शूरता-वीरता, वह अमर्ष जो अग्नि की उष्णता समान उनका स्वाभाविक धर्म था, सो अब कहीं देखने-सुनने को भी न रहा। जिनके पूर्व पुरुषों की संगति से जंगल के रीछ और बन्दर भी सुधर कर बड़े सद्वीर और योद्धाओं की पदवी को प्राप्त हुए और देवताओं की कोटि में मिल गये, अब उन्हीं की सोहबत-संगति में वह विकार हो गया है कि बड़े-बड़े स्वाभाविक वीर प्रकृतियों को स्त्रैण किंवा क्लीब भाव सहज में प्राप्त हो जाता है। जहाँ वसिष्ठादि महर्षियों की शिक्षा और नीति विद्या का विचार होता था, तहाँ दाढ़ी-कत्थकों की कथा से कालक्षेप होता है। सो ऐसे कौतुकी काल कराल को तुच्छ जान अपने मुनियों की वृत्ति को निधड़क ही ग्रहण कर लिया—यह न समझा कि वह निष्ठुर निर्दयी काल आपकी प्रतिज्ञा और सत्य संकल्प को पूरा होने देगा या नहीं। हा, अब वे परोक्ष बल-दर्शक शृगाल-गण, जो तुम्हारे सिंह-नाद के भय से छिपते फिरते थे, आज ऊँचे टीले पर बैठ पूछ फटकारेंगे और वे उच्छिष्ट-भोजी पेटार्थू कौवे, जो अपने पेट के कारण तुम्हें वैरी जानते और काँव-काँव करते डोलते फिरते थे, सो सब कैसे आज मन-मगन हो आनन्द बधाई बजायेंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस अभागे भारत की भलाई और कल्याण के प्रयत्न में आपने अपने जीवन-पर्यन्त एक क्षण का भी अन्तर नहीं डाला। क्या महन्तों और मठाधीशों के समान आप भी सुखाश्रय और देहाराम नहीं हो सकते थे ? वैकुण्ठ पहुँचाने का बीमा और स्वर्गीय भोग-विलास की हुण्डी का ब्यौरा फैलाते तो हजारों-लाखों चेले चेलियों के तन-मन-धन को बात

की बात में आप आत्मसात् और समर्पण क्या नहीं करा सकते थे ? हा निर्लेप निःस्वार्थ शिक्षाप्रदायक हा बंधु, वात्सल्य-कुल-कुमुद सुधाकर इस नीच और खोटे भाव-भरे भारत देश में भटकते-भटकते आप कहाँ से आ गये ! हा स्वामी दयानन्द ! आपका यह पवित्र विग्रह यूरोप खण्ड के किसी देश में इस गुरु-भाव के साथ प्रकट हुआ होता तो जिस उन्नति-शैल के शिखर तक पहुँचाने की सीढ़ी आप बना रहे थे, उसको अवश्य पूर्ण कर देते और देश का देश आपका सहकारी और सहायक बन जाता। वे केवल आपके पवित्र नाम और सत्कीर्ति के ही संस्थापन का उद्योग न करते, वरन् अपने कर्त्तव्य-कर्म को उत्तरोत्तर ऐसा चमकाते कि एक दयानन्द-रूपी मूल प्रकाण्ड से सहस्रों दयानन्द-रूपी शाखा-प्रशाखा प्रकट हो जातीं और भारत-विघातक काक-शृगालों का क्षणिक प्रमोद, जो आप के अन्तर्धान होने का संवाद सुनकर उत्पन्न हुआ है, उसका अंकुर ही न जमता। आपका वह वेदार्थ क्षेत्र और अपूर्व सदाव्रत, जो आपने ब्राह्मणों की सोहाग-पेटारी से निकाल आर्य मात्र के लिए सुगम कर दिया है, कभी बन्द न होने पाता। हमको क्योंकर आशा हो कि आपके उस भारी बोझ उठाने और असिधारा-पथ पर चलने का फिर भी कोई साहस बांधेगा ? हम खूब जानते हैं कि आप उस निर्विवेकी विधाता के मुख में कारिख पोत गये हैं जिसने इस पवित्र भारत भूमि को सृज कर उसके योग्य सत्पुरुष न पैदा किया। हा भारत-भारती के बनराज केसरी ! इस उजाड़ बिजाड़-विपिन को सनाथ किये बिना क्यों इस वेग से ऊपर को उठ धाये ? क्या कोई पाखण्ड मत सुरलोक में भी फैला है जिसके निर्दलन के लिए आप झटपट वहाँ को सिधारे। सच-सच आपकी पवित्र आत्मा देवताओं के समुदाय-पति होने के योग्य थी। इसमें कुछ संदेह नहीं कि आप सरीखे देश-हितैषी महात्माओं का पवित्र विग्रह इस असार संसार में चिर काल तक नहीं रहता।

इस बात की प्रत्यक्ष साक्षी के लिए बहुत से ग्रन्थ विद्यमान हैं। जिस प्रकार मंदाग्नि और क्षुधारहित रोगियों के जठरानल धधकाने को सद्वैद्य लोग कटु, तिक्त, अम्ल रसों का व्यवहार करते हैं, ऐसे ही सद्धर्म-विमुख और तत्त्व-भ्रंशित जनों के मुरझाये चित्त को प्रफुल्लता के लिए मूर्ति-पूजा-खण्डन प्रभृति युक्ति को आप काम में लाये। आपके इस भाव को या तो प्राचीन महर्षिगण जानते होंगे जिनके हार्दिक अभिप्राय के मूल पर आपने इस कष्ट-साध्य व्यवसाय को उठाया था या वे देश-हितैषी उन्नत-हृदय जानते होंगे जिनके मानसिक सरोरुह पर देशोन्नति-किरणधारी भगवान्

भास्कर का प्रकाश पहुँच गया है। अब इस प्रसंग के समाप्त करने के पूर्व यह अल्पज्ञ अपना अभीष्ट खोल के कहता है कि जिस पुरुष के अनुताप से यत्किंचित् यह निवेदन किया गया, उसकी मेरी जान-पहचान केवल एक बार हुई थी। जिसको १३ वर्ष से अधिक बीते कि यहाँ वासुकेश्वर पर थोड़ी देर तक संस्कृत में बातचीत हुई थी। तब से स्वामी जी कई बार यहाँ पधारे पर मैं अपने को उनकी शिक्षा-जनित कर्त्तव्य के अयोग्य बंधनासक्त समझ फिर उनसे न मिला। अब उनके शान्त होने का समाचार सुन उन बातों को कह सुनाया जो 'आर्य' पद-धारियों को हृद्गत करनी चाहिये। अब सब सज्जनों से उचितानुचित की क्षमा माँग ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि भारत की जड़ान्धता कारापहारी दयानन्द सा दूसरा सूर्य जल्द प्रकट कर दे। हमको उस सत्पुरुष के शुद्ध भाव और सत्यसन्धानता पर विश्वास होता है कि उक्त सत्पुरुष के आरम्भिक कार्यों में कभी विघ्न न होगा। किन्तु जिन सज्जनों के भरोसे यह कार्य स्वामी जी छोड़ गये हैं वे लोग इस समर्पित कार्य को बड़ी उत्तमत्ता और उज्ज्वलता के साथ चमकायेंगे, यह कुछ नई बात नहीं है। सदैव से अच्छे-अच्छे लोग अपने प्रियतमों को अपना कर्त्तव्य-भार सौंपते ही आये हैं। देखिये, संध्या-समय भगवान् भास्कर जगदन्धकार-नाशन कार्य अग्निदेव को सौंपकर आप अस्ताचल को सिधारते हैं और सवेरे अग्निदेव सूर्य के भरोसे विश्राम करते हैं। इन दोनों की परस्पर मैत्री और सहायता का कभी विश्लेषण नहीं होने पाता। यह कौन नहीं जानता कि स्वामी जी को सत्शास्त्र-सद्विद्या का प्रचार और भारतवर्ष की मूर्खता अन्धकार-निवारण तन-मन से अंगीकार था, जिसको वे अपने अंग-अंग और रोम-रोम से समय-प्रतिसमय प्रकाशित कर चुके हैं। इस अवस्था में उन विद्वानों को जो संकेत मात्र से प्राणि-मात्र के भाव को बूझ सकते हैं, उनको वैकुण्ठवासी स्वामी जी के मुखकमल-निःसृत आशयों के मूल पर उनके अभिलषित भाव का समुत्थान कठिन नहीं है, किन्तु जहाँ ऐसे अविरल विद्वान् विद्यमान हैं कि यदि इस बड़े कार्य की पूर्ति के लिए वे नियुक्त किये जायें, तो निस्सन्देह अपनी विद्यामयी धारा से सींच उस वृक्ष में फल लगा सकते हैं जिसको उक्त सत्पुरुष प्रफुल्लित और हरा-भरा छोड़ गया है। कुछ अचरज नहीं है जिस कार्य-समर्पित मंडली के सभा-शिरोमणि यावदार्य-कुल-कमल-प्रभाकर श्री महाराणा उदयपुर प्रभुवर हैं,[1]

---

१. उदयपुर के तत्कालीन महाराणा सज्जनसिंह जी, जो परोपकारिणी सभा के प्रथम प्रधान थे।

वह कार्य अवश्य निर्विघ्न और उत्तमत्ता के साथ उन्नति-शैल की चोटी तक पहुँचेगा और सदा-सर्वदा सुरक्षित रहेगा।

[३] 'भारतबन्धु', अलीगढ़

हमको यह सुनकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ३० अक्टूबर, सन् १८८३ ई०, कार्तिक बदी ३०, संवत् १९४० को श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज वैकुण्ठ को पधारे। क्योंकि ऐसे-ऐसे विद्वानों के इस भूतल पर न रहने से इस भरतखण्ड का अभाग्योदय दिन-पर-दिन वृद्धि को प्राप्त होता दृष्ट पड़ने की संभावना का विषय होता है। श्री बालशास्त्री जी के मरण से जो दुःख हम भारतवासियों को हुआ था, उसी से हम सब लोग अत्यन्त व्याकुल थे। उसके कुछ दिन पीछे ही 'क्षत लवण न्याय'[1] से यह दुःख हम भारतवासियों को उपस्थित हुआ कि अब कोई ऐसा प्रबल साहसी, सभाचतुर, वावदूक, सर्वशास्त्र कुशल इस भारतवर्ष में दृष्ट नहीं आता जो स्वामी जी में निम्नलिखित गुण थे, उन गुणों का आधार हो। एक स्वामी जी महाराज की यह प्रशंसा दर्शनीय थी कि उन्होंने मुसलमानों को यह निश्चय करा दिया कि आर्य मत यवन मत की अपेक्षा सनातनिक और श्रेष्ठ है। बहुधा देखा गया कि बड़े-बड़े मौलवी, जो फारसी और अरबी के यथार्थ ज्ञाता थे, वे स्वामी जी की वक्तृता के सम्मुख मूक हो जाते थे और ऐसी उनकी बुद्धि की स्फूर्ति थी कि जहाँ किसी ने प्रश्न किया और उन्होंने उसी समय सप्रमाण और युक्ति-सहित उत्तर दे दिया। ऐसा कोई एक भी पण्डित उनके सम्मुख न आया जो उनके समान वावदूक और सभा-चतुर हो।

इसी प्रकार अंग्रेजों को भी उन्होंने यह दिखा दिया था कि तुम्हारे मत से भी आर्य मत श्रेष्ठ है। यह भी बहुत बार पादरियों के संग उत्तर-प्रत्युत्तरों से निश्चित हो चुका था। इनकी विद्वत्ता की प्रशंसा विलायत आदि उत्तर देशों में ऐसी हुई कि आज तक किसी विद्वान् की नहीं हुई और वेदों की टीका भी आधुनिक किसी पंडित ने नहीं की; यद्यपि वह कहीं-कहीं हमारे पूर्वाचार्यों की बनाई हुई टीकाओं के प्रतिकूल है।[2] तथापि

---

१. 'कटे पर नमक छिड़कना'।

२. स्वामी दयानन्द का भाष्य सायण, महीधर आदि याज्ञिक पद्धति के भाष्यकारों के मत से निश्चय ही प्रतिकूल है क्योंकि वह आर्ष प्रणाली के अनुसार लिखा गया है। —सम्पादक

जिसकी हम प्रशंसा करते हैं, उनकी उस विद्वत्ता का प्रदर्शक तो अवश्य है। इससे हम भारतवासियों को भारत-भूमि का भूषण ही स्वामी जी को समझना चाहिये, परन्तु काल बड़ा बलवान् है जो ऐसे-ऐसे ग्रहों को भी ग्रस कर डकार नहीं लेता।

(४) 'शुभचिंतक', शाहजहाँपुर

ओ३म्, छंद शिखरिणी। अहो अनरथ हुइगो, भारत हितैषी चलि बसो। प्रभाकारी जग को, श्रुतिपथ-उधारक छिप गयो। सकल नर नग चलिगो, सतयुग-प्रचारक उठि गयो। अहो हा हा हा हा, स्वामी हमारो चलो गयो ॥ १ ॥ महायोगी ध्यानी, ज्ञानी बखानी हरि गयो। पताका भारत को, सुन्दर मुकुटमणि गिरि पड़ो। सकल जगहितकारी, सुरपुर-बिहारी हुई गयो। अरे स्वामी हमारो, बुधगण विमल कर चलि गयो ॥ २ ॥ जगत् उन्नतिकारी, पूरण ऋषीश्वर बुटि गयो। हमारे हियतम के रवि हाय अन्तरहित भयो। महारात्रि जड़ता जलनिधि उतारक डूबि गयो! अरे हा हा हा हा स्वामी हमारो उड़ि गयो ॥ ३ ॥ सकल प्राणी जगत् के तन बसन सब धारण किये। धुवै टूटै फाटै-यक दिन गिरे संशय नहीं। समय पै जो फाटै-कोई तेहि सोच न दुख भरै। भरी वय में स्वामी निज कृति परित्यज्य भगिगो ॥ ४ ॥ जुओधपुर में जाकर श्रुति मत कथा बहु विधि कही। पढ़ायो भूपति को उत्तम प्रथा राजपद की। छिपे सारे पोप उड गण यथा चन्द्र लखि कै। सुनामी श्री स्वामी अमरपुर-धामी उड़ि गयो ॥ ५ ॥ सुनि ऐसी वार्ता प्रोहितन तिनको विष दियो। खुली तिनकी जड़ता कल्पित प्रथा दर्श होयगो। लखी जीविका जाती दुर्मति अधर्मी करि गयो। दियो विष हा हा हा स्वामी हमारो चली बसो ॥ ६ ॥ व्यथित भी जब स्वामी आबू पहाड़हि चढ़ि गयो। न देखी अब स्वास्थी पुनि आय अजमेरहि धायो। गरल दुस्सह पीडा दग्धो शरीरा सब विधी। दिवाली की संध्या विकसित सु स्वामी तन तज्यो ॥ ७ ॥ शून्य श्रुति ग्रह इन्द्र[1] विक्रम सुमंगल दिन रहयो। तथा ३० अक्टूबर सन् गुण अठा अष्ट शशि[2] मैं सजे मंगल आरति सब नगर फैरें मन मरें। मनावें ईश्वर को,

---

१. अंकानां वामतो गतिः के अनुसार इन्द्र १, ग्रह ६, श्रुति ४ शून्य अर्थात् संवत् १६४० वि०।

२. अंकानां वामतो गतिः के अनुसार गुण ३ अष्ट ८ अठा शशि १ अर्थात् सन् १८८३ ई०।

स्वामी किसी विधि नहीं रह्यो ।। चा न पूरयो श्रुति अर्थ जो दुख न मेट्यो मन चहो। रहो कांक्षा चित्त में जग जनक तिनको हरि लियो। तजत तन निज कार्या पूरण अखंडहि दै गयो। पुरै मन सातेरी यह कहि सुस्वामी दुरि गयो ।। ६ ।। लगाये जे वृक्ष सीचो सुधा प्रेम रस सों। बढ़ै फुलै पाकैं शुचि घरैं जग भल करैं। दृढ़ व्रत हौं श्रुति में, कांक्षा मेरी केवल रही। करिय पूरण देवा मोक्षहिं दयानन्द सुल हैं ।। १० ।।

[५] मध्यप्रदेश विलासपुर समाचार

तीस अक्टूबर अठारह सौ तिरासी सन् कार्तिक अमावस कृष्ण भौम वर्तमान भो। उन्नीस सौ चालीस के संवत् में अस्त समय देस-देस चारहु दिसि दीप दीप्यमान भो ।।

ईश्वर का ध्यान संध्या सुन्दर विचार ताही समय सन्मुख संतिष्ठ सुर विमान भो। जहाँ वामदेव व्यास आदि गये ज्ञानी तहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती को पयान भो ।। १ ।।

कौन विधि ऐसे व्याख्यान श्रवण होंगे अब, वैदिक सत्यार्थ सहित वाणी कौन कथैगो। शास्त्र वेद सिंधु मध्य मेधा निज मंदिर सों, कौन है प्रतापी जो निर्भय ह्वै यथैगो ।।

कैसे श्रुति सार को होय सत्य युक्त अर्थ जालिन मतवादिन को कैसे मत नथैगो। कैसे वेद प्रकाश की हो आस हमैं स्वामी सरिस विद्या को विभाकर ह्रू अथैगो ।। रामप्रकाश मि० पु०

सोरठा

धन्य ब्रह्म ऋषि राय स्वामी दयानन्द सरस्वती।
तो रहे समान सुत पाय मोहि समान हो जगत् को ।।
गयो मोहि बिलगाय वेगि बहुरि आवहु कसन।
दीन हीन निरुपाय देखहु भारत दया कर ।।

चौपाई

आर्यावर्त कर लगहु गुहारा। हे जगदीश शरण दुख भारा ।।
यहि ते बड़ दुख को जग अहई। कहत सुनत पाषाणहु द्रवई ।।
बस सहस द्वै तुम्हरी देवा। सहि दुख कठिन कीन्ह मैं सेवा ।।
दया लागि दीन्हेउ दुख नासी। पूत सपूत एक गुण रासी ।।
स्वामी दयानन्द सरस्वति सोई। तन मन धन पर स्वारथ जोई ।।

निसि बासर तजि कर मम कल्याना । सपनेहु कीन न कारज आना ।।
रहा एक कुल भूषण मोरा । भक्ति सिरोमणि पुनि प्रभु तोरा ।।
सोऊ हरि लीन्हेउ लागन वारा । मोहि सम है को फूट कपारा ।।
अहो देव मैं काह बिगारा । दुख पर दुख मोहि देहु अपारा ।।
एक रहा मैं आपुहि मारा । रामकृष्ण शंकर दुख भारा ।।
दयानन्द दुख फाटत छाती । अब किमि धीर धरौं दिनराती ।।
पाय दयानन्द मंगल मूला । राम कृष्ण शंकर दुख भूला ।।
धन्य-धन्य सुत धन्य प्रभावा । धन्य प्रताप चहूँ दिसि छावा ।।
धन्य धरी सुत तव अवतारा । धन्य धाम गुजरात उदारा ।।
विरजानन्द धन्य गुरू सोई । धन्य स्वामी महिमा नहिं गोई ।।
लुप्त वेद सह भाष्य उबारे । किये लोक बिनु शोक सुखारे ।।
रही चहूँ दिसि छाय समाजा । आर्यसमाज सुमंगल साजा ।।
कठिन समय पुनि अस करतूती । धन्य तोर यश केर विभूती ।।
सबहिं भाँति कीन्हेऊ हित मोरा । सुफल जन्म जग भा सुततोरा ।।
सब विधि कीन्हेउ मम कल्याणा । तजि अकेल मोहि कीन्ह पयाना ।।
की अस आज आर्य जग मांही । सुत तुव गवन नयन जल नाहीं ।।
महा शोक मोहि दीन्हेऊ ताता । को सक टारि जो भाषि विधाता ।।
शीघ्र प्रभू लीजै सुधि मोरी । मैं पुनि विनय करौं कार कर जोरी ।।
मोर लाज अब तुम्हरै हाथा । मोहि अनाथ करु करहु सनाथा ।।
तजि तुव शरण जाव कत स्वामी । त्राहि त्राहि प्रभु तोहि नमामी ।।

सोरठा—सब मिलि आर्य सुजान करहु ईस यह बीनती ।
दीन बन्धु भगवान् भारत कर पति राखिये ।।
भारत अति अकुलानि बेगी सुनिय आरत विनय ।
तुम सम जग को आन जांय शरण जेहि जांचिये ।।

(६) महद्राजसभा उदयपुर[1]

---

१. यह सभा उदयपुर राज्य की सर्वोच्च प्रशासक सभा थी । इस के पत्र सज्जन कीर्ति सुधारक (यह उदयपुर राज्य का राजपत्र था) में उक्त पद्य प्रकाशित हुए थे ।

दोहा—नभ चव ग्रह शशि[1] दीप दिन दयानन्द सह तत्व।
वय त्रेसठ[2] वत्सर विच भयो तन पंचत्व ॥ १ ॥

मनहरन कवित्त

जाके जीह जोर तें प्रपंच फिलासफिन को ग्रस्त सो समस्त आर्यमंडल तें मान्यो मैं। वेद के विरूद्धि बुद्धि सत्य के निरुद्धि सदा मंद्र भद्र आदिन पै सिंह अनुमान्यो मैं ॥ ज्ञाता षट् शास्त्रन को वेद को प्रणेता जेता आर्य विद्या अर्क गत अस्ताचल जान्यो मैं। स्वामी दयानन्द जू के विष्णुपद प्राप्त ह्व ते पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यो मैं ॥ २ ॥ (यह काव्य साक्षात् श्रीमान् महाराणा साहब विरचित है।)

योग को अगार गिरधार दृढ़ आसन को शिक्षक को त्रिदिवस सिधायगो। कुटिल कुराहिन को वाम मत चाहिन को हाय पशु हायन को इष्ट दिन आइगो। कहें जयकरण चारवर्ण के विवरणन को धर्म निधि दयानन्द परम गति पायगो। तीन वेद शासन को सुमति प्रकाशन को आज सत्य भाषण वासन विलइगो ॥ ३ ॥ क्षीर नीर आरस अनारस मिलान भये पूरन परीक्षा पार क्यू न भिन्न करतो। विधि से विवेकी बुध संसय विथा के बीच धार धन्य उत्तर हिय में सार धरतो। चारवाक हिंसक चबाय चुम चुम चुगल में दयानन्द द्वन्द्व फन्द कबहूँ न परतो ॥ ४ ॥ रहते धरे न मोती मंत्र वेद वारिध के राजहंस मण्डल न तरतो ॥ कविराज श्यामलदास जी सार षट् शास्त्रन को निगम अधार नित्य पार परलोक है असार जग करि गयो। पसुअन को पाही और कुटिल कुराही दाही सत्य को सदा ही साही नाक नेह धरि गयो। कहे कृष्ण दयानन्द सुमति सुधानी नामी नाम वामी क्रूर कामीन को साल रूप टरि गयो। हाय हित आर्यन को बहि के प्रवाह बीच आज वेद वारिध को सेतु सो बिखर गयो ॥ ५ ॥*

(७) सम्पादक बनारस प्रेस, कवि केदार शर्मा

---

१. अङ्कानां वामतो गतिः के अनुसार नभ ०, चव ४, ग्रह ९, शशि १ अर्थात् १९४० वि०।

२. स्वामी जी की आयु स्वर्गवास के समय ५९ वर्ष की थी, इस पद्य में ६३ वर्ष की बताई गई है जो गलत है।

* पद्य संख्या ३ बारठ जयकरण, पद्य संख्या ४ कविराज श्यामलदास तथा पद्य संख्या ५ बारठ कृष्णसिंह रचित है।

सोरठा—हाय हाय हा काल तोसे बस कछु ना चले।
बड़विक्रम दस भालु ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ १ ॥
महा धनुर्धर धीर अस्त्र कला मंह कोऊ न भे।
जस अर्जुन वर वीर ताहूँ कह तुम भक्षिगो ॥ २ ॥
करण द्रोण कुरुराज भोज परीक्षित विक्रम।
रघु नृप पांडु दराज ताहू कहं तुम भक्षिगो ॥ ३ ॥
ऐसे समय भमार जुगल वीर प्रगटत भये।
सर जंग सर सालार ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ४ ॥
दाया केर निधान दायानन्द सरस्वती।
वक्ता वेद प्रधान ताहू कंह तुम भक्षिगो ॥ ५ ॥

दोहा—दयानन्द सरस्वती गुर्जर कुल अवतंस।
अब ही थोड़ी उमर महं क्यों तन कियो बिधंस ॥ १ ॥
कै प्रतिमा पूजनहि तैं सुर पुर होत विचार।
ता खण्डन करि बेहि ते गये शक्र दरबार ॥ २ ॥
कै नर पुर सब जीति कै सुरपुर जीतन हेत।
केंचुल इव तन त्यागि कै भागेउ कृपा निकेत ॥ ३ ॥
कै कुछ मन शंका हुई वेद अर्थ के मांहि।
सो पूछन हित चलि गये सत्वर ब्रह्मा पाहि ॥ ४ ॥
दायानन्द सरस्वती देशोन्नति हित आप।
जितो परिश्रम करि गये तितो तुम्हारे ताप ॥ ५ ॥
अब तो पण्डित अस अहहिं लिखत व्यवस्था झूठ।
धर्माधर्म गुने नहिं गथ चाहत हैं मूढ़ ॥ ६ ॥
तुम तो चन्दा करि किते विद्यालय थित कीन्ह।
सज्जनसिंह महेन्द्र कहँ सभाध्यक्ष करि दीन्ह ॥ ७ ॥
गुन ग्राहक उपदेस बड़ जस कीन्हेउ सन्मान।
खान पान द्रव्यादि तें कोऊ नृप नाहि जहान ॥ ८ ॥
स्वामी जब लों कित रहे भारत भूमि मझार।
सिंह सरिस गर्जत रहे, शंकित शशक अपार ॥ ९ ॥
मूरख मुख भंजन किये जग बकता बड़नाम।
कितने सन्मुख भे नहीं समुझि सारदा धाम ॥ १० ॥
सज्जन मन रंजन करत भंजन मत पाखण्ड।
दिन दिन कीरत गाइहैं भल जन भारत खण्ड ॥ ११ ॥

कवित्त—

चारिहू दिशान नगरान मह जाय जाय,
पंडितन हेरि वाद करि के प्रचारे हैं।
पण्डित विवाद मांहि होयेंगे परास्त,
जेते तेते मन सो हैं करि सौंहन निहारे हैं॥
बगर्‌यो अपार जस सारे नगरान मांहि,
विजय वैजन्ती फहरात हिंद भारे हैं॥
विद्या चौदह निधान वक्ता महान वेद,
स्वामी दयानन्द सम नांही होन वारे हैं ॥१॥

उर्दू पत्रों द्वारा प्रदत्त श्रद्धा सुमन

(८) 'देशोपकारक', लाहौर

जब कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज इस जहान फानी से रहलत फरमाने की खबर वहशत अस्त सुबर्रावे ३० अक्टूबर सन् ८३ बजरिये तार आर्यसमाज मुल्तान में पहुँची तो फौरन मातिमी नोटिस बगरज इजहार रंजो अलम जारी की गई। मुताबिक उसके एक बड़ा मजमा समाज के मकान में जमा हुआ जिसमें अलावा मेम्बरान समाज के बाशिन्दगान शहर अहल हिन्दू व अहल इस्लाम व क्रश्चन शामिल थे। उस वक्त सबसे पहले एक दूकानदार ने बावजूद न होने मेम्बर समाज निहायत सोज व गुदाज़ से स्वामी जी महाराज के औसाफ हमीदा बयान करके निहायत रंज निस्बत वफ़ात उनके जाहिर किया बाद जां लाला चंदा सिकरैरी व काशीप्रसाद वाइस प्रेसीडेंट वगैरह चन्द साहबान ने अपनी ऐसी पुरसीने तकरीरें सुनाईं कि जिनसे तमाम हाजिरीन जलसा फूट-फूट कर रो उठे और समाज निहायत आह बज़ारी से बरखास्त हुआ। इस तौर पर कई तारीखों में यह मातिम वहाँ होता रहा और उसमें हिन्दू व मुसलमान बराबर जमा होकर गमगीन होते रहे। बतौर नमूना यहाँ हम मुन्शी वाजिद अली साहब सेक्रेटरी अंजुमन इस्लामिया का एक मजमून जो उन्होंने लिखा हुआ सुनाया था बमजिन्स ही हवाले कलम सवाने रकम करते हैं—

ऐ आर्यावर्त तेरी बद किस्मती पर मुझे रोना आता है। ऐ आर्यावर्त तेरी यतीमी पर मेरा दिल खून होता है। ऐ आर्यावर्त तेरी बेकसी पर मुझे गैरत आती है। ऐ आर्यावर्त तेरी बेपरोवाली पर मेरा दिल कुम्हलाया जाता है। कैसी जल्दी तेरे प्यारे के सर चश्मे को बन्द कर दिया गया। ऐ खुदा

क्या, तुझे यह मंजूर न था कि हम शीर ख्वार परवरिश पायें, ऐ ख़ुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम दुनिया के रफ्तार के साथ उठना सीखें। ऐ खुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम इन वाही और तबाही फंदों से निकलें। ऐ खुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम बेजाबे वजह बेजरूरत और बेसूद कयूद से रिहाई पावें। ऐ खुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम उन वाहियात रसमियात की बन्दों से निजात पायें। ऐ ख़ुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम आपस के निफाक को दूर करें। ऐ खुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम अपनी-अपनी नवा को अपना भाई समझ कर उनसे मुहब्बत करना सीखें। ऐ ख़ुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम सत्‌धर्म को फिर सीखें। ऐ ख़ुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम अपना खोया हुआ नाम फिर हासिल करें। ऐ खुदा क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम उस सत्‌धर्म को सीखकर तेरी उन आला न्यामात की कैफियत उठायें जो तूने अपने बंदों के वास्ते मखसूस की है। नहीं-नहीं यह सब कुछ तेरी मर्जी के मुताबिक और तेरी मंशा के मुआफिक हो रहा था। फिर क्यों ऐ ख़ुदा तूने हमको यह लख्त इस तरह बेसरो सामान और बेमान कर दिया। यानी हमारे सच्चे हावी और हादी को स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज की जो हमें यह सब कुछ सिखाते थे ३० तारीख अक्टूबर के ६ बजे शाम के बुला लिया। दिवाली की रात गो मसनूई चिरागों से रोज रोशन है लेकिन हकीकी आफताब गरूब हुआ। हम बिलकुल नादान थे। वह हमें हर एक चीजें शनाख्त करता था। हम कम ताकतों से उठ नहीं सकते थे। वह हमें उठा सकता था। हम बेमाइगी इल्म से बात नहीं कर सकते थे, वह हमें बोलना सिखाता था। हम एक दलदल अजीम में फंसे हुए थे, वह हमें उसमें से निकालता था और खुश्क जमीन पर लाता था। हम रसूमात की बेड़ियाँ पैरों में और तअस्सुब की हतकड़ियाँ हाथों में दिये हुए थे, वह हमको उनसे निजात देता था। हम अपने भाइयों से हिकारत करते थे, वह हमको रिफाकत सिखाता था। हम अपनी आंखों पर परदे और दिलों पर मुहरें रखते थे, वह हमें बताता था कि सत्‌धर्म के वास्ते जाहिरी जहाज फिजूल है—हम उस गलत इम्तियाज को सवाब जानते थे, उसने उसको ऐब साबित कर दिया। हमने अपना नंग व नामूस गंवा दिया था, वह हमें फिर दिलवाना चाहता था। ऐ ख़ुदा हम तुझ से बहुत दूर हो गये थे। वह हमको तुझसे मिलाना चाहता था। लेकिन ऐ ख़ुदा, तू ही जाने तेरे दिल में क्या आई कि तूने उसको हमसे इतनी जल्दी जुदा कर दिया, तेरी बातें तू ही जाने, अब भी रहम कर।

(९) विक्टोरिया पेपर, स्यालकोट

शेर—अपने रोने के में लिखने हैं दफ्तर सैकड़ों।
ऐसे में तैयार कर मौजों के दफ्तर सैकड़ों॥

एशिया कौचक[1] हमें मुख्तलिफ जलजलों के आने और जावा के आतिश फिशां पहाड़ों के फट जाने से स्वामी दयानन्द सरस्वती का इन्तिकाल कम अफसोस की जगह नहीं है। क्योंकि ऐसे लायक शख्स का जीना जिसका सानी इल्म संस्कृत में कोई न हो लाखों आदमियों की जिन्दगी पर तरजीह रखता है और एक ऐसे शख्स का मर जाना जो ऐसे मजहब के उसूलों से ताल्लुक रखता है जो हिन्दोस्तान में ज्यादातर फैला हुआ है, लाखों आदमी के मरने से ज्यादा अफसोसनाक है जिन लोगों का यह ख्याल था कि जो सुर्खी सुबह और शाम के वक्त मशरक और जनूँब की तरफ नजर आती है कोई न कोई आफत जरूर ढायगी। उनका यह खयाल सही निकला क्योंकि इससे बढ़कर हादिसा हिन्दू गिरोह पर और क्या होगा। यह हिन्दुओं की कम नसीबी है कि स्वामी साहब जैसा शख्स उन की नजरों से जल्द गायब हो गया। स्वामी साहब की यह आरजू कि हिन्दू या आर्य अपने मजहबी असूलों से वाकिफ हों और उन्हें मालूम हो कि वेद मुकद्दस उन्हें क्या हिदायत देते हैं और उन्हें अपना कैसा तरीक बनाना चाहिए, एक ऐसी कोशिश थी जिससे हिन्दुओं के लिए निजात का दरवाजा जल्द खुलने वाला था और वे जल्द तारीकी के खियालात को छोड़ कर अपने खियालात रोशन बनाने वाले थे। और उनके खाने दिल में वह दानियत के चिराग जलने वाले थे। अफसोस है कि यह हसरतें हमारे दिल की दिल में रह गई तो हाय हस्ती।

शेर—तिफली की गिर्य का यह खुला हाल वक्त मर्ग।
आगाज ही में रोते थे अंजाम के लिए॥

कौन नहीं मरा और कौन नहीं मरेगा, मगर ऐसे शख्श का मरना जिसकी पैदाइश सिर्फ हिन्दुओं के राहरास्त दिखलाने के वास्ते हुई थी। बेशक हादिसा जां का वाकह है और हिन्दू इस वाकह को सुनकर जिस कदर मातिम करें बजा है।

शेर—अपने रोने की हकीकत,
ऐ सब कागज अबरी से लिखवाते हैं हम॥

---

१. मध्य एशिया।

स्वामी दयानन्द नाम के संन्यासी नहीं थे, बल्कि हकीकत में संन्यासी थे। और उनको किसी किस्म का तमानफसानी नहीं था। तमा का न होना कोई छोटी सी तारीफ नहीं है बल्कि ऐसी तारीफ है कि जो शाज व नादिर ही किसी खुशनसीब के हिस्से में आती है। कहने को तो सब ही काने और परहेजगार होते हैं। हाथी के दांत दिखाने के और होते हैं और खाने के और। हम इस वैशाख अर्थात् अप्रैल महीने में जब उदयपुर की सियाहत कर रहे थे तो वहाँ मोतबिर लोगों की जबानी सुना था कि स्वामी साहब को जो उस जमाने के करीब वहाँ तशरीफ लाये थे, दर्बार उदयपुर की तरफ से दो हजार रुपया पेश किया गया था मगर उन्होंने उसमें से सिर्फ किराये का खर्च कबूल किया और बाकी तमाम रुपया उस सभा के अगराज के पूरा करने वाले सरमाये में शामिल कर दिया जो उनके इन्तिकाल के बाद हिज हाइनैस महाराणा साहब बहादुर वाली उदयपुर की सरपरस्ती में उनकी वसीअत मुताबिक कार्रवाई करेगी। और इसका जहाँ तक हमको मालूमात का जरीखा हासिल हुआ है यह मन्शा होगा कि वह उनकी तसनीफात को मुस्तहर करवा कर आवाम में फैलायें। और वेदों के तर्जुमों को करवाएँ। कौन कह सकता है कि स्वामी साहब की इस कार्रवाई की पैरवी आसानी से हो सकती है, यह नफस इन्सान को दम लेने नहीं देता। दम-दम में उसके खयालात को बदलता रहता है। मगर जो शख्स इस्किलास के साथ एक नई रविश पर कायम रहे और खुसूस ऐसी रविश पर जिस पर कायम रहना खुदा ताला हर एक इन्सान को नसीब करे, वह किस कदर मुबारिक समझा जाता है। हम जानते हैं कि इस सभा के प्रेसीडेण्ट वह इल्म दोस्त मुल्कदार फरमां खां हैं जिनकी रियासत राजपूताने में अव्वल दरजा रखती है और खुदा के फजल से वह बजात खुद सभा के अगराज की ताईद के लिए उसकी कार्रवाइयों में बहुत सा रुपया खर्च कर सकते हैं। मगर ताहम जरूरत इस बात की है कि का० दे० शाखें हर एक प्रेसीडेन्सी यानी हर एक सूबे के तमाम बड़े-बड़े शहरों में कायम हों जो स्वामी साहब के अगराज के पूरा होने की कोशिश करते रहें।

इस सभा के मेम्बरों की तादाद में निहायत कसरत हो बल्कि जो हिन्दू हो वह अगर दो आना माहवार इस सभा को इनायत करने की हिम्मत रखता हो तो भी वह इस सभा का मेम्बर बनाया जावे ताकि स्वामी साहब के भी हिन्दू मजहब उसूलों और वेदों की मन्शा और अहकाम

से अवाम को आगाह होने के सामान जमा होते रहें। और स्वामी साहब के ख्यालात और उनके मालूमात से हिन्दुओं को वाकिफ होने का मौका मिले। हम ख्याल करते हैं कि हिन्दू साहिबान का० दे० साबित हो कि जो स्वामी साहब नजरों से गायब हैं मगर उनके कायम मुकाम इण्डिया के हर एक हिस्से में मौजूद हैं और हिन्दू मजहब या आर्य मजहब की तरक्की के सामान जा बजा मुहैया कराए जाते हैं। जो लोग जाति तअस्सुब रखते हैं या जिनकी आंखों पर खुदी और गफलत का पर्दा पड़ा है वह स्वामी साहब की हयात में भी मुख्तलिफ रहे और अब भी उनको हमारी इस दर्ख्वास्त के मानने में तअम्मुल होगा। मगर जो लोग हकीकत हाल से आगाह हैं या समझते हैं कि स्वामी दयानन्द क्या थे या उनके ख्यालात हमारी भलाई का किस कदर मुम्बा हैं या उनकी कोशिश हमारी तरक्की और बहबूदी के लिए कैसी थी या उनके जा बजा फिटकर बात करने से क्या मुराद थी, या वह किस नियत और ख्याल के आदमी थे, या उन्हें हिन्दुओं को किस आलम का दिखलाना मंजूर था, वह हमारी इस दर्ख्वास्त से इत्तिफाक करेंगे और उनकी जा बजी यादगारें कायम करने के ख्वाहां होंगे। और चश्मनम होकर कहेंगे कि या इलाही हम पर यह क्या गजब नाजिल हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती हमको आँखों के सामने नजर नहीं आते या हमारी ही बीनाई में कुछ कसूर है या तेरी कुदरत ही का यह जहूर है। स्वामी जी के स्वर्गवास होने की खबर सुन हमारे आंसू नहीं थकते। कलेजे को धड़कन सी लगी है मगर करें तो क्या करें कोई चारा भी है। आखिर यह शेर पढ़ते हैं और हैरानी से पस्त बदीवार का आलम है : बुजुर्ग परवरिश फरमा पहले दाग देते हैं।
यह कह कि कौन घर खाली रहा मातिम से॥

(१०) आर्य समाचार, मेरठ

मरना यह किसका जान से बेजार कर गया।
मातिम में मर रहे हैं कि यह कौन मर गया॥

जिस वक्त यह खबर वहशत असर बजरिये तार बर्की के इस समाज में आई कि उस फाजिल अजल और आलिम बेमिसल फखर मुल्क और मुहिब कौन यानी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० के शाम को ६ बजे इस जहान फानी से रहिलत फरमाई जमाना आँखों में स्याह हो गया और सर्माया होश बहवास यक कलम तबाह।

कौन सा अन्दोह व गम था जिसने मुंह न दिखाया और कौन सा रंज व अमल था कि जो सामने न आया। खबर के सुनते थे छक्के छूट गये, लेने के देने पड़ गये। फर्त इजतिराव से कलेजा मुंह को आने लगा। जिगर जो हकीकत में पाश-पाश न हुआ मगर पाश-पाश होने से उसका रुतबा बढ़ गया सैल अश्क आँखों से जारी हुए और गशी की सी हालत पक बयक जारी-गो जिन्दा थे मगर मुर्दों से बदतर हो गयें, जीते-जागते थे लेकिन बिस्तर अदम पर पाँव फैला कर सोने वालों से बढ़कर।

नजम

अजब दर्देस्त अन्दर दिल अगर गोयम जवां सोजद।
बगर दम दर कशम नरसम कि मगजे उस्तरवां सोजद॥
कल यह सुनते थे कि वे बिस्तर से उठ सकते नहीं।
आज यह ताकत हुई कि जहाँ से उठ गये॥

नौहा

हर लब पै आह नाल ओ शोरो बुका है आज।
पीरो जवानो हिफ्त हर यक गम जदा है आज॥
आती है सदा हर तरफ से हाय हाय की।
हर यक मकां हिन्दु का मातिम सरा है आज॥
है आज चश्मों से आँसुओं की नदी बह रही है हाय।
लब और दहां पै नालए वा हसरता है आज॥
छाती को पीटता है कोई दोनों हाथ से।
दीवारों दर से सर को कोई मारता है आज॥
अखबार और रिसालों के कालिम स्याह हैं।
मजमून कुल जहाँ का दिक्कत फिजा है आज॥
निकले थी भाफ रोज जहाँ अग्निहोत्र की।
आहों का धुवां उस जगह से उठ रहा है आज॥
वेद ध्वनि का शोर जहाँ होता था बुलन्द।
गुल नागओं फिगां का वहाँ मच रहा है आज॥
स्वामी जी आज हाय जमाने से उठ गये।
क्यों कर न हम रोयें दम कि गमे जां गजा है आज॥

उलमायक कमाल का सिर ताज मिट गया।
हिन्दोस्तां का नामोनिशां आज मिट गया ॥

अफसोस आज हिंद की किस्मत उलट गई।
तकदीर पलटा खा के फिर उलटी पलट गई ॥

कुछी उन्नति ने पांव निकाले ही थे मगर।
आगे न बढ़ने पाई कि पीछे को हट गई ॥

क्या छाई थी तरक्की इकबाल की घटा।
लेकिन तर शुह भी न हुई थी कि फट गई ॥

जिस पर हमारी सारी उमेदें थी मुन्हिस्सर।
अफसोस है कि आज वह बुनियाद फट गई ॥

आनन्द सुख जमाने से मालूम हो गये।
गंजी नये निशान की पूंजी निबट गई ॥

वह हादिसा हुआ है जमाने को आज हाय।
मातिम में जिसके चर्ख की छाती भी फट गई ॥

जागे हैं सारी रात झपकते नहीं पलक।
इस जो गम में तारों की भी नींद उचट गई ॥

किश्ती इल्मो फजलो फनूनो कमाल हिंद।
लगकर किनारे हाय फिर अन्दर रपट गई ॥

अफसोस आज स्वामी जी हमसे बिछुड़ गये,
हम हाय हाय दुनियां में बसकर उजड़ गये ॥

गम में तुम्हारे लब पै है जो हाय स्वामी जी,
रोते हैं सारे पीरो जवां हाय स्वामी जी ॥

हम किस तरह से जब्त करें दूद आह को,
सीने में उठ रहा है धुंआ हाय स्वामी जी ॥

छोड़ोगे इस तरह से हमें बीच धार में,
हरगिज न था यहाँ हमको गुमां हाय स्वामी जी ॥

तारीक है जमाना हमारी निगाह में,
सूना पड़ा है सारा जहाँ हाय स्वामी जी ॥

हम भी किसी तरह वहाँ शायद पहुँच सकें,
बतलाओ तो कि तुम हो कहाँ हाय स्वामी जी ।।

हमको भी क्यों न अपने ही हम राह ले गये,
अब हम रहें बताओ कहाँ, हाय स्वामी जी ।।

रोते बिलखते किस पै हमें छोड़ जाओ हो,
क्यों दीन और अनाथों से मुँह मोड़ जाओ हो ।।

बिस्तर से रंजो ग़म के हमें कौन उठायेगा,
सोतों हुओं को ख्वाब से कौन अब जगायेगा ?

अब कौन हमको आनि कै विद्या पढ़ायेगा,
अब कौन हमको मूर्ख से पंडित बनाएगा ?

पौराणिकों के फंदे से कौन छुड़ायेगा,
पाखंडियों के जाल से कौन अब बचायेगा ?

अब कौन हमारी आनि के हिम्मत बढ़ायेगा,
अब जोश कौन मुर्दा दिलों को दिलायेगा ।।

देश उन्नति के कौन हमें गुर बतायेगा,
डूबे हुओं को कौन किनारे लगायेगा ।।

धर्मार्थ काम मोक्ष का मतलब बताये कौन,
अब हमको हाय ऋषियों की पदवी दिलाये कौन ?

अब कौन गुरु-मन्त्र की दे दीक्षा हमें,
अब कौन वेद-विद्या की दे शिक्षा हमें ।।

दिखलाये कौन मुक्ति का अब रास्ता हमें,
सिखलाये कौन ज्ञान की अब वार्ता हमें ।।

बतलाये कौन यज्ञ का अब कायदा हमें,
जतलाये कौन होम का अब फायदा हमें ।।

अब कौन काफिरों से करें पावरसा हमें,
अब कौन हिन्दुओं से करे आरिया हमें ।।

सोहम्[1] ततो का कौन चखाये मजा हमें,
आजादगी की कौन पिलाए दवा हमें ।।

---

१. 'सोऽहम्'—'वह मैं हूँ' नवीन वेदान्त का सिद्धान्त है, ऋषि दयानन्द का नहीं ।

समझाय कौन शास्त्रों का मुद्दआ हमें,
बतलाय कौन श्रुतियों का तर्जुमा हमें ॥

कौन अब सुनाये धर्म की सच्ची कथा हमें,
कौन अब बताए सूत्रों की व्याख्या हमें ॥

सिखलाए कौन योग की अब साधना हमें,
बतलाए कौन ईश्वर आराधना हमें ॥
आसान भी है कि राज भी कुल विश्व का मिले,
लेकिन मुहाल है कि गुरु आपसा मिले ॥
संकट हमारे कौन हरे आपकी तरह,
रक्षा हमारी कौन करे आपकी तरह ॥

अब सर पै हाथ फेर के और पीठ ठोंक के,
धीरज हमारे कौन धरे आपकी तरह ॥
हिंगाम बहिस कौन है अब सूर वीर जो,
आकर मुखालिफों से अड़े आपकी तरह ॥
हरदम गवर्नमेंट से गोवध के वास्ते,
अब कौन है कि गड़े लड़े आपकी तरह ॥
मुमकिन है और हो कोई साहिबे कमाल,
बदगोइयों से जो न डरे आपकी तरह ॥
लेकिन मुहाल है कि बराए रिफाह मुतक,
सब आफतों को सर पै धरे आपकी तरह ॥
और यह भी हमने माना कि ऐसा भी हो कोई,
देशान्तर में घूमे फिरे आपकी तरह ॥
सब कुछ सही मगर नहीं मुमकिन कि कोई शख्स,
वेदों का तर्जुमा भी करे आपकी तरह ॥
सच है तो यह कि आपसा होना मुहाल है,
सारे जहाँ को आपके गम में मलाल है ॥
ए भाइयो कहाँ तलक अब रोए जाओगे,
आँखों से अपने कब तलक आँसू बहाओगे ॥
सदमा यह वह नहीं जिसे भूल जाओगे,
रोना है सारी उम्र का कब तक निभाओगे ॥

उलटी ही और भड़केगी सीने में गम की आग,
जितना तुम आबअश्क से इसको बुझाओगे ॥
शक्ल उनके फैज आम की हरदिल पै नक्श है,
क्यों कर तुम उनकी याद को दिल से भुलाओगे ॥
स्वामी जी अब कहाँ हैं परमधाम को गये,
दुनिया में उनको कितना ही ढूँढ़ों न पाओगे ॥
यह सोच कर के मरना है सबको करे शिकवे,
संगे गिरां गम को कहाँ तक उठाओगे ॥
उठ बैठो फर्श खाक से धो डालो हाथ मुंह,
आखिर तो कभी आपे में तुम अपने आओगे ॥
वह काम अब करो कि रहें जिससे उनका नाम,
कब तक करोगे रंज में सर पीटे जाओगे ॥
सब मिल के ईश्वर से यही प्रार्थना करो,
फिर उन सा कोई प्रकटे ऐसी दया करो ॥

(११) बदायूं समाचार

आज क्या है जो गमो रंज से बेताब हैं सब,
क्यों हर एक शख्स यह कहता, हाय गजब ॥
आर्यावर्त में क्यों आज है शोरी शेवन,
क्यों जमाने में हर एक शख्स को है रंजो महन ॥
रूस से चीन तलक चीन से ले ता लंदन,
बतिक अमरीकओ अफरीकओ मुल्के जरमन ॥
क्या सबब है कि जो हर फर्द बशर नालां हैं,
जर्द हर एक का चेहरा है गजब में जां है ॥
क्यों हर एक शख्स के लब पर है सदा ये मातिम,
क्यों जनो मर्द हैं तय्यार बराये मातिम ॥
आज तो रोज दीवाली है खुशी का दिन है,
पर न मालूम कि यह रंजो महन् किस बिन है ॥
बस इसी फिक्र में उठ घर से हुए सुए इस्टेशन्,
चल दिया ताकि बहल जाय वहीं शायद मन ॥

मुझ को बाजार में जाते हुए इक यार मिले,
देख कर मुझ को मेरे पास जो आए दौड़े ॥
करके अफसोस पकड़ हाथ वह बोले मुझ से,
कुछ सुना है आपने आप किधर को हैं जाते ॥
तार में आई है अजमेर से इस वक्त खबर,
कर गए आज महाराज जमाने से सफर ॥
यानी अब हैं नहीं दुनिया में श्री स्वामी जी,
सारे भूगोल में मशहूर थी विद्या जिनकी ॥
जिनके उपदेश से कुछ देश दशा बदली थी,
जिनके बाइस हुई तौकीर उलमए शरकी ॥
नाम नामी से हुवै दाहै दया और आनन्द,
सामने जिनके रहे जुमला आसती दमबंद ॥
थे कुरानी व किरानी व पुरानी जितने,
जैनियो पारसियो चीनियो बदहुरमत वाले ॥
रूबरू आपके क्या ताब कोई इनमें से,
वेद मत में जो किसी बात पै कुछ तर्क करे ॥
चल दिये आज जमाने से हमें छोड़ के वह,
मुक्ति पद पा गए बस दहर के मुंह मोड़ से वह ॥
सुनके यह बात दिले जार ने मेरे नागाह,
हैफ सद हैफ कहा और वहीं खींची आह ॥
खींच कर आह एकाएक मैं गिरा बरसेर राह,
और यह बोला कि बस अब धर्म का मुश्किल है निबाह ॥
दिल को मेरे जो हुआ रंज बयाँ उसका अगर,
लाख से एक भी लिक्खू तो बने इक दफ्तर ॥
ताब तन छोड़ गई और खिदर इक सरसर,
जिस्म को छोड़ दे जां हाल हुआ वह अवतर ॥
किस्सः कोता मेरा हाल जो उस वक्त हुआ।
या खुदा ही कभी ऐसा न किसी दुश्मन का ॥
जब किसी तरह न उस रंज को मैं रोक सका ॥
पीर गरदूं से मुखातिब ही किया यों शिकवा ॥

क्या जफा केश बिगाड़ा था तेरा मैंने क्या,
जिसके जिल्द में रक्खा तूने सितम मरवखा ॥
क्यों हुआ देखके हालत को हमारी बेजार,
क्यों तेरी आंख में चुभने लगे हम मिस्तए खार ॥
खुश तरक्की न हमारी तुझे भई जिनहार,
कुछ तुझे खौफ खुदा भी है अरे जोरे शियार ॥
पोप दस बीस न क्यों इनके एवज तूने लिए,
काम उलटे ही तेरे हमने हमेशा देखे ॥
कुछ दिनों और अगर सब्र से बैठा रहता,
ऐ सितमगर तुही कह कि बिगड़ता क्या तेरा ?
हाय ! होने न दिया वेद का पूरा टीका,
बस तेरे हक में बद मुंह से निकलती है दुआ ॥
सब्र कर सब्र कर ऐ नम के खस्ता जिगर,
खतम कर इसको घड़ी साल महीना लिखकर ॥
संवत् उन्नीस सौ चालीस में बंस विक्रम के,
कार्तिक मास अमावस को दिवाकर छिपते ॥
कर दिया कूच जमाने से श्री स्वामी ने,
आखिरी लब्ज यही आपके मुंह से निकले ॥
ईश्वर इच्छा आपकी ही हो सदा पूरन,
बस यह कहते ही निकल जान गई छोड़ के तन ॥

अंग्रेजी समाचार पत्रों की स्वामीजी विषयक सम्मति

(१२) बंगाली, कलकत्ता : ३ नवम्बर, १८८३ ई०

(इस पत्र के सम्पादक सुप्रसिद्ध देशभक्त और राष्ट्रीय नेता बापू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे)

स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से न थे। लोगों ने उनके निर्धारित धर्म-मार्ग और तदुपादित वेदार्थ को सम्मान नहीं दिया तो न दें परन्तु हम कह सकते हैं कि धर्मोपदेश करने में उनकी शक्ति और उत्साहादि गुरण, उनमें निःसन्देह अद्वितीय थे।[1] यद्यपि उन्होंने

1. A religious teacher of surpassing powere and earrest ren.

जन्म से इस असार संसार का त्याग कर दिया था। और वे पूरे योगी थे तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उनमें देखने में आया, वैसा कदाचित् ही कभी किसी अन्य में देखने में आवे, उनका परलोक होने से केवल उनके संस्थापित समाजों की ही अनिवार्य हानि हुई हो ऐसा नहीं किन्तु विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु से भरतखंड मात्र को इस समय असीम जोखों पहुँची। उनकी अप्रतिम विद्वत्ता कभी किसी को भूल नहीं सकती, बल्कि पूर्ण निश्चय है कि सदैव समझदार लोग उनको स्वदेश का भूषण कह कर अपने चित्त में हुलसते रहेंगे।

(१३) ट्रिब्यून, लाहौर : ३ नवम्बर, १८८३ ई०

हमको दारुण शोकसागर में डुबोकर परमधाम में जा विराजे स्वामी जी महाराज के उपदेशों का प्रकाश केवल आर्यसमाज पर ही पड़ा हो ऐसा नहीं किन्तु अन्य समस्त मत और सम्प्रदायी लोगों के जी पर भी उनके उपदेश रूपी साँचे का नक्शा अच्छी प्रकार ऐसा जमकर बैठा है कि उससे उन सबका आंतरीय अभिप्राय साफ तबदील बदल की कोशिश पर कोशिश कर रहा है। उनका तमाम कथन व उपदेश हम सर पर धर बैठे हैं ऐसा नहीं तो भी यह कहे बिना निर्वाह नहीं होता कि वास्तव में बड़े सुयोग्य पुरुष थे तथा उनकी बुद्धि अत्यन्त विशाल थी। ज़िस वसीले से उन्होंने वे समस्त मत उखाड़ फेंके जिनको कि उनके आचार्यों ने शास्त्रों का मूल बता-बता कर चलते कर दिये थे। उनका निरन्तर इस जगत् में नाम रहे, इस दृष्टि से उनके भक्तजनों ने इस शहर लाहौर में एक ऐंग्लो वैदिक कालेज स्थापित करने का विचार किया है[1]। इसमें बहुत धन की अपेक्षा है परन्तु स्वामी जी से प्रीति रखने वाले भी मनुष्य असंख्य ही हैं। वे उतना अवश्य जमा कर छोड़ेंगे ऐसी हमको खूब खातिरी है।

(१४) इण्डियन एम्पायर, कलकत्ता : ४ नवम्बर, १८८३ ई०

आर्यसमाजों के सुप्रसिद्ध संस्थापक हाल काल के परम नामवर सुधारक श्रीमान् दयानन्द जी महाराज लोकान्तर गमन कर जाने की करुण दुःखदायी वार्ता प्रसिद्ध का हमको बड़ा ही शोक और पश्चात्ताप होता है। उनकी अगाध विद्वत्ता, खण्डन-मण्डनादि अनुपम कोटि क्रम और परम

१. यह कालिज १ जून सन् ८६ ई० से जारी हो गया और बड़े जोर पर है। (बाद टिप्पणी)

प्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रीति आदि अपूर्व गुण कभी किसी को भूलने वाले नहीं हैं।

(१५) हिन्दू पेट्रियट, कलकत्ता : ८ नवम्बर, १८८३ ई०

स्वामी दयानन्द सरस्वती का परलोक सुनकर हमको परम शोक है। वे बड़े उत्तम वेदान्ती थे तथा वे वेदों की ऋचाओं का नया ही अर्थ करते थे। जिस समय प्रशंसित महाशय संस्कृत बोलते थे तो उनके भाषण की मिठाई व सुधाई चित्त को अजीब आनन्दित किया करती थी।

(१६) इण्डियन क्रानिकल : कलकत्ता

संस्कृत का पूरा मर्मज्ञ होना, आर्यों के धर्म ग्रन्थों की पारंगतता, मनोहर वाक् चातुर्य, उत्तम आदरातिथ्य इत्यादि जो जो गुण उत्कृष्ट धर्मोपदेशकों में चाहिए वे सब स्वामी दयानन्द जी में निवास पा रहे थे। धर्म का ठीक-ठीक सुधार होने मात्र की गर्ज से जो उन्होंने आर्यसमाज जहाँ-तहाँ स्थापित किये वे थोड़े ही दिन टिकेंगे, ऐसा कोई भूल कर विचार में न लावें। आगे हिन्दुस्थान में किस प्रकार का धर्म चलता होगा इसका निर्णय करने के समय कभी कोई स्वामी जी को नहीं भूलेगा। हिन्दू धर्म में फिर कर पूर्ववत् शुद्धता लाकर उसमें आधे से ऊपरी परमाधुनिक पाखण्ड मतों को निकाल बाहर कर देना मात्र स्वामी जी के उद्योग का मुख्य हेतु था।

(१७) हिन्दू अब्जरवर, मद्रास[1] : १८ नवम्बर, १८८३ ई०

संस्कृत के सच्चे और पूरे पण्डित, स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सच्चे उत्साह के साथ काम करने वाले एक मनुष्य थे। उनके परलोक होने से भरतखण्ड को बड़ा जबरदस्त सदमा बैठा। हाय शोक।

(१८) टाइम्स पंजाब, रावलपिंडी, : १० नवम्बर, १८८३ ई०

स्वामी दयानन्द जी में अति प्रचुर परमोदार स्वदेशाभिमान होने के हेतु से उनकी याद उनके देश बांधव निरन्तर करते रहें यह तो परम इष्ट ही है लेकिन सत्य और निस्सीम स्वदेशाभिमान के जोड़ में और जो गुण दरकार होते हैं, वे भी सब उनमें विराजमान थे (श्रीमच्छंकराचार्य और

---

१. मद्रास से प्रकाशित होने वाले थिंकर (११ नवम्बर, ८३) तथा हिन्दू में भी इसी प्रकार की सम्मतियाँ छपीं।

तत्कालीन अन्य इतर विद्या महासागरों की पूर्ण तुलना के ये पण्डित शिरोवतंस थे। हाल के अति निकृष्ट समय में परमोत्साह, बुद्धिमत्ता, उद्योग और दृढ़ता प्रशंसनीय गुण कहीं किसी मनुष्य में खोजने से नहीं पाये जाते, वे इनमें मानो कूट-कूट कर परमात्मा ने भर दिये थे। उन्हीं का बताया हुआ धर्म और उनकी स्वीकार की हुई बातों को यदि कोई मान्य न करे मत करे, परन्तु अब तक इस भारतवर्ष में जैसे अन्य कितने ही परम सुप्रसिद्ध महापुरुष हो गये हैं उन्हीं की कोटि के इस समय यह एक दयानन्द जी हुए ऐसा न मानना बड़ी ही बुजदिली कहावेगी। श्री जगदीश्वर इस कार्पण्य दोष से सबको बचावे।

(१९) गुजरात मित्र, सूरत : ११ नवम्बर, १८८३ ई०

हा परम प्राचीन रीति की भाँति धर्म के सुधार करने वालों में से आज एक भरतखण्ड का अनुपम चमकीला मुकुटमणि खो गया। हा परम सर्वाद्य वेदग्रन्थों का समीचीन विचार युक्त सभ्य मान्य अर्थ दिखाने वाला दयानन्दाभिधान भास्कर का अस्त हो गया। इतिहासों में निर्मल कीर्ति ध्वजा के चमकाने वाले परम पण्डित वर अवतार आज समाप्त हो गये। इन्होंने सिद्ध कर दिखाये वेदार्थ की सत्यता में यदि कोई संदेह माने तो मानो परन्तु इनका उपदेश करने में औत्सुक्य, भाषा का माधुर्य, वाक् चातुरी, सबको अपने सन्मुख प्रसन्नतापूर्वक बात की बात में चुप कर देने की अपूर्व शक्ति, हृदयंगमता, सद्भाव और हेतु की निर्मलता, निश्चय किये हुए विषयों की दृढ़ता, चित्त का सीधा और सादापन, चाल ढाल और वृत्ति की स्वतन्त्रता, तथैव धर्मभ्रम, मूर्तिपूजा और निरर्थक दंभ आदि के प्रचारों से घोर संकट सागर में डुबोये गये स्वदेश को फिर उन्नत कर शिखर पर धर देने की प्रबल उत्कण्ठा आदि सद्गुण अब कहीं दृष्टिगोचर नहीं होने के, ऐसा अनुभव इस देश के प्रत्येक मनुष्य को अब सदैव होता रहेगा। हा शोक ३।

(२०) बंगाल पब्लिक ओपीनियन, कलकत्ता : ८ नवम्बर, ८३

पण्डित दयानन्द की मृत्यु के समाचार से समस्त हिन्दुओं में एक अन्धेरा सा छा जावेगा, वह अर्थात् स्वामी दयानन्द हमारे देश के भूषण और हमारे मान दाता थे। An ornament our country and pride to our nation.

(२१) लिबरल, कलकत्ता : ११ नवम्बर, १८८३

पण्डित दयानन्द का मन्तव्य चाहे कुछ ही क्यों न हो परन्तु वह हमारी सहानुभूति का पात्र था और वह (हुकमन) निज बल से हमसे श्लाघा कराता था Commanded an admiration चाहे उसका मस्तिष्क पश्चिमीय विद्याओं से सुशोभित न था, परन्तु तो भी उसके विचार और विश्वास अपनी शिक्षा से परिवर्धित थे और वह अपने आप उसके स्वभाव के प्रभाव से टपकते थे।

(२२) इण्डियन मैसेन्जर, कलकत्ता[1] : ११ नवम्बर, १८८३

अद्यावधि कोई ऐसा मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ जो इस देश की मूर्ति-पूजा व ब्राह्मण-पूजा-मर्यादा से इससे अधिक घृणा करता हो, जैसा कि स्वामी दयानन्द करते थे। और जिसने ऐसे साहस और धैर्य से विपक्षता की हो……परमात्मा के उस सच्चे भक्त ने अपनी अन्तिम प्रार्थना में अपने नोबल मिशन को उत्पत्तिकर्त्ता की इच्छा पर छोड़ दिया। ईश्वर करे कि हमारे समस्त कार्यों में उसकी इस प्रार्थना की स्पिरिट आ जावे।

"His last prayer was the pious resignation of his noble mission to the will of Him who had called him to the field, May the spirit of his prayer inspire all our actions."

(२३) इंग्लिश क्रानिकल, बांकीपुर पटना : ५ नवम्बर, १८८३

स्वामी दयानन्द संस्कृत का बड़ा विद्वान् था, आर्य्यन फिलासफी की हर एक शाखा से पूर्ण अभिज्ञ था, उत्तम वक्ता और आचार व्यवहार में मिलनसार था। सार यह है कि उसमें महान् आचार्य के सब गुण थे।

A pro found Sanskrit scholar and deeply versed in the lore of Aryan philosophy. He had all the qualifications of a great religions teacher.

(२४) इण्डियन स्पीकर, बम्बई : १८ नवम्बर, १८८३

इस पत्र के सम्पादक सुप्रसिद्ध सुधारक श्री बहराम जी भलाबारी थे: "हम स्वामी दयानन्द को आर्यावर्त का एक स्तम्भ गिनते हैं। सहजा-

१. बंगाल के अन्य भी बंगवासी, संजीवनी, एजूकेशन गजट, सलवा समाचार तथा ग्राम बांट प्रकाशिका आदि पत्रों में ऐसे श्रद्धाञ्जलि युक्त उद्गार प्रकाशित हुए।

नन्द या स्वामी नारायण के अनन्तर गुजरात देश ने ऐसा प्रबल सुधारक उत्पन्न नहीं किया, जैसा कि स्वामी दयानन्द था। स्वाभाविक मस्तिष्क शक्ति, और बड़ी प्रसिद्धि से स्वामी दयानन्द स्वामी सहजानन्द से कहीं बढ़कर थे। In natural aptitude and acquirements as well as in the extent of influence exerted, we believe, the latter to have by for surparsed Sahjanand Swami, जो लोग उनको प्रसिद्ध शंकराचार्य के साथ स्थान देते हैं, कुछ अधिकता नहीं करते। ईश्वरदत्त असाधारण सामर्थ्यों की सहायता से और आयु भर के अपने उद्देश्यों की दृढ़ता से उन्होंने हमको इतना लाभ पहुँचाया कि एक वंश क्या कई वंशों से हमारे धन्यवाद के अधिकारी हो गये।

Gifted with the uncommon talents and actuated during all his life by singlcurs of purpose Dayanand Saraswati has achieved enough good to entitle him to the last ingratitude of his countrymen. स्वामी दयानन्द का काम अधिकतर पवित्र करने वाला था। उसने समस्त बल मूर्तिपूजा के खण्डन में लगा दिया। खण्डन करने में उसकी महती शक्ति थी। He applied his gianst' strength to denouncing idolatory, and terrible were his powers of denunciation.

(२५) दीनबन्धु, बम्बई[1] : ४ नवम्बर, ८३

स्वामी दयानन्द बड़े विद्वान् और विस्तृत धार्मिक ज्ञान-भण्डार युक्त थे।

(२६) रास्त गुफ्तार [सत्यवक्ता] : ४ नवम्बर, ८३

स्वामी दयानन्द ने जिस परिश्रम से प्रचार किया, इतना परिश्रम इससे पूर्व किसी दूसरे सुधारक ने नहीं किया, इन गुण समुदायों का पुञ्ज अन्य कोई मनुष्य दृष्टिगत नहीं होता जो स्वामी दयानन्द के सदृश सत्यता से जनता को लाभ पहुँचाने की नियत रखता हो।

---

१. बम्बई प्रान्त के गुजराती : बम्बई ४ नवम्बर, ८३; दैनिक समाचार, बम्बई : २ नवम्बर, ८३; वर्तमानसार सूरत; सुबोध पत्रिका, बम्बई; सूर्य्य-प्रकाश, सूरत; यजदान परस्त बम्बई; सन्मार्ग दीपिका, बम्बई; केसरी, पूना (सम्पादक बाल गंगाधर तिलक) आदि पत्रों में भी श्रद्धाञ्जलियाँ छपीं।

(२७) जाम जमशेद दैनिक, बम्बई : २ नवम्बर, ८३

स्वामी जी अपने समय के उच्च वैदिक विद्वान् और भारत के बड़े शुभाकांक्षी थे।

(२८) अवध अखबार[1] (उर्दू) दैनिक : ८ नवम्बर, १८८३

स्वामी दयानन्द भारत के एक बड़े भारी विद्वान् थे। इनकी सुधार सम्बन्धी कार्यवाही सदैव स्मरण रहेगी।

खास पत्र बनाम ग्रन्थकार

श्रीयुत मान्यवर शिरोमणि पं० गोपालराव हरि जी नमस्ते !

आज अर्सा १५ रोज का हुआ कि इलाही बख्श रम्माल साकिन शहर कानपुर दर कसबे सरायमीरा रौनक अफरोज हुए थे। उन्होंने जाबजा इश्तिहारात मुन्दरजे मजमून निस्बत इल्म व हुनर कमालियत अपनी के चस्पां कर दिये थे। लिहाजा मैं भी बमूजिब इश्तिहार सिर्फ बगरज मुलाकात रम्माल मौसूफ की खिदमत में हाजिर हुआ। उस वक्त सिवाय मेरे और भी चन्द साहिबान ब्राह्मण व मुसलमान हिन्द व फारसी के विद्वान् वहाँ तशरीफ रखते थे। और रम्माल साहब रूबरू उनके बुलन्द आवाज से निहायत जोश व खरोश के साथ अफसोस श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैकुण्ठवासी होने का कर रहे थे और उनकी आलीहिम्मत, परोपकार, विद्या, सत्याचार और देशोन्नति आदि गुणों की प्रशंसा लोगों को सुना रहे थे और उन मुसलमान विशान एशमान को बराबर लानत मलामत कर रहे थे जिन्होंने कि स्वामीजी के निस्बत कुछ ऐतराज किए थे। मैं इस माजरा अदीब को देख सुन भौचक सा रह गया और इस बात का खयाल मुनशरर दिल हुआ कि मुसलमानों की कौमों में भी सब एक से नहीं हैं।

---

१. संयुक्त प्रान्त के हिन्दुस्तानी, नसीम हिंद, बुल्द केसरी, क्षत्रिय हितकारी, बनारस आदि ने भी अपनी सम्मतियाँ प्रकाशित कीं। पंजाब के कोहिनूर, लाहौर, आफताब पंजाब, अंजुमन अखबार तथा ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका, लाहौर में लेख प्रकाशित हुए। आर्य सामाजिक पत्रों में आर्यावर्त मेगनीज, रीजेनेरेटर ऑफ आर्यावर्त, देशहितैषी अजमेर, आर्यदर्पण, शाहजहाँपुर, देशोपकारक आदि पत्रों में भी महर्षि के अवसान पर शोक व्यक्त किया गया।

यानी बाज-बाज सत्यवादी और न्यायी भी हैं। मुझे उस वक्त ज्यादातर रंजो मलाल अपने देश के हठधर्मी की तरफ से हुआ। २/१२/८३ ई०

द० श्यामलाल नायब मुदर्रिस
मदर्सा तहसीली सरायमीरा

श्रीमद्दयानन्द के प्रति श्रद्धाञ्जलि

ले०—पं० ज्वालादत्त शर्मा, वैदिक यंत्रालय, प्रयाग

श्लोक संख्या ३१,

क्षोणीभाहीन्दुभिरभियुते वैक्रमे वत्सरे यः,
प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणे देशवर्ये।
मूलेनासौ जनन-विषये शङ्करेणापरेण-
ख्यातिं प्रापत्प्रथमवयसि प्रीतिदां सज्जनानाम्॥ १॥

अर्थ—१८८१ विक्रम संवत् में जो दक्षिण देश के एक कुलीन ब्राह्मण घर में उत्पन्न हुए तथा जिनका जन्म नाम मूलशंकर था उन्होंने अपनी आयु के प्रथम चरण में ही सज्जनों को प्रीति देने वाली कीर्ति और ख्याति प्राप्त की।

विद्याभ्यासे निखिलनिगमान्प्रापठत्सत्यमिच्छु-
र्वेदाङ्गानि प्रचुरविषयान्याशु पूर्वाश्रमेण।
संसारेऽस्मिन्निज-सुजनतां नीति-शास्त्रानुकूला-
माविष्कर्त्तुं सदुपकृतये वेदमार्गेण नूनम्॥ २॥

अर्थ—जिन्होंने अपने ब्रह्मचर्य काल में ही समस्त वेदादि तथा वेदांगादि शास्त्रों का अभ्यास कर लिया था तथा जिन्होंने इस संसार में अपनी सुजनता एवं नीतिमत्ता के द्वारा लोकोपकारार्थ वेद मार्ग को ढूंढ़ निकाला।

देशान्देशान्बहुजनपदान् पर्वतादि-प्रदेशान्,
सारं सारं विविधगुणिनां यो गुणानां विचिन्वन्।
सत्यासत्यं बहुमतजुषामीक्षितुं पर्य्यगच्छत्,
प्रापत्तेषु श्रुतिपथविरुद्धाननेकान् विवादान्॥ ३॥

अर्थ—जो देश देशान्तरों, जनपदों तथा पार्वत्य प्रदेशों में भ्रमण कर अनेक गुणवान् व्यक्तियों से गुणों को ग्रहण करते रहे, सत्य और

असत्य का निर्णय करने हेतु तथा वेद विरुद्धवादों का खण्डन करने में जो सदा तत्पर रहे।

सोऽयं व्योमाम्बुधिनिधिविधौ वैक्रमे वत्सरेऽस्मिन्,
प्राप्ते चन्द्रक्षय-तिथिकुले कार्तिके कृष्णपक्षे।
सायंकाले सकलजनता-सौख्यमापूरयन्तं,
देहं त्यक्त्वा श्रुतिपदमयं ब्रह्मनिर्वाणमापत् ॥ ४ ॥

अर्थ—वहां ऋषि दयानन्द विक्रम के १९४० संवत्सर में कार्तिक कृष्ण पक्ष की अमावस्या को मंगलवार के दिन सायंकाल स्वशरीर त्याग कर वेदोक्त ब्रह्म निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

यो ब्रह्मचर्यत इतः सदसद्विवेकी,
पुत्रैषणादि-गृह-कर्मनिवृत्त-चित्तः।
संन्यासमाप सकलश्रुतिसिद्धमेव,
प्राप्तोऽद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ ५ ॥

अर्थ—उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित होकर पुत्रषणादि गार्हस्थ्य कर्मों से अपने चित्त को हटा लिया था वेद प्रसिद्ध संन्यास आश्रम को स्वीकार किया था। वे आज शरीर परित्याग के अनन्तर मोक्ष-धाम को प्राप्त हुए हैं।

यः पाणिनेर्मुनिवरस्य कृतेर्विभागान्
सद्यस्तदर्थगतये खलु लोकवाचा।
व्याख्यातवांल्लघुमतीन् समवीक्ष्य बालान्
प्राप्तोद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जिन्होंने अल्प बुद्धि बालकों के हितार्थ पाणिनि कृत व्याकरण शास्त्र के वेदांग प्रकाश के रूप में विभाग कर लोकभाषा में सरसरीति से व्याख्यान किया, वे स्वामी दयानन्द आज नश्वर शरीर का परित्याग कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

१ ऋषि दयानन्द ने पाणिनीय शास्त्र का सुगम रीति से ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेदांगप्रकाश चौदह भागों में लिख कर वैदिक यन्त्रालय से प्रकाशित किया।

अन्येषु वेदविषयेष्वसि भूमिकाद्याः,
सन्तीह यस्य नितरां बहवो निबन्धाः ।
शास्त्रेषु लोकविषयेष्वपि सत्यमिच्छोः
प्राप्तोद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ ७ ॥

अर्थ—शास्त्र और लोक विषय में सत्य की इच्छा करने वाले जिन महात्मा के अन्य भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेक वेद विषय में निबंध हैं वे आज स्वर्गवासी हुए ।

वादानुवाद-भयभीतजना न यस्य,
स्थातुं समीपेऽशकन्नाभिमानमाप्ताः ।
नानापथानुमतयो यतयोऽपि हन्त,
प्राप्तोऽद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अनेक अभिमानी लोग भी वाद-विवाद करने में अक्षम होने के कारण जिनके समक्ष ठहरने में असमर्थ रहे, नानापथानुगामी यति लोग भी जिनके समक्ष अपने अभिमान का प्रदर्शन नहीं कर सके, हा खेद, वे ही महात्मा आज देह त्याग कर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं ।

यद्वेदवादमभिगम्य विदेशजोऽपि,
वेदस्य मार्गमभिशंसति तद्विरुद्धम् ।
हा हन्त हन्त विधिधर्मविधानवक्ता,
प्राप्तोऽद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जिनके वेद मार्ग को समझ कर विदेशस्थ लोगों ने भी वेद मार्ग की प्रशंसा की । हन्त ! आर्य विधि एवं विधान के उत्कृष्ट वक्ता स्वामी जी आज दिवंगत हो गये ।

यस्यानुवादशरणा निजवर्णधर्मं, त्यक्त्वा न जामुरपरैरपरोप देशैः ।
आकर्षितेन मनसापि परस्य धर्मं, प्राप्तोद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥१०॥

१. थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकद्वय कर्नल आल्काट तथा मैडम ब्लैवेट्स्की स्वामी जी से प्रभावित हुए । ये मैक्समूलर और मोनियर विलियम्स भी उनके प्रशंसक थे ।

अर्थ—जिनके वेद सिद्धान्त की शरण में आये जन अपने वर्ण को छोड़ परोपदिष्ट धर्म की ओर नहीं गये, वे ही श्रीमद्दयानन्द आज निर्वाण को प्राप्त हुए ।

संप्रेक्ष्य यः करुणया करुणामयेन
हा ! हन्त भारतजनाश्चिर दुःखितान्नः ।
सम्प्रेषितो विधिनिधिर्जगतीश्वरेण,
प्राप्तोद्य निवृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ ११ ॥

अर्थ—भारत निवासियों को चिरकाल से दुखी देख कर करुणामय जगदीश्वर ने करुणापूर्वक जिन स्वामी जी को संसार में भेजा था, वे ही श्री महाराज आज शरीर छोड़कर मोक्ष को प्राप्त हुए ।

हा लोक-शोक-तमसावृतभारतीयान्, उद्धारयिष्यति कथं तमसः परेशः ।
वेदोपदेशतरणिः शरणं नृणां यः, प्राप्तोऽद्य निवृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥१२॥

अर्थ—हा, शोक के अंधकार से आछन्न भारतवासियों का इस अन्धकार से परमात्मा कैसे उद्धार करेगा, क्योंकि जो वेदोपदेश रूपी सूर्य स्वामी दयानन्द थे वे आज परमपद को प्राप्त हुए ।

संसारदुःखदलनाय समाजमार्गः, संस्थापितः श्रुतिपथेन समुन्नतेन ।
येनोक्तियुक्तिभिरसत्पथ-खण्डनेन, प्राप्तोद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥१३॥

अर्थ—जिन्होंने संसार के दुखों को नष्ट करने हेतु समुन्नत वेद मार्ग से आर्यसमाज की स्थापना की तथा जिन्होंने अपनी युक्तियों के द्वारा असत् पथ का खण्डन किया वे ऋषि दिवंगत हुए ।

यत्पौरुषं धनमथस्मृतिबुद्धिविद्या
यस्याह्निकी कृतिरभूच्छ्रुति संमतानाम् ।
भाष्ये परोपकृतये परमार्थसिद्धचे,
प्राप्तोद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जिनका पौरुष, धन, स्मृति, बुद्धि तथा दैनन्दिन कार्य परोपकार हेतु था तथा जिन्होंने परमार्थ सिद्धि के लिए वेद सम्मत ग्रन्थों के भाष्यादि किये वे स्वामी जी आज मुक्तिपथगामी हुए ।

हा ! हन्त हन्त वसुधे चिरदुःखितापि,
प्राप्ता कथं चिदपि सौख्यमतीव कष्टात् ।
वीरेण वेदनिधिना बत मन्दभाग्ये,
प्राप्तोऽद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हा हन्त ! हे वसुधे, तू चिरकाल से दुखी थी, सो अत्यन्त कष्ट से तुझे कथंचित् सुख की प्राप्ति उस वेदनिधान वीर पुरुष स्वामी दयानन्द से हुई थी। अब तेरे मन्द भाग्य से आज वे ही स्वर्ग चले गये।

किं दुष्कृतं कृतमतिप्रसितं यतोऽत्र, प्राप्तासि दुर्गतितरां वसुधे तथापि।
दुर्दैवमेव तव दैव-विकाशितं यत् प्राप्तोऽद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥१६॥

अर्थ—हे भारत वसुन्धरे, तूने ऐसा कौन सा दुष्कर्म किया था जिसके कारण तेरी यह दुर्गति हुई। स्वामी दयानन्द का परलोक प्रस्थान दुर्दैव कृत दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

संन्यासधर्मविषयेऽपि परोपकृत्यै,
त्यक्ता दया न खलु येन सरस्वतीह।
आनन्दयुक् प्रतिपदं निजनामतोपि,
प्राप्तोद्य निर्वृत्तिपदं स विहाय देहम् ॥ १७ ॥

अर्थ—संन्यास धर्म को स्वीकार कर लेने पर भी जिन्होंने परोपकार हेतु अपने नाम के पद दया तथा आनन्द युक्त सरस्वती का परित्याग नहीं किया वे ही स्वामी जी आज मोक्ष धाम पधार गये।

नित्यानन्दी गणपतिमतं नानकीयानुदासीन्
नागाखाखी-जिनमत सखीभाव सौरांश्च शाक्तान्।
दादूपन्थीगिरिपुरि भवान् भारतीयादिशैवान्
योगी हंसी प्रभृति विविधान् दण्डिपाखण्डिवर्गान् ॥ १८ ॥

नित्यानन्द के अनुयायी (गौडीय चैतन्य मत के वैष्णव), गणपति के उपासक, नानक के अनुयायी सिक्ख, उदासी साधु, नागा, खाखी, जैन, सखी सम्प्रदाय के निम्बार्क मतानुयायी वैष्णव सौर (सूर्य के भक्त), शाक्त, दादू पंथी, गिरि, पुरी भारती आदि दशनामी शैव संन्यासी, योगी, हंसी आदि दण्डी और पाखण्डी साम्प्रदायिक लोग—

पल्टूदासी सुधरसधना माधवान् निर्मलान्वै
कौलान् मौनानथ चरणदासीमतं साधु-बौद्धान्।
बाबालालीमतमलूकदासीमतशून्यावादान्
कूकाकालीमतमथ हरिश्चन्द्रवृन्दावनीयान् ॥ १९ ॥

अर्थ—पलटूदास, सुधर साधुओं का मत, सधना (कसाई) के मतावलम्बी, माधव पंथी (मध्वमतानुयायी वैष्णव) निर्मले साधु कौल मतानुयायी वाममार्गी, मौनी मत: चरणदासी, साधपन्थी, बौद्ध, बाबालाल के अनुयायी, मलूकदासी, शून्यवादी (बौद्ध), कूकापंथी (सिक्खों का एक सम्प्रदाय), हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का वैष्णव मत), तथा बृन्दावन निवासी वैष्णवों का मत।

वामीवामाचरणशिवनारायणीप्राणनाथान्
मीराबाईमतमथ नखी सन्तनामीकरारीन्।
अन्यान्धर्मव्यतिकरमतान् नूनमीसामसीयान्,
देशे देशे यवनजनजान्छौरतसिद्धान्तहीनान् ॥ २० ॥

अर्थ—वाममार्गी, वामाचरण (एक बंगाली सन्त) के अनुयायी, शिवनारायण, प्राणनाथी सम्प्रदाय के अनुयायी, मीराबाई के भक्त, नखी मत, सतनामी, करारी मत तथा अन्य भी धर्म विरुद्ध मतों यथा ईसाई और यवनमतावलम्बियों को सिद्धान्तहीन।

१ उपर्युक्त पद्यों में विभिन्न सम्प्रदायों का उल्लेख है जो भारत में प्रचलित हैं तथा जिनके अनुयायियों के साथ स्वामी जी को शास्त्रार्थ समर में उतरना पड़ा था।

संवीक्ष्यैषां विविधविबुधैस्तर्किभिस्तर्कवादैः
श्रौतैः स्मार्त्तैः निखिलनिगमज्ञानदैःस्तद्वचोभिः।
श्रौतं मार्गसदुपकृतये प्रोक्तवान् यो नितान्तम्,
मृत्योर्मार्गं झटिति गतवान् सोऽयमाचार्यवर्यः ॥ २१ ॥

अर्थ—इस प्रकार उपर्युक्त मत मतान्तरों को वेद विरुद्ध देख कर इन मतों के अनुयायी तर्कवादी विद्वानों के साथ, श्रौत, स्मार्त तथा अखिल वेद ज्ञान युक्त वाणी से जो तर्क-वितर्क करते थे तथा जिन्होंने उत्तम पुरुषों के उपकार हेतु श्रौत मार्ग का कथन किया वे आचार्य वर्य स्वामी दयानन्द मृत्यु मार्ग पर झटपट चले गये।

वेदोपदेशकरुणामृतसागरो यो, दृष्टोऽपि दृष्टिपथतोऽयमगोचरोभूत्।
नानापथा तपवितप्तविचेतसोऽस्मान् संचेतयिष्यति पुनर्निज सद्गुणैः कः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो वेदोपदेश रूपी करुणामृत का सागर था जो दिखाई पड़ता हुआ भी दृष्टि पथ से ओझल हो गया। नाना मत मतान्तर रूप आतप

से तप्त एवं व्याकुल हम लोगों को अब श्री महाराज के अतिरिक्त कौन सचेत करेगा ? क्योंकि वे ही अपने सद् गुणों द्वारा हमें प्रबोध देते थे।

संस्थापितो निजसभासु निराश्य सर्वा-
नस्मानयं विधिनिधिर्यदहो विघातः।
तत्रापि धर्मविषयेऽस्ति कुतूहलं किं
कोलाहलो नवपथैरथ सम्प्रदायैः ॥ २३ ॥

अर्थ—हे विधाता हम सबों को निराश कर तुमने जो वेदनिधि स्वामी जी को अपनी सभा में स्थापित कर लिया है तो क्या वहाँ भी धर्म के विषय में कौतूहल उत्पन्न हो गया है अथवा क्या आपके वहाँ भी नवीन मत और सम्प्रदाय वालों का कोलाहल बढ़ रहा है जो उसकी निवृत्ति हेतु आपने स्वामी दयानन्द को परलोक में बुला लिया ?

किं वा समीक्षणविधौ सुकृतस्य लोके
ऽन्यत्रैव कुत्रचिदपि द्वयमुक्तमीश !
दृष्ट्वा नृणां हितकरः करुणामतीत्य
नाहृत्य नः श्रुतिनिधिः सः समीरितो यत् ॥ २४ ॥

अर्थ—अथवा किसी अन्य ही लोक में उक्त दोनों विषयों (धर्म विषयक जिज्ञासा तथा मत सम्प्रदायों के कोलाहल) को देख कर तूने हम लोगों की उपेक्षा कर तथा निष्करुण बन कर मनुष्य मात्र के हितकारी स्वामी जी महाराज को उत्तम कर्मों के समीक्षण हेतु भेज दिया है।

संसारसार-विरतस्य परंगतस्य,
प्रादुर्भवो भुवि तवैष नृणां दयालो !
संतारणाय दुरितोदधितः श्रुतीनां,
संचारणाय चिरमन्दगतिं गतानाम् ॥ २५ ॥

अर्थ—हे संसार सार से विरत स्वामी जी, आपका भूमण्डल पर प्रादुर्भाव दुरित रूपी समुद्र से मनुष्यों का उद्धार करने तथा चिर काल से मंद गति को प्राप्त वेदों के सम्यक् प्रचार हेतु ही हुआ था।

त्यक्त्वा प्रतिश्रुतमपि श्रुतिभाष्यकर्म यन्नैत्यकं सदुपदेशमथो विहाय।
कालेन सार्द्धमगमस्तदिदं तवैव संयुज्यतेऽभि बलवन्नतिसाहसेन ॥ २७ ॥

अर्थ—आप अपने प्रतिश्रुत (प्रतिज्ञापूर्वक करने योग्य) वेद भाष्य, तथा उपदेश प्रदान आदि कर्म छोड़ कर जो काल के साथ चले गए (अर्थात् दिवंगत हो गए) यह आपके ही साहस और बल का सामर्थ्य है।

विद्योतिता सदुपदेशमयी विचिन्त्य
दीपावली निजगमनक्षणमन्धकारम् !
नैषा भविष्यति भवद्द्युतिदा दयालो
यद्दीपदीपनं महद्द्युतितां न याति ॥ २७ ॥

अर्थ—हे दयालु महाराज आपने अपने जाने के समय होने वाले अंधकार का चिंतन कर जो यह सदुपदेश नई दीपावली प्रकाशित कर दी है, वह आपकी द्युति (कान्ति) के समान नहीं होगी, क्योंकि जो दीपक का प्रकाश होता है वह सूर्य के प्रकाश की समता नहीं कर सकता।

हे श्रौतसारनिरत ! प्रसमीक्ष्यसन्देष
वस्मासु दुःसहमतीत्य निवासमत्र।
स्वस्य प्रयासमुपदेशविधौ चिराय
प्राप्तः परं पदमनन्तसुखाय तेऽस्तु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे वेद सिद्धान्त निरत स्वामी दयानन्द, हम जैसे मन्दधी लोगों में अपने निवास को कष्ट कर समझ कर तथा हमें उपदेश देने में अतिकाल तक होने वाले परिश्रम को त्याग कर आप जो परम पद को प्राप्त हुए हैं, वह पद आपके लिए सुखदायक होवे।

नानादेशनिवासिभिर्बहुजनैर्नानापमानं मुहुः
सम्प्राप्याखिललोक-सौख्यनिरतो वेदं निवेद्याधुना।
लोकेभ्यः सदसद्विवेकमतुलं विस्तार्य संधार्य च,
प्रेमास्पद्यमथो जनेषु नितरां प्राप्तः पदं शाश्वतम् ॥ २९ ॥

अर्थ—आपने अखिल लोक के सुख की वृद्धि हेतु नाना देश निवासी बहुत से लोगों से मानापमान प्राप्त किया तथा उन्हें वेद का उपदेश कर लोगों को सद्असद् विवेक का बोध कराते तथा उनमें प्रेम का विस्तार कराते ही आप शाश्वत पद को प्राप्त हुए हैं।

मयादत्तप्रन्त्यं पुरोर्द्धेन मध्यं सुबद्धं तदर्द्धेन नान्यः परोमित् !
सरोग्रे सरश्चाद्यसत्तार्थरक्तस्त्रियोक्तःकनोनोनरेस्तंगतोऽसौ ॥ ३० ॥

अर्थ—यह कूट पद है। जिस दयाशब्द ने निज अर्द्ध भाग से अन्त्याक्षर और पूर्वाक्षर ला ग्रहण किया तथा उसके मध्यभाग को अपने आधे भाग से बाँधा अर्थात् मध्य को परिपूर्ण न किया तो भी उत्तमता से उसको अपने वश में किया। उस समुदाय से और आगे नकार तथा इत्

जिसका ऐसा नुम् का नकार है इस 'दयानन्द' समुदाय से अग्रगामी, सत्तार्थक प्रथम तद्धित अर्थात् मतुप् प्रत्यय में रमा हुआ स्त्रीलिंग से युक्त सरस् शब्द है। यह दयानन्द सरस्वती समुदाय मनुष्य अर्थ में कन् प्रत्यय से उन जिस मनुष्य (व्यक्ति) का वाचक था वह व्यक्ति अस्त को प्राप्त हुआ।

अज्ञानजन्य-तिमिरव्रजनाशको यो, वेदोपदेशकदिनद्युतिरस्तमापत् !
तच्छोकमार्यगणकः कथितुं समर्थो, धैर्यं विधेयमवलम्ब्य तदुक्तियुक्तीः ॥३१॥

अर्थ—हे आर्य गण-अज्ञान-जन्य अन्धकार के समूह के नाशक जो वेदोपदेशक सूर्य के तुल्य स्वामी जी थे वे अस्ताचल को प्राप्त हुए। उनके निधन जन्य शोक को कौन कहने में समर्थ है अतः उनकी युक्तियों एवं उक्तियों का अवलम्बन कर हमें धैर्य ही धारण करना चाहिए।

संस्कृत पद्यकुसुमाञ्जलि

बैरिस्टर रामदासछबीलदास वर्मा, बैरिस्टर एट ला कृत

स्थान केम्ब्रिज देश यूरोप

अहो नितान्तं हृदयं खिद्यते निशम्य लोकान्तरमुन्नताशयम्।
संप्रस्थितं वेदविदामनुत्तमं श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीं सुधीम् ॥ १ ॥

अर्थ—अहा वेदविदों में श्रेष्ठ श्री दयानन्द के लोकान्तर प्रस्थान का समाचार सुनकर हृदय अत्यन्त खिन्न हो रहा है।

दीपपंक्ति-चिते भूतले सति व्योम्नि तारकगणैस्समुज्ज्वले।
शोक जाल तिमिराकुले तु सत् यत्ससर्ज स शरीरबन्धनम् ॥ २ ॥

अर्थ—जिस समय दीपावली की दीप पंक्तियों से यह भूतल तथा तारागणों से यह आकाश उज्ज्वल हो रहा था उसी समय हमें शोक रूपी तिमिरसागर में डालकर स्वामी जी अपने शरीर से मुक्त हो गये।

निःशेषपीताखिल-शास्त्रसारः पूतान्तरात्मा निगमाग्निजालैः।
ज्ञानोत्तमैकाञ्जनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैकनिध्यान-विशुद्धचेतः ॥ ३ ॥

अर्थ—जिन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रसार का पान किया था, जिनकी अन्तरात्मा वेद रूपी अग्नि से पवित्र हो चुकी थी, जिनके नेत्र ज्ञान रूपी उत्तम अंजन से युक्त थे तथा एक अद्वितीय ब्रह्म के ध्यान से जिनका चित्त विशुद्ध था, वे श्री महाराज आज देवलोक वासी हुए।

स्वकीय देशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः ।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथं नु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स मनश्चकार ।।४।।

अर्थ—अपने देश की उन्नति करने में ही जिनकी लगन थी, स्वप्न में भी स्वार्थ पूर्ति-हित जिनकी बुद्धि नहीं हुई, जिन्होंने त्याज्य कर्मों का सदा ही त्याग किया उन्होंने आज द्युलोक को प्रस्थान करने का मन बना लिया है ।

विज्ञाय तस्याद्भुत-चारुवृत्तं दिवौकसो जातकुतूहलाः किम् ।
तद्दर्शनायात्मनिकेतनं तमजूहवं दिव्यगुणैरुपेतम् ।। ५ ।।

अर्थ—उनके अद्भुत सुन्दर वृत्त को जान कर क्या नित्य प्रति यह कुतूहल उत्पन्न हुआ है तथा उनके दर्शनार्थ उस दिव्य गुण युक्त परमात्मा का दर्शन करने हेतु वे आत्म निकेतन में चले गये हैं ?

कृतयुगोचित एषः जन किल, न चिरमर्हति वस्तुमसौ भुवि ।
मनसि सकलितकलिनेति किं स च हतोऽखिल साधु-मनोरथैः ।। ६ ।।

अर्थ—अथवा मन में यह सोचकर कि यह पुरुष (दयानन्द) सत युग ही होने योग्य है तथा इन्हें इस धराधाम पर रहना योग्य नहीं है कलियुग ने इन्हें हमसे छीन लिया है ?

गुणानुवेक्षण-निजप्रभुत्वं कालेन किं दर्शयितुं हतः सः ।
नृदेहभाक् प्राक्तनकर्मयोगात्पुनः प्रयत्नः प्रकृतिनिजो वा ।। ७ ।।

अर्थ—अथवा काल ने अपने बलशाली गुणों को दिखाने के लिए ही श्री महाराज का हमसे हरण कर लिया है अथवा वे महर्षि महाराज ही अपने पूर्व संचित कर्मों के अनुसार इस देह में आप थे और अब उनके प्रभाव से मुक्त होकर अपनी मोक्ष रूपी प्रकृति को प्राप्त हो गये हैं ।

सन्देहदोलामिति रूढमेव मनो न निश्चेतुमलं मदीयम् ।
चित्रं निगूढचरितं विधातुर्वेत्तुं क्षमः को वद मानुषोऽस्ति ।। ८ ।।

संदेह रूपी झूले पर चढ़े हुए के समान मेरा मन निश्चित नहीं हो रहा है । बताओ कौन ऐसा मनुष्य है जो श्री महाराज के विचित्र एवं गूढ़ चरित को सम्यक् रूपेण जानने में तथा धारण करने में समर्थ है ?

दिनानि पूर्वं कृतचिद्य आसीदसंहृत्तास्मन्नयनोत्सवाय ।
स्मृतैः सपन्थानमितोऽधुना तत् कथं विधेः स्याल्लसितं प्रमेयम् ।। ९ ।।

अर्थ—जो महर्षि कुछ दिन पूर्व ही हमारे नेत्रों के समक्ष उपस्थित रहते थे, वे आज ऐसे पथ के पथिक बन गये हैं जो हमारे लिए अप्रमेय है।

तातगेहवसतिविमानिना संश्रितश्चरम एव चाश्रमः।
धर्म-तत्वपरिबोधने रतस्तेन सोढमपि दुर्वचो नृणाम् ॥ १० ॥

जिन्होंने पिता का गृह त्याग कर धर्म प्रचारार्थ (संन्यास) को स्वीकार किया तथा धर्म तत्त्व का उपदेश देने हेतु लोगों के दुर्वचनों को भी सहन किया।

स्वं विहाय मुहुरुच्छ्रितं पदं वारिदः श्रयति वाहिनी-तटम्।
केवलं पर-हिते कृतश्रमा लाघवं न गणयन्ति सज्जनाः ॥ ११ ॥

अर्थ—केवल पराये हित के लिए ही जिन्होंने बादलों के तुल्य अपने उच्चपद का परित्याग किया ऐसे स्वामी जी के श्रम को सज्जन पुरुष कभी लघु नहीं समझेंगे।

यः पाखण्डमतैक-खण्डनरतो वेदाख्यशस्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि।
सत्पक्षः परिपच्छलेन विजयः स्तम्भान्समारोपय-
द्दिक्ष्वन्यः पुरुषो हितेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥ १२ ॥

अर्थ—जो अपने वेदादि शास्त्र रूपी शुभ शस्त्रों से सम्पूर्ण पाखण्ड मतों के खण्डन में रत थे तथा जो इस प्रकार धर्म-संग्राम में सतत रत थे, जिन्होंने अपने सत् पक्ष के द्वारा शास्त्रादि परिषदों में विजय प्राप्त की, ऐसा मानव जाति का हितकारी पुरुष अब कहाँ मिलेगा !

एक एव खलु पद्मिनीपतिरेकमेव दिवि शीतदीधितिः।
एक एव च संवेदविद्भुवि द्विजमत्र न कदा श्रुतं मया ॥ १३ ॥

अर्थ—संसार में एक ही कमलिनी पति सूर्य और आकाश में एक ही चन्द्रमा है, इसी प्रकार इस धरती पर वेदों के जानने वाले वे महर्षि एक ही थे दूसरा मैंने कोई नहीं सुना।

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः।
यात एष तु सकृत्सदग्रणीर्बोभवीति विषयी न नेत्रयोः ॥ १४ ॥

अर्थ—स्यात् सूर्य भी पुनः हमारे दृष्टिगोचर होगा, आकाश में चन्द्रमा भी पुनः दिखाई देगा, परन्तु यह महापुरुषों में श्रेष्ठ व्यक्ति जो शीघ्र ही चला गया है यह नेत्रों का विषय अब कदापि नहीं होगा।

इन्द्रियार्थोद्भवं ज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम्।
तच्च्युत्त: स महात्माऽत: स्मृतावेव निधीयताम्॥ १५॥

अर्थ—इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान कभी प्रामाणिक नहीं होता। उन इन्द्रियों से च्युत हुआ वह महात्मा अब हमारी स्मृति में ही रहना चाहिये। अर्थात् उसका स्मरण मात्र ही सम्भव रह गया है।

संस्कृता भारती येन वृद्धिं यायाद् भारतम्।
तस्य नामामरं च स्यादादित्ये तदवसीयताम्॥ १६॥

अर्थ—जिन्होंने वाणी को सुसंस्कृत बनाया तथा जिनसे भारत की वृद्धि हुई उनका नाम इस आदित्य (सूर्य) के तुल्य अमर रहेगा।

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च।
साधूनां मरणान्यश्चाभिधानं तु जीवति॥ १७॥

अर्थ—ऋषि और कवि भी नष्ट हो जाते हैं, विद्वानों की भी यही गति होती है। साधुओं का भी मरण होता है, केवल उनका नाम (अभिधान) ही जीवित रहता है।

को नाम श्रीदयानन्दात्साधीयान्दृश्यते जनः।
उज्जीवितार्थं विद्यायै नास्माभिर्निरपेक्षिताः॥ १८॥

अर्थ—आज श्रीमद्दयानन्द के तुल्य कौन व्यक्ति दिखाई देता है? विद्या पुनरुज्जीवन हेतु किसने इतना प्रयास किया?

सैवैषां नीयतां पुष्टिं स्वकीयहितवृद्धये।
शास्त्रतत्त्वावबोधेन यूनां संस्क्रियतां च धीः॥ १९॥

उस महापुरुष ने अपने तथा अन्यों के हित की वृद्धि के लिए विद्या को पुष्ट किया तथा शास्त्रतत्त्व का अवबोधन कराने हेतु युवकों की बुद्धि को सुसंस्कृत किया।

अन्तरालाप

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधितिर्धर्मः परः कः कवि वाचिकः स्थितः।
कः कण्ठभूषा न यमाद् बिभेति कः, स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी॥ २॥

प्रश्न बताओ कमलिनियों के लिए सूर्य क्या—उत्तर स्वामी

बताओ परम धर्म क्या है—उत्तर दया

बताइये कवियों की वाणी की स्थिति किसमें होती है—

उत्तर—आनन्द

पुनः बताओ कण्ठ की शोभा क्या है—

उत्तर—सरस्वती (वाणी)

यम से कौन नहीं डरता—उत्तर यमी (संयमी)

टिप्पणी—उपर्युक्त २० पद्यों के रचयिता बैरिस्टर रामदास छबीलदास स्वामी जी के सुप्रसिद्ध क्रान्तकारी शिष्य पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा के सम्बन्धी थे। यह श्रद्धाञ्जलि उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से लिख कर भेजी थी। रावसाहब रामविलासजी शारदा लिखित आर्य धर्मेन्द्र जीवन शीर्षक महर्षि के जीवन चरित में ये पद्य प्रकाशित हुए थे।

सुहृद्गण—इस प्रकार श्रीमान् स्वामी जी महाराज के वियोगार्णव में डूबा हुआ यह गुणलुब्ध समस्त भारतवर्ष हाहाकार के साथ महीनों विलाप करता रहा, कर रहा है और तावत् करेगा यावत् फिर कोई वैसा महापुरुष उसकी जैसी करुणा करने वाला उत्पन्न न होगा। इसलिए हे बन्धु वर्ग! कोई भी तो तदनुरूप बन कर परमार्त्त भारत का बने उस प्रकार शीघ्र शमन करो। प्रथम देखना और विचारना चाहिए कि स्वामी जी में क्या विशेषता थी। थे तो वे भी मनुष्य परन्तु उनके लिए इतना रुदन, इतना आक्रोश और आक्रन्दन लोगों ने किमर्थ किया?

देखिये, इस जगत् में प्रत्यह कितने राजा, महाराजा धनाढ्य, विद्वान्, संन्यस्त और सन्त महन्तादि नहीं मरते परन्तु खबर भी तो नहीं पड़ती कि कौन था और किधर गया। बहुत हुआ तो इस कान सुनी, उस कान निकाल दी। यदि किसी को किसी से कुछ अधिक सम्बन्ध हुआ वा उसमें कोई सा क्वचित् गुण हुआ तो उसका मरण सुन इतना कह देना हद है कि वह अच्छा, बड़ा अच्छा, बड़ा ही अच्छा था। बस हो चुका। बाद को कुछ नहीं। कदाचित् उससे भी कुछ अधिक सम्बन्ध हुआ तो एक दिन वा दो चार दिन विशेष रो-रुवा कर बैठ रहे। ऐसी रीति इस जगत् की है। उससे बिलकुल विरुद्ध स्वामी जी महाराज का मरण और शोक! परम विलक्षण सबके अनुभव में ऐसा आ रहा है कि जिसका कालत्रय में मिटना अति गहन सा जान पड़ता है। यदि कोई केवल उस विषय के लेखों को (जैसे कि कुछेक छोटे कर कर के अभी ऊपर धर दर्शाये हैं) बटोर कर एकत्रित करने का यत्न करता है तो अवश्य छोटा-मोटा महाभारत ऐसा ग्रन्थ बन जाता। कारण उनकी इस प्रकार पवित्र कीर्ति

के विस्तार का यही सिद्ध होता है कि उनमें समस्त सद्गुण निवास करते थे। उन सबका उपयोग प्राचीन महर्षियों के समान स्वदेश की भलाई में करते रहे, ऐसा उनका गाढ़ संकल्प था। सो उन्होंने यावज्जीवन किया और उसके पीछे अनेक प्रकार के क्लेश, अपमान और विघ्न भी सहे परन्तु कभी पीछे नहीं हटे। इससे पुनः यही सिद्ध हुआ कि जो वैसा करेगा वह अवश्यमेव इसी प्रकार उनकी भांति इस जगत् में परम श्लाघ्य व पूज्य होगा अन्यथा ऐसा होना अति असम्भव है। चाहे वह कैसा ही विद्वान् क्यों न हो? प्रत्यक्ष देख लो कि काशी निवासी बाल शास्त्री जी कैसे भारी विद्वान् थे। उनका मरण स्वामी जी से केवल सवा वर्ष ही पूर्व हुआ था परन्तु वे यावज्जीवन अपनी विद्या और गुण निरन्तर स्वार्थ में ही खर्च करते रहने के कारण परिणाम में विज्ञों के समीप निंद्य ठहरे। उदाहरणार्थ हिन्दी प्रदीप प्रयाग का लेख नीचे लिख दिखाया है। उसको ऊपर आरम्भ में इसी हिन्दी प्रदीप के लिखे नं० १ व २ के लेखों से मिलावेंगे तो स्पष्ट विदित हो जायगा कि यह जगत् ऐसा स्वच्छ आदर्श है। भारतमित्रादि कतिपय सभ्य सम्पादकों ने शास्त्री जी का मरण सुन स्वयं कुछ न कह कर यही नीचे लिखा लेख अपने पत्र में धर कर सबके सम्मुख कर दिया था। अतः कहता हूँ कि विद्यमान और भविष्यत् काल के विद्वज्जन सुचेत होने से ही भारत का परम अहोभाग्य कहावेगा। अलमति विस्तरेणेति।

नकल भारतमित्र : १७ अगस्त, सन् ८२ ई०

पं० बाल शास्त्री जी की मृत्यु पर हमारे सत्यवक्ता मुंहफट सहयोगी हिन्दी प्रदीप इस तरह शोक करते हैं कि "अब द्विगुण दुःख हमें इस बात का है कि ऐसे-ऐसे महान् पण्डित भी इन प्रान्तों में खास कर काशी में धनी-मानी राजा-बाबुओं को उल्लू बनाय खूब रुपया ऐंठने के सिवाय अपना नाम चिरस्मरणीय रहने की कोई बात नहीं छोड़ जाते। न संस्कृत ही को किसी तरह फायदा उनकी जात ते पहुँचता है, न लोकोपकार महावृक्ष की जड़ सींचने की इच्छा से एक चुल्लू पानी अपने जी। जी उस पर कभी वे छोड़ते होंगे। पामर लोगों के समान ये लोग भी प्रजा को ठग मन मानता खाया, लुटाया और जहाँ तक धन-संचय करते बन पड़ा किया। अन्त को जैसे आए वैसे मुंह बाये चल खड़े हुए। बाल शास्त्री ने तो लोकोपकार एक ओर रहे, विद्या के अजीर्ण में आय हाल में विधवोद्धार खण्डन पर कुछ लिखा था। वाह अकल, पढ़ा-लिखा सब कुछ, पर पुराने खयाल की गंदगी जी से दूर न हुई।"

कहिये भ्रातृगण ! क्या कसर रही और श्रीयुत सम्पादक हिन्दी प्रदीप का यथार्थ कह देना कृत्य कितना धन्यवादार्ह है। बस ऐसे ही स्पष्ट लेखकों को भारतार्तिनाशक सद्वैद्य कहना चाहिए। यावत् अत्रस्थ सम्पादक गण इन ऐसे अमूल्य गुण रत्नों से स्वयं अलंकृत न होंगे तावत् देश-सुधार की आशा करना सर्वथा व्यर्थ है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीय तृतीय खण्डे घोराक्रन्दनं, नाम नवमो मयूखः ॥ ९ ॥

अथ दशमो मयूखः

परोपकारिणी सभाधिवेशन

सुहृद् गण, अब इस मयूख के द्वारा आप महाशयों के इस प्रश्न का उत्तर लिखना आवश्यक है कि इस प्रकार श्रीमान् स्वामी जी महाराज के वियोगाग्नि से प्रज्वलित भारत की शान्ति किस रीति से हुई और प्रशंसित महानुभाव के संचित पदार्थों का रक्षण और आरम्भित कार्यों का निर्वाह कैसे हुआ ?

विदित हो कि वास्तव में इस प्रचण्डाग्नि की पूरी शान्ति तो सर्व-शक्तिमान् सर्वेश्वर, सर्वाधार करेगा तभी होगी, परन्तु हाँ, साम्प्रत हो सकी उस रीति दौड़-धूप कर-करा कर लोगों ने वह अग्नि अपने विवेक रूपी जल से कमजोर तो बहुत जल्द कर दी थी और तुरन्त ही उन्होंने परस्पर समस्त विद्वानों व समाजों और श्रीमान् यावदार्य्य कुल कमल दिवाकर की सेवा में निरन्तर पत्र-व्यवहार प्रचरित करके अति सत्वर विचारपूर्वक प्रबन्ध होने की प्रार्थना की थी। यद्यपि उस समय परमोद्धार चेता श्रीमान् महाराणा जी को स्वयं बहुत कुछ चिन्ता थी परन्तु इस महान् शोकानल से वे भी अतीव खिन्न थे। तथापि प्रशंसित महामना ने अपने ज्ञान-बल से उस खेदाचल को अतिशीघ्र हटा कर इस आशय का विज्ञापन और निमन्त्रणपत्र प्रचरित कराया कि श्रीमती परोपकारिणी के समस्त सभासद् और यावत् आर्यसमाजों के प्रतिनिधि गण स्थान अजमेर में २७ दिसम्बर, सन् १८८३ ई० तक अवश्य समुपस्थित होकर ता० २८ व २९ दिसम्बर की सभा में परमधाम निवासी श्रीमान् जगद्गुरु स्वामी जी महाराज के उत्तर कार्यों को एकचित्त होकर चलता करें।

इसके अनुसार समस्त भक्तजन उक्त स्थान में प्रायः २६ को ही पहुँच गये और ता० २७ को समस्त आये हुए आर्य प्रतिनिधि परस्पर एक

स्थान में आकर मिले। कुछ अपना विचार कर रहे थे कि उतने में श्रीमती परोपकारिणी के उपमंत्री जी वहाँ आकर सबसे परमानन्द पूर्वक मिले और सबको सदुपदेश करके चले गये। ता० २८ दिसम्बर को श्रीमान् उदयपुराधीश की कोठी में नीचे लिखे समस्त सभासदों के सम्मुख दिन के १२ बजे से इस सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ।

१. लाला श्री मूलराज एम० ए० उपसभापति परन्तु इस अवसर पर प्रधान। २. कविराज श्यामलदास जी मंत्री। ३. पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या उपमंत्री और सभासद्। ४. शाहपुरे से राजाधिराज श्री नाहरसिंह जी के प्रतिनिधि कविराज श्यामलदास जी। ५. बेदले राव जी, श्री तखतसिंह जी के प्रतिनिधि। ६. देलवाड़े के राजराणा जी, फतहसिंह जी। ७. आसीद रावत श्री अर्जुनसिंह जी के प्रतिनिधि कविराज श्यामलदास जी। ८. शिवरति महाराज श्री गजसिंह जी के प्रतिनिधि राजराणा श्री फतेहसिंह जी। ९. मसूदेराव जी श्री बहादुरसिंह जी के प्रतिनिधि उनके मंत्री पं० छगनलाल जी। १०. रा० ब० पं० सुन्दरलाल जी, अलीगढ़। ११. बाबू दुर्गाप्रसाद जी, फर्रुखाबाद। १२. लाला जगन्नाथ प्रसाद जी, फर्रुखाबाद। १३. सेठ निर्भयराम जी, फर्रुखाबाद के प्रतिनिधि उनके पुत्र लाला सेवाराम जी। १४. लाला कालीचरण जी, फर्रुखाबाद १५. लाला रामचरण जी, फर्रुखाबाद। १६. मुरार निवासी, लाला छेदीलाल जी के प्रतिनिधि उनके लघु भ्राता बाबू शिवनारायण जी। १७. लाला साईंदास जी, लाहौर। १८. बाबू माधवलाल जी, दानापुर। १९. रा० ब० परम मान्यवर पं० गोपालराव, हरि जी, देशमुख बम्बई। २०. रा० ब० पं० महादेव, गोविन्द रानडे एम० ए०, एल० एल० बी०, पूना। २१. पं० श्याम जी, कृष्ण वर्मा बी० ए० आक्सफोर्ड लंदन। २२. राज जयकृष्णदास जी, जी० एस० आई० ने कहला भेजा कि हम घोड़े से गिर जाने के कारण उपस्थित नहीं हो सकते। तथैव प्रकाशित हुआ कि २३. लाला रामशरणदास जी, मेरठ निवासी को परमधाम प्राप्त हुआ और कविराज श्यामलदास जी ने प्रकट किया कि २४. सभापति कि श्रीमन्महाराजधिराज मेवाड़ाधिपति शारीरिक अस्वस्थता के कारण उपस्थित नहीं हो सके इसलिए श्रीमानों ने राजराणा फतहसिंह जी और मुझको अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा है।

(१) सबसे प्रथम निमन्त्रणपत्र सुना कर नीचे लिखा प्रस्ताव पं० मोहनलाल जी उपमंत्री ने सभा को उच्च स्वर से कह सुनाया।

ओ३म्

परोपकाराय सतां विभूतयः

हे परोपकारिणी सभा के उपस्थित महाशयो,

(१) आज मुझको आप सब महाशयों की सेवा में निवेदन करते शोक और हर्ष दोनों एक संग ही प्राप्त होते हैं जिसमें से शोक तो श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी महाराज के जरामय रहित शरीर का साठ वर्ष की अवस्था में ही संसार त्याग करने का है, क्योंकि यह सभा उक्त स्वामी जी महाराज से ही सुशोभित होनी चाहिए थी और हर्ष इस बात का है कि अब आप सब परोपकारिणी सभा के सभासद् श्री स्वामी जी के स्थानापन्न होकर उनके धन, वस्त्र और पुस्तकादि पदार्थों की उत्तर व्यवस्था और वेद वेदांगादि के प्रचार का अच्छा प्रबन्ध स्वीकार-पत्र के अनुसार करने को इस स्थान पर एकत्र हुए हैं।

(२) हे महाशयो, आज हम लोग जिस कार्य के सम्पादन करने को एकत्र हुए हैं उसके विषय में निवेदन करने के पहले मैं आप सबको श्री स्वामी जी के इतने शीघ्र परमपद प्राप्त होने का शोक मेरे अन्तःकरण से कर सुनाता हूँ। इसमें कुछ संदेह नहीं कि स्वामी जी का नाम मात्र स्मरण कराने और श्रवण करने से आप सब लोग और अन्य आर्य सज्जन महाशयों का हृदय गद्‌गद हो और सब एक मुख होकर यही कहेंगे कि स्वामी जी महाराज जैसे आप्त इस कलिकाल में होने परम दुर्घट, उनकी मृत्यु से हमारे भरत खण्ड को वह हानि पहुँची जो कही नहीं जा सकती। जिस समय स्वामी जी की वेद और वेदांगादि शास्त्रों की पारंगतता संस्कृत भाषा का मातृभाषावत् धाराप्रवाह भाषण करना, परम दृढ़ स्वदेश वत्सलता और जो दूसरे को उपदेश करना उसी प्रमाण आप भी आचरण करना आदि आप्त गुण और सम्पन्नता पर ध्यान जाता है, उस समय हम सब लोगों का हृदय अति शोकाक्रान्त होकर इसके सिवाय और कुछ नहीं मुख से निकलता कि हाय ईश्वर की इच्छा सर्वोपरि बलवती है।

(३) हे महाशयो, उक्त स्वामी जी महाराज को तो परम पद प्राप्त हो गया और अब जो सर्वसाधारण आर्यों का विचार जहाँ तक कि मैं अन्वेषण कर जान सकता हूँ। यही है कि स्वामी जी का वह एक देह तो

अब सबके साक्षात्कार में नहीं है किन्तु उनके समस्त उद्देश्य सिद्ध होने की आशा परोपकारिणी सभा से की जाती है और सब देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर के विद्वानादि परोपकारिणी सभा के मुख की ओर देख कर यही प्रतीक्षा कर रहे हैं कि देखें उक्त सभा स्वामी जी के उद्देश्यों के पालनार्थ क्या व्यवस्था करती है ? निदान, अब हम सब लोग जहाँ तक विचार कर निश्चय करेंगे कि उक्त स्वामी जी के उपस्थित और भावी धन वस्त्र और पुस्तक आदि की क्या व्यवस्था करें तो यही सिद्ध होगा कि जो कुछ स्वीकार-पत्र में लिखा है उसी का यथावत् पालन करें और आर्यसमाजादि से करावें। अब जो हम स्वीकार-पत्र को अपने हाथ में लेकर देखते हैं और व्याख्या के साथ समझते हैं तो (१) प्रथम उद्देश्य हम सबको यह पाँच कर्त्तव्य कर्म की आज्ञा करता है। १. वैदिक पुस्तकालय स्थापन करना। २. वेद और वेदांगादि के प्रचार करने के लिए और जहाँ तक वेदभाष्यादि व्याख्या ग्रन्थ स्वामी जी अपनी विद्यमानता में रच गये हैं उनको प्रकाश करना और जो शेष हैं उनकी व्याख्या स्वामी जी के सिद्धान्तानुसार उनके शिष्यादि अच्छे-अच्छे विद्वानों से कराने का प्रबन्ध करना। ३. वेद और वेदांगादि के पढ़ने-पढ़ाने के लिए एक वैदिक पाठशाला नियत करें। ४. वेद और वेदांगादि के सुनने सुनाने के लिए एक व्याख्यान देने का आलय बनावें। ५. वेद और वेदांगादि के छापने-छपवाने के वास्ते स्वामी जी जो वैदिक यंत्रालय स्थापन कर गये हैं, उसका अच्छा प्रबन्ध करके उसे बनाये रक्खें।

(२) दूसरा उद्देश्य हमको यह विदित करता है कि स्वामी के शिष्य स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी, स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी, स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती जी, ब्रह्मचारी रामानन्द जी आदि जो स्वामी जी के समक्ष ही उनकी आज्ञानुसार सर्वत्र भ्रमण कर उपदेश करते थे, उनको परोपकारिणी सभा अब भी वैसे ही स्वामी जी के सिद्धान्तानुसार उपदेश करने को यथायोग्य सदैव सहायता देवें और वे स्वामी जी के यावत् सिद्धान्तानुसार उपदेश करते हैं कि नहीं, इस पर भी यह सभा सदैव दृष्टि रख कर उनको उपदेशक मण्डली बढ़ाने को उद्युक्त करें।

(३) तीसरा उद्देश्य यह आदेश करता है कि आर्यावर्तीय अनाथ और दीन मनुष्य जो सब प्रकार के वित्तहीन होने से अनार्य हो जाते हैं इसलिए उनके संरक्षण, पोषण और सुशिक्षा के लिए एक अनाथाश्रम निर्माण किया जावे।

(४) चौथा, इन तीनों उद्देश्यों को व्याख्या सहित विचार करने से ज्ञात होता है कि अब परोपकारिणी सभा, अजमेर आदि किसी नगर में स्वामी जी के नाम से एक आश्रम ऐसा बनावें कि जिसमें उद्देश्यानुसार स्वदेशोपकारक इतनी शाला स्थापन हो सकें, तब उक्त उद्देश्यों का पालन यथावत् हो और उसी आश्रम में श्रीमत् स्वामी जी महाराज का शेष अस्थि भस्म, जो अब तक अजमेर आर्यसमाज में सुरक्षित रक्खा है, वह भी जहाँ सब योग्य समझें, वैसे पधरा दिया जावे जिससे कि युक्त आश्रम में सब आर्यों को सर्वरीत्यादि प्रीति हो।[1]

१. वैदिक पुस्तकालय, जिसमें स्वामी जी के पास की निकली पुस्तकें तथा जो कोई आर्य आदि धर्मार्थ भेंट करे अथवा जो वैदिक पुस्तकें यहाँ नहीं हैं, वे परोपकारिणी सभा खरीद करे, वे सब रक्खो जावें।

२. वेद और वेदांगादि शास्त्रों की व्याख्या करने का कार्यालय स्थापन हो कि जिसमें दो-चार पण्डित नौकर रह कर जो व्याख्या स्वामी जी कर गये हैं, उनको शोध कर प्रकाश करें और जो शेष रह गई हैं उनको स्वामी जी की परिपाटी और सिद्धान्तों के अनुसार पूर्ण करें।

३. वैदिक पाठशाला स्थापन हो कि जिसमें वेद और वेदांगादि शास्त्र स्वामी जी की प्रकाश की हुई प्राचीन रीति से पढ़ाये जावें।

४. वैदिक व्याख्यानालय बनाया जावे कि जिसमें देशोपकारक वैदिक व्याख्यान विद्वान् लोग दिया करें।

५. वैदिक यंत्रालय का स्थान बने कि जहाँ यंत्रालय प्रयाग से उठ कर स्थापन हो जावे।

६. उपदेशक मण्डली और अनाथों के रहने के लिए स्थान बनवाये जावें।

७. उपदेशक मण्डली और अनाथों को भोजनाच्छादनादि के लिए सत्र स्थापन हो कि जिसमें वे धर्मार्थ भोजन करके देशोपकार करें।

८. इन स्थानों के अतिरिक्त उक्त आश्रम के हाथों में बाग तथा कूपादि भी बना दिये जावें।

---

१. यह कृत्य आक्षेप योग्य न होगा क्या?

६. सर्व कार्याध्यक्ष नाम के पदवी का एक अध्यक्ष परोपकारिणी सभा की ओर से नियत होकर सभा की आज्ञा से आश्रम भर के सब कार्य का प्रबन्ध किया करे।

(५) इसके अनन्तर यह वक्तव्य और विचारणीय है कि स्वीकार-पत्र में लिखे तीनों उद्देश्यों को व्याख्या सहित समझने से जो परोपकारिणी सभा का कर्त्तव्य कर्म सिद्ध हुआ है, यह जब पूरा धन हो तब यथावत् पालन हो सकता है। और धन की संख्या जो अब हम लोग देखते हैं तो जितनी आशा रखते थे उतना धन स्वामी जी के पास नहीं निकला। अतएव मैं आप लोगों को इस विषय में विदित करता हूँ कि धन सम्बन्धी जैसा विचार अब हम लोगों के मन में उत्पन्न होता है वैसा ही स्वामी जी के स्वीकार-पत्र लिखने पर हुआ था और इसीलिए उन्होंने राज मेवाड़ की राजकीय कोठी पर 'स्वामी दयानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक निधि' नाम से एक फण्ड स्थापन कर दिया था और उसको आप सब महाशय और आर्यसमाजादि से धन सम्बन्धी सहायता लेकर यहाँ तक बढ़ाने का दृढ़ विचार था कि उनके परम पद प्राप्त होने पर परोपकारिणी सभा को कुछ श्रम न पड़े और इस विषय का एक विज्ञापन भी उन्होंने अपनी विद्यमानता में लिख कर वैदिक यंत्रालय में मुद्रित और प्रकाशित करने को भेजा था, वह और उसके सम्बन्धी सब पत्रादि वहाँ से प्राप्त हो सकते हैं। इसके सिवाय उक्त वैदिक निधि में स्वामी जी ने अपने पास का जो कुछ द्रव्य भिन्न-भिन्न स्थानों में था, वह एकत्र करके जमा कराना भी आरम्भ कर दिया था। उक्त निधि में आज ४३०० के अनुमान जमा होंगे, परन्तु स्वामी जी महाराज का अकस्मात् परमपद प्राप्त होना हो गया, इससे वैदिक निधि की जैसी कि वृद्धि होनी चाहिए थी, वैसी नहीं हो सकी और यह बड़ा भार परोपकारिणी सभा और आर्यसमाजों पर आ पड़ा है। अब जहाँ तक कि विचार किया जावे वहाँ तक उसके सिवाय और कुछ ध्यान में नहीं आता कि परोपकारिणी सभा सब आर्यसमाजों से इस विषय में एक मत होकर उक्त वैदिक निधि की पूर्ण वृद्धि करें क्योंकि जो स्वामी जी विद्यमान होते तो उनको भी धन की सहायता देने वाले इस सभा के सभासद् और सर्व आर्यसमाजों के अतिरिक्त और कौन था? अतएव वैदिक निधि की वृद्धि के नीचे लिखे यत्नों के सिवाय और कोई ध्यान में नहीं आते।

१. प्रथम तो परोपकारिणी सभा के सभासद् अपनी-अपनी शक्ति के

अनुसार विशेष से विशेष जितना चंदा दे सकते हैं वह प्रदान करें और हर एक सभासद अपने इष्ट मित्रों से भी प्रदान कराने का उपाय करें।

२. समस्त आर्यसमाज भी जहाँ तक उनसे बन पड़े चंदा करके सहायता करें और जो उनके फंडों में दूसरे किसी देशोपकारी कार्य के लिए कुछ धन जमा हो तो वह भी एक सम्मति करके स्वामी जी के स्थापित किये हुए निधि में प्रदान करें और प्रत्येक आर्यसमाज में कोई ऐसा नियम विचार करके प्रचलित कर दें कि जिसके अनुसार कुछ धन प्रत्येक समाज से प्रतिवर्ष इस निधि में प्रदान हुआ करे।

३. स्वामी आत्मानन्द सरस्वती जी आदि उपदेशकों को भी सूचना की जावे कि वे भी इस निधि की वृद्धि में तन-मन से तत्पर होकर स्वामी जी के उद्देश्यों की सफलता में भागी हों।

४. यह वैदिक निधि प्रदाताओं के लिए सदा खुला रहे।

५. परोपकारिणी सभा तथा आर्यसमाज और उपदेशकों के सिवाय अन्य सब जाति के सज्जनों को भी द्रव्य प्रदान करने का अधिकार प्राप्त रहे।

६. इसके अनन्तर यह भी विचारणीय है कि अब वैदिक निधि की उक्त प्रकार से बृद्धि करने पर जो द्रव्य एकत्र हो, वह किस प्रकार व्यय किया जाय। इसके उत्तर में केवल दो ही बातें हैं: (१) सिद्ध संख्या के चतुर्थांश के लगभग खर्च होकर वह आश्रम बनाया जावे कि जिसका वर्णन अभी ऊपर किया है। (२) शेष तीनों भागों के गवर्नमेन्ट प्रोमेसरी-नोट खरीदकर दिये जावें कि उनके व्याज से प्रत्येक ऊपर लिखा शाला का खर्च जो परोपकारिणी सभा नियत करे उसमें व्यय हो। अन्त में आप सब महाशयों से यही प्रार्थना है कि मेरे विचार में जो कुछ योग्य प्रतीत हुआ वह आपकी सेवा में निवेदन कर दिया। अब इस विषय को विचार कर निश्चय करना आपके आधीन है। किमधिकम्। इसके अनन्तर सभा की आज्ञानुसार।

(१) श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का स्वीकार-पत्र पढ़ा गया और जिन सभासदों ने सम्मति स्वरूप अपने हस्ताक्षर उक्त स्वीकार-पत्र पर आगे नहीं किये थे उन्होंने इस समय यह कहके प्रकट किया कि उक्त स्वामी जी ने जो धर्म कार्य का भार हम लोगों पर रक्खा है उसे हम स्वीकार करते हैं, पर जो सभासद विद्यमान नहीं हैं उनके पास स्वीकार-पत्र की प्रति प्रमाण करने को भेजी जायेंगी।

(२) कविराज श्यामलदास जी ने प्रस्ताव किया और राजराणा श्री फतहसिंह जी ने अनुमोदन किया किया कि मेरठ निवासी लाला रामशरणदास जी के मरने से सभासद् पद खाली हुआ है उस पर जोधपुर के महाराज प्रतापसिंह जी सी० एस० आई नियत किये जायें। सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

(३) रा० ब० पं० सुन्दरलाल ने प्रस्ताव किया और पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने अनुमोदन किया कि स्व० लाला रामशरणदास जी के स्थान पर मान्यवर रा० ब० पं० गोपालरावहरि देशमुख परोपकारिणी सभा के मन्त्री नियत किये जायें। सबकी सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

(४) एक पत्र इस विषय पर पढ़ा गया कि स्वर्गवासी स्वामी जी ऋग् और यजुर्वेद भाष्य का कौन-कौन सा भाग समाप्त और असमाप्त छोड़ गये हैं। इससे प्रकट हुआ कि समस्त यजुर्वेद का भाष्य तो स्वामी जी पूर्ण कर गये हैं परन्तु एक भाग मात्र उसका अब तक प्रकाशित हुआ है और ऋग्वेद का सप्तम मण्डल तक भाष्य बना है। सब की सम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि पं० भीमसेन तथा ज्वालादत्त प्रूफ के शोधने और संस्कृत भाष्य का हिन्दी में अनुवाद करने के कार्य पर नियत किये जायें और प्रति व्यक्ति को २५ मुद्रा मासिक वेतन मिले। वैदिक यन्त्रालय जितना शीघ्र बन सके अजमेर में लाया जाय और वह इन सभासदों की संभाल में रहे मसूदे के ठाकुर राव बहादुरसिंह जी रा० ब० पं० सुन्दरलाल जी, कविराज श्यामलदास जी पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या और आर्यसमाज अजमेर के प्रधान।

(५) जो द्रव्य स्वामी जी छोड़ गये हैं उसकी याद पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने पढ़ सुनाई जिससे प्रकट हुआ कि ४३०० रुपये नकद और ११००० का शोध किये जाने के लायक लहना, रु० ४०० के मूल्य का यंत्रालय और विक्रयार्थ ४०००० रुपये की पुस्तकें हैं।

(६) सब की सम्मति से स्वीकार हुआ कि पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या सब पुस्तकें, कागज और हिसाब आदि को संभाल लें और शोध करें पीछे एक यादी प्रस्तुत करें कि स्वामी जी का क्या लेना देना है। स्वामी जी के द्रव्य का जमा रखना तथा स्वीकार-पत्र लिखित कार्यों के निमित्त द्रव्य एकत्र करना निम्नलिखित सभासदों के आधीन रहे। राव जी श्री बहादुर-सिंह जी मसूदा, श्री फतहसिंह जी देलवाड़ा, कविराज श्यामलदास जी

उदयपुर, पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, उदयपुर, लाला साईंदास जी लाहौर, रा० ब० गोपालराव हरि देशमुख बम्बई, राजा जयकृष्णदास सी० एस० आई बिजनौर, बाबू दुर्गाप्रसाद जी फर्रुखाबाद यह सभा विभाग श्रीमन्महाराजाधिराज मेवाड़ाधिपति तथा जोधपुर के महाराज प्रतापसिंह जी जी० सी० एस० आई० के आज्ञानुसार काम करेगी।

(७) रा० ब० पं० महादेव गोविन्द रानडे ने प्रस्ताव किया और रा० ब० पं० सुन्दरलाल ने अनुमोदन किया कि सर्व समाजों का परस्पर तथा परोपकारिणी सभा से भी व्यवहार बढ़ाने के हेतु आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों की एक सभा निर्माण करनी चाहिए। जब तक यह सभा नहीं बनती तब तक आर्यसमाजों के जो-जो प्रतिनिधि परोपकारिणी सभा में सभासद् हैं, वे ही आर्यसमाजों के प्रतिनिधि माने जायेंगे। जब प्रतिनिधि सभा स्थापित हो जायगी, तब परोपकारिणी सभा में जो-जो सभासद् पद खाली होंगे, वह इस प्रतिनिधि सभा के योग्य सभासदों से इस प्रकार पूर्ण किए जायेंगे कि परोपकारिणी सभा के सभासदों में आधे प्रतिनिधि सभा के लोग होंगे। सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकार हुआ।

(८) पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा बी० ए० (आक्सफोर्ड) ने प्रस्ताव किया और लाला साईंदास ने अनुमोदन किया कि सभा के इस वृत्तान्त की एक-एक प्रति सब आर्यसमाजों को भेजी जावे और उनसे प्रार्थना की जाय कि प्रतिनिधि सभा के लिए सभासद् नियत करने से तथा और कोई नवीन कार्य हो उससे परोपकारिणी सभा को यथाशक्ति ज्ञात करावें।

ता० २८ दिसम्बर, १८८३ ई०

ह० मूलराज परोपकारिणी सभा के उपसभापति

—साम्प्रत प्रधान

पश्चात् यह समस्त आज का कृत्य आगे लिखे समस्त आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों को नीचे से बुला कर परम सत्कारपूर्वक सुनाया। पश्चात् सभा का विसर्जन हुआ।

ता० २९ दिसम्बर, सन् १८८३ ई० को फिर सभा हुई। पूर्व दिनवत् सब सभासद् उपस्थित हुए और लाला मूलराज प्रधान के स्थान में सुशोभित थे। केवल विशेष इतना ही था कि इस दिन मसूदे के राव श्री बहादुरसिंह जी स्वयं विद्यमान थे।

(१) निम्नलिखित आर्यसमाजों के पत्र पढ़े गये अर्थात् आर्यसमाज मेरठ और जकोबाबाद इत्यादि।

(२) स्वामी जी के शिष्य तथा संन्यासियों के निवेदन पत्र पढ़े गये और इस विषय में उनको सभा की ओर से यह उत्तर देना स्थिर हुआ कि उनको उचित है कि संस्कृत के अध्ययन में श्रम करें। स्वामी जी के कहे हुए नियमानुसार चलें और परोपकार में तत्पर रह के योग्यता लाभ करें तो सभा के नियमानुसार उनको दक्षिणा मिलेगी। रामानन्द ब्रह्मचारी के विषय में यह निश्चय हुआ कि उसे ४ रु० मासिक मिला करें और गिरानन्द के विषय में यह स्थिर हुआ कि वह विद्यालय के स्थापित होने तक प्रतीक्षा करें। शेष रहे प्रार्थनापत्रों का उत्तर उप मन्त्री, सभा के अनुसार दें।

(३) स्वामी जी के द्रव्य के विषय में यह स्थिर हुआ कि उपमंत्री, स्वामी जी का लहना वसूल करने का उपाय करें।

(४) रा० ब० पं० महादेव गोविन्द रानडे ने यह प्रस्ताव किया और कविराज श्यामलदास जी ने सम्मति प्रकट की कि दयानन्दाश्रम बनाया जाय और उसमें इतने स्थान हों। अर्थात् १. पुस्तकालय, २. अंग्रेजी वैदिक पाठशाला, ३. विक्रयार्थ पुस्तकों का भण्डार, ४. अनाथाश्रम, ५. अद्भुत वस्तु संग्रहालय, ६. यन्त्रालय और ७. व्याख्यान-गृह। यह निश्चय हुआ कि अभी इसके लिए स्थान नियत न किया जाय परन्तु द्रव्य एकत्र करने का उद्योग हो, तदनुसार निधि प्रदान-पत्र अर्थात् चन्दे की फेहरिस्त प्रस्तुत हुई और उसी समय उपस्थित सब लोगों ने मिल के २४००० रुपये के लगभग देना स्वीकार किया[१]।

(५) लाला जगन्नाथप्रसाद ने यह प्रस्ताव किया और कविराज श्यामलदास जी ने सम्मति प्रकट की कि सभा की ओर से निवेदन-पत्र श्रीमन्मेवाड़ाधिपति के द्वारा महाराजा जयपुर तथा जोधपुर के पास भेजें कि वह भी दयानन्दाश्रम के लिए द्रव्य की सहायता दें। सब की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

(६) रा० ब० पं० सुन्दरलाल ने प्रस्ताव किया और लाला जगन्नाथ प्रसाद ने सम्मति दी कि पुनश्च परोपकारिणी सभा का एकत्र करना मान्यवर सभापति के आज्ञाधीन रहे, वह सबको सम्मत हुआ।

(७) रा० ब० पं० सुन्दरलाल ने प्रस्ताव किया और रा० ब० पं०

---

१. थोड़े दिन प्रकाशित हुई चन्दे की फेहरिस्त में ४१४४७,

गोपालराव हरि देशमुख ने सम्मति दी कि व्यय सभापति की आज्ञानुसार हुआ करे और यदि आवश्यक हो तो वे द्रव्य-व्यवस्थापक सभा से विचार लें। यह सबको सम्मत हुआ।

(८) लाला मूलराज ने प्रस्ताव किया और रा० ब० सुन्दरलाल ने अनुमोदन किया कि स्वामी जी की सम्पत्ति सभापति के पास जमा रहे। यह भी सबको सम्मत हुआ।

(९) फिर लाला मूलराज ने प्रस्ताव किया और रा० ब० पं० सुन्दरलाल ने सम्मति दी कि स्वामी जी की पुस्तकों का मूल्य और उनका नवीन संस्करण करना यंत्रालय की सभा के आधीन रहे। यह प्रस्ताव सबको सम्मत हुआ।

(१०) रा० ब० पं० गोपालराव हरि देशमुख ने प्रस्ताव किया और रा० ब० पं० सुन्दरलाल ने सम्मति दी कि योग्यता से अपने पद का कार्य निर्वाह करने के कारण सभा की ओर से सभापति को धन्यवाद दिया जाय॥ यह भी प्रस्ताव सबको सम्मत हुआ।

ह० मूलराज उपसभापति परोपकारिणी सभा साम्प्रत प्रधान॥

इसके अनन्तर नीचे नीचे समाजों के प्रतिनिधियों को यह समस्त कार्य यथापूर्व सुनाकर सभा का विसर्जन हुआ।

उन आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों के नाम, जो इस समय उपस्थित थे।

भाई जवाहरसिंह व लाला मंजूलाल लाहौर, (१) पं० महात्मा सिकन्दराबाद, (२) पं० रामप्रकाश व काशीप्रसाद मिर्जापुर, (३) मुन्शी समर्थदान व बाबू रामदयालसिंह प्रयाग, (४) लाला श्रीनारायण वर्मा कानपुर, (५) पं० गोपालराव हरि व पं० लक्ष्मीदत्त व मुन्शी हरनारायण व लाला नारायणदास व लाला मंत्री व लाला खुन्नूलाल व लाला ज्वालाप्रसाद व पुरोहित मन्नीलाल व चौबे तोताराम फ़र्रुखाबाद, (६) लाला बंदेदीन, भोजपुर (७) फतहगढ़ पं० केशवराम व बाबू रामाधार, लखनऊ, (८) बाबू माताप्रसाद शाहजहाँपुर, (९) बाबू तुलसीराम व देवीप्रसाद बरेली, (१०) बाबू क्षेमकरणदास मुरादाबाद, (११) ठाकुर भूपालसिंह अचलेश्वर (छलेसर), (१२) पण्डित रामदुलारे आगरा, (१३) पण्डित रामनारायण मथुरा, (१४) ठाकुर महावीरसिंह व पण्डित गंगाप्रसाद जीयानन्द व कन्हैयालाल चांदाबा, (१५) मुन्शी लक्ष्मणस्वरूप व पण्डित पालीराम व जगन्नाथप्रसाद मेरठ, (१६) बाबू राधाकृष्ण रोहतक,

(१७) बाबू सुन्दरलाल सहारनपुर, (१८) स्वामी कृपाराम व वंशीलाल देहरादून, (१९) पण्डित उमरावसिंह व बाबू रंगीलाल व जमीयतराय रुड़की, (२०) बाबू पंचमसिंह कसौली, (२१) लाला विष्णुसहाय व गोपालसहाय फीरोजपुर, (२२) बाबू गणेशप्रसाद आदम बाहन, (२३) मास्टर दयाराम गुजरात, (२४) ठाकुर नन्दकिशोर व पण्डित गौरीशंकर जयपुर, (२५) रा० सेवकलाल कृष्णदास व अमृतदास नारायणदास बम्बई, (२६) बा० महाराज कृष्ण व सन्तसिंह मुरार, (२७) लाला शिवनारायण व मंगलदीन जी रामगढ़, (२८) पण्डित परमानन्द शिमला, (२९) ब्रह्मचारी रामानन्द व पं० भीमसेन व देवदत्त स्वामी जी के शिष्य बाबू पद्मचन्द व कमलनयनादि अजमेर, (३०) बाकी रहे समाजों ने अपना अधिकार इन्हीं ऊपर लिखे सभासद् व समाजियों को लिख दिया था।

पश्चात् श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी ने खड़े होकर परस्पर ऐक्य और मित्रता के विषय में ऐसी उत्तम रीति से कथन किया कि मानो स्वयं ऐक्य इस सभा में उपस्थित है। तदनन्तर श्री स्वामी जी के वियोग और उनकी प्रशंसा में उन्होंने बहुत कुछ कहा जिससे ज्ञात होता था कि देशोन्नति का अंकुर आपके भी हृदय में भली-भाँति समुत्पन्न है। इस पर पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा ने कविवर को धन्यवाद दे उनके कथन को पुष्ट किया। इसके पश्चात् श्रीयुत पं० गोपालराव हरि जी अधिपति पाठशाला जिला फर्रुखाबाद ने श्री स्वामी जी के वियोग और वेद विषय में ऐसी वक्तृता की कि सब अश्रुपाती हो गये। तत्पश्चात् श्रीयुत पण्डित लक्ष्मीदत्त जी ने परोपकारिणी सभा को धन्यवाद देकर परस्पर ऐक्य और मित्रता, जल और दूध के समान रखने को कहा।

पश्चात् श्रीयुत रावबहादुर गोपालराव हरि जी देशमुख ने कहा कि इस समय दूर-दूर स्थानों के आर्यगण उपस्थित हैं, सब कोई जान लें कि स्वामी जी का यह सिद्धान्त था[1] और जहाँ तक हो सके इसी के अनुसार सब बर्ताव करें—मंत्र संहिता वेद हैं, ब्राह्मण इत्यादि नहीं। वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं है, वेदों में सब सत्य विद्याओं का मूल है, पाषाणादि मूर्तिपूजन वेदविरुद्ध है, ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अजर, अमर, नित्य, पवित्र आदि लक्षणी है। उसी की

१. स्वयं श्रीमान् दयासागर स्वामी जी महाराज अपने जो सिद्धान्त लिख धर गये हैं उनकी ठीक प्रति आगे ११ वें मयूख में लिखी देखने योग्य है।

उपासना करनी योग्य है। तथा जो बात नीति और बुद्धि से विरुद्ध हो वह असाननीय है, वेदों का अधिकार सब वर्णों को समान ही है, कर्म और गुणों से वर्ण हैं, वीर्य से नहीं, जहाँ तक हो सके बाल्य-विवाह से बचकर ब्रह्मचर्य रखना, वायु की शुद्धि के कारण हवन की आवश्यकता है, मृतकों को भोजनाच्छादनादि कदापि नहीं पहुँचता, वेदों की आज्ञा है कि सब मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जावें। आर्यों को उचित है कि पाठशाला नियत करें और प्राचीन ग्रन्थों का पठन-पाठन रक्खें और स्वार्थ-साधकों ने उनमें यत्र-कुत्र जो कुछ मिला दिया हो उसको वेदों की कसौटी से परीक्षा करके दूर कर दें। इत्यादि कह कर उपदेश किया कि प्रति वर्ष स्वामी जी महाराज की मृत्यु तिथि का स्मरण रख समस्त आर्यजन यथासामर्थ्य उत्सव किया करें और वह दिन पवित्र कर्म करते ही व्यतीत हो।

इसके अनन्तर उक्त पत्र पर इस ग्रन्थकार के द्वारा सब सभासदों के हस्ताक्षर कराये गये [1] पश्चात् सभा का विसर्जन हुआ। तीसरे दिवस रविवार को प्रातःकाल होते ही फिर सब आर्यजन उदयपुराधीश की कोठी पर एकत्र हुए और उन्होंने कार्यकारिणी सभा के समस्त सभासदों से अपना अपना नाम ग्राम और समाज का अधिकार जताकर भेंट की। पश्चात् आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों ने प्रतिनिधि सभा नियत करने का विचार किया। इस पर पं० उमरावसिंह जी रुड़की ने इस सभा का विषय जो एक दो परोपकारिणी के सभासदों की अनुमति से बना लाए थे पढ़ कर सुनाया उसको कुछ न्यूनाधिक करके सबने स्वीकार किया।

फिर दिन के तीन बजे पीछे सब आर्यसमाजों के प्रतिनिधि और परोपकारिणी सभा के सभासद् अजमेर आर्यसमाज के स्थान अर्थात् श्रीयुत राव बहादुरसिंह जी मसूदा बर्मा मसूदाधीश की हवेली में एकत्र हुए, तहाँ प्रथम सब का फोटो लिया गया। पश्चात् श्रीयुत श्याम जी कृष्ण वर्मा ने एक अति उत्तम व्याख्यान दिया, प्रथम इस देश के प्राचीन सौभाग्य का वर्णन करके, वर्तमान समय के अभाग्य को जताया और 'एतद्देशप्रसूतस्य' इस मनु वाक्य के प्रमाण से कहा कि वह समय ऐसा था कि देश-देश के मनुष्य इस देश में आकर विद्या ग्रहण करते थे। आज वह समय है कि मेरे ऐसे अभागे इस देश से अन्य देश में विद्याध्ययनार्थ जाते हैं। इसमें

१. उस समय हमारे एक मित्र उत्तरीय लघु आर्यसमाज के बुद्धिमान् अधिकारी ऐसे चौंके कि फिर किसी प्रकार ठिकाने न आये। अतः स्मरणीय है। यहाँ इनका नाम लकीर पर है।

कुछ संदेह नहीं कि संस्कृत विद्या सब विद्याओं की मुकुटमणि है। इसकी प्रशंसा और आदर भाव कुछ इन दिनों यूरोप, अमेरिका, जर्मन इत्यादि देशों में होता है उसका हमारे देश में लेशमात्र भी नहीं। आक्स-फोर्ड नगर में सरकार को छोड़ केवल रईस साहूकार लोग ४० लाख रुपया वार्षिक इसी विद्याध्ययन के निमित्त देते हैं। अब कहो, उस नगर की उपमा इस देश के कौन से नगर को देवें। इसके उपरान्त संस्कृत विद्या का प्रत्यक्ष प्रभाव तुम लोग यह देख लो कि यदि मुझको संस्कृत न आती होती तो मैं ग्रीक, लैटिन आदि भाषा ऐसी शीघ्र न सीख सकता।

लन्दन नगर में मि० ग्लैडस्टन वजीर से मेरी भेंट हुई। उस समय मैंने संस्कृत की योग्यता दिखलाई। तब वे मुझसे कहने लगे कि मैं इस बात का बड़ा शोक करता हूँ कि मेरी आयु अधिक हो गई। यदि मैं दस वर्ष भी कम होता तो संस्कृत का आरम्भ कर देता।

हे आर्य भ्रातृगण, देखो अन्यदेशीय पुरुष संस्कृत का कैसा आदर भाव करते हैं। एक हम हैं जो खत्री से क्षत्री, नाऊ से ठाकुर, कुम्हार से प्रजापति इत्यादि पद-प्राप्ति पर मरे मिटते हैं परन्तु जो इन पदों के कारण हैं, जिन गुणों की प्रशंसा है, उनको ग्रहण नहीं करते और न अपनी देश-दशा की ओर कभी कोई भूलकर निहारते हैं। हे भाइयो, अब हमारा सोने का समय नहीं है, हुआ सो हुआ, अब भी देशोन्नति पर कटिबद्ध हो जाओ। परोपकारिणी सभा ने जो हमारे लिए दयानन्द यूनीवर्सिटी स्थापित करने के लिए विचार किया है, जिसमें वैदिक कालेज भी होगा, जिससे हमारे लिए संस्कृत विद्या का द्वार खुल जाएगा, अति उपयोगी है। समय बार-बार नहीं मिलता। यदि इस समय भी तुम न चेते और भेंड़याधसान पर ही चलते रहे अथवा नाऊ की बरात की भांति जने-जने ठाकुर बन बैठे और घर-घर दयानन्द स्मारक चिह्न बनने ··· तो सत्य कहता हूँ कि फिर तुम्हारे करे कुछ भी न होगा और लोग जितना तुमको धिक्कारें अथवा हंसें उतना थोड़ा ही होगा। परन्तु मुझको पूरा विश्वास है कि यह कार्य अवश्य पूरा होगा क्योंकि हमारे आर्यगण और परोपकारिणी के समस्त सभासद् ऐसे हैं कि इनमें से केवल एक ही पुरुष कहो सो कर सकता है[1]

इसके अनन्तर श्रीमान् परम सुजानराव बहादुरसिंह जी वर्मा मसूदाधीश जी ने एक अति सुललित व्याख्यान सुनाया। तत्पश्चात् भाई

१. सभासद् महाशय, कभी किसी को इनके इस अन्तिम कथन का भी परिचय आप देवेंगे वा नहीं ?

जवाहरसिंह जी आदि कितने ही समाजीय सभ्यों के एक से एक उत्तम व्याख्यान होकर समाज का विसर्जन हुआ और सब लोग अति प्रमुदित पुलकित हो परस्पर मिल मिलाकर एक दूसरे से आज्ञा लेते लिवाते कोई आज कोई कल, यों अपने-अपने ग्राम और नगरों को चलते हुए। और राव बहारदुर पं० गोपाल राव हरि जी देशमुख तथैव श्याम जी कृष्ण वर्मा और लाला जगन्नाथप्रसाद जी रईस नगर फर्रुखाबाद अपनी इस सभा का धन्यवाद पत्र लेकर श्री महाराणा साहब की सेवा में उपस्थित हुए। वहाँ परम प्रशंस्य श्री महाराजाधिराज ने इन सबका बड़ा ही आतिथ्य सत्कार किया। प्रतिदिन महद्राज सभा में ये सब लोग पधारते रहे। एक दिन श्रीयुत श्यामजी कृष्ण वर्मा का वहाँ भी व्याख्यान हुआ। श्री दरबार इन सब सभ्य पुरुषों से बहुत ही प्रसन्न हुए। बिदा होने के दिन सबको खिलअत, अर्थात् बहुमूल्य महार्ह वस्त्रादि और मौक्तिक माला पारितोषिक समर्पण कर बड़ी प्रीति और सम्मान के साथ बिदा किया।

इस प्रकार इस परोपकारिणी सभा के अधिवेशन में श्रीमान् अवशिष्ट सत्कीर्ति स्वामी जी महाराज के आठ मास प्रथम विरचित स्वीकार-पत्र के अनुसार हुआ प्रबन्ध देख सुन उस समय भारतवासियों का बहुत कुछ समाधान हुआ तथा इस सभा में आये हुए सत्पुरुषों का आगत स्वागत भी आरम्भ से लेकर समाप्ति तक प्रशंसित सभा ने अति उत्तम रीति से किया। प्रबंध इसका अजमेर समाज के हाथ था। इसमें जो कुछ व्यय हुआ वह सब महा महोदय उदयपुराधीश ने राज्य के अधीन रक्खा।

परन्तु क्षति इसमें केवल यही एक बड़ी भारी रही कि शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण परम प्रशंस्य प्रकृति श्रीमान् महाराणा जी स्वयं अजमेर न पधार सके। श्रीमानों को इसका बड़ा ही उत्साह था। उन्होंने अपने यहाँ से भेजे हुए राज्याधिकारीगण से बड़ी ताकीद इस कार्य को परमानन्दपूर्वक कर आने की कर दी थी। तथैव इसका वृत्तान्त घड़ी प्रति घड़ी तार और पत्रों के द्वारा अपने समीप मंगाते रहे। सुनते हैं कि एतदर्थ खास डाक सवारों की बिठला रक्खी थी। स्पष्ट तो यह है कि उन दिनों केवल कलेवर मात्र से श्रीमान् राजधानी रहे हैं।

इस कार्य में आये हुए समस्त प्रतिनिधि और सभासद् एक से एक अधिक विद्वान् बुद्धिमान् और विचारवान् थे। उनकी कर्त्तव्यता और उत्साहादि उत्कृष्ट गुणों की प्रशंसा श्रवण कर श्री दरबार को स्वसंयोग न होने का अधिकतर पश्चात्ताप रहा और उसी दिन से उनके चित्त में यह

लालसा लग गई थी कि कुछ हो अब की वर्ष हम अवश्य ही अपनी सभा सुधर्मा को समलंकृत करेंगे। यों ज्यों त्यों नौ मास पूरे कर तीन मास शेष रहते ही सभा के द्वितीयाधिवेशन विषयक लिखा पढ़ी का आरम्भ करा दिया कि इस वर्ष का उत्सव सभासद सदाशय कहाँ होना चाहते हैं और उसमें क्या क्या होना आवश्यक है इत्यादि पत्रों का उत्तर प्रत्युत्तर आते जाते दिसम्बर मास भी आ गया। इसी मास की ता० २८ व २९ को सभा का द्वितीयाधिवेशन होने वाला था। परन्तु परम दारुण शोक का विषय यह हुआ कि श्रीमान् सकल सद्गुण निधान श्री महाराणा साहब का यह उत्साह और मनोरथ सिद्ध न हुआ अर्थात् उन्हीं दिनों मानो कोई महोत्सव सुरपुर में उपस्थित हो गया उसके निमंत्रण में श्रीमान् अन्वर्थाभिधान श्री सज्जनसिंह जी महाराज ४ दिन पूर्व एकाएक उधर सिधार गये।[1] हा हन्त ! हा हन्त ! हा हन्त ! हाँ बन्धुगण 'मनचीती ना होइ प्रभु चीती तत्काल' की कथा हो गई। कहो, यह सब भारत दुर्दैव का परमाद्भुत चरित्र नहीं तो और क्या है ? हा ठक ठक चोट सुनार की एक ही धम्म लुहार की होकर धरती हिल गई। इस प्रकार बार-बार जिस पर प्रहार हों, वह किस बिध खड़ा हो सकता है ? हा भारत पर, महाभारत का सबे ढब चढ़ाव पर चढ़ाव हो रहा है, तथापि हम लोग निर्लज्जता के साथ 'शल्यो जेष्यति पाण्डवान्' की भाँति इसकी उन्नति की आशा बढ़ा रहे हैं। देखिये क्या होता है ?

सत्य तो यह है कि इस महा अशनि प्रहार से भारतवासियों का वह हृदयंगत घाव पुनः विदीर्ण होकर शतगुणित हो गया। बस इतने ही से इधर की रही सही सब व्यवस्था आप सर्व महाशय स्वबुद्ध्या विचार ले

१. भाई सत्य तो यह है कि यह राजहंस तो मानो अपने सद्गुरु चरण सरोरुह का परम असह्य विश्लेष सुनते ही उड़ जाने वाला था परन्तु न जाने अपने किन परमावश्यकीय कार्यों के परिपूर्त्यर्थ वह सवा वर्ष अधिक ठहरा रहा। यहाँ के राजगण के कर कमलों की शोभा बढ़ाने वाला इनका इतिहास तैयार हो गया है। इस समय इनकी आयु केवल २५ वर्ष से कुछ ही अधिक थी। इतने ही अल्प काल में इन्होंने अपने को अमर कर लिया। सत्य कहा है—तेजसां नहि वयः समीक्ष्यते ! हा ! महाराणा जी अब इस अवनितल पर कौन ऐसा राजा है जो आपके समान हमारे अनाथ बालों को भरपूर पारितोषिक देकर यह लिखेगा कि आज से तुम कभी अपने को अनाथ मत मानो। इति।

सकते हैं। इस बात को हुए आज अवधि सवा दो वर्ष से अधिक हो चुका, अद्यावधि उपकारिणी सभा का कोई अधिपति नियत नहीं हुआ। सत्य है बिना सुकृत बल कौन उस पदवी को स्वीकार कर सकता है। अस्तु, यह रहा हुआ सभा का द्वितीयाधिवेशन फिर एक वर्ष बाद सन् ८५ के दिसम्बर में हुआ न हुआ के बराबर हुआ। परन्तु इस वर्ष वैसा भी न हो सका। तथापि, राम भरोसे जे रहें वे पर्वत हर याय। तथा च 'जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितो' के समान परमधाम निवासी श्रीमान् योगिराज महाराज के तपोबल से उनका समारोपित उद्यान खूब विकसित और सुवासित देखा जा रहा है। आशा है कि वह सर्व नियन्ता सर्वान्तर्यामी अवश्य किसी न किसी दिन हमारी परम प्रिया सभा को भी निष्कलंक कर दिखावेगा। अलमति विस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु।

इति श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीय तृतीयखण्डे परोपकारिणी सभाधिवेशनकथाविवर्णनं नाम दशमो मयूखः॥

अथैकादशो मयूखः

श्रीमदुद्धारितसिद्धान्तानुदर्शन

बन्धुगण, अब इस मयूख के द्वारा श्रीमान् सकल विद्या विधान स्वामी जी महाराज के मुख कमल विनिःसृत उपदेश और उनके साक्षात् सिद्धान्तों की ठीक-ठीक मति आप समस्त महाशयों के सम्मुख धर कर प्रार्थना करता हूँ कि किञ्चित् चित्त लगा कर इनका आशय ध्यान में लाइये जिससे देश भलाई हो।

प्रशंसित श्रीमान् लिखते हैं—स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

कहिये बन्धुगण, कितने समीचीन और सर्वोत्तम अमृत से भी अधिक-तर स्वादु ये सर्वतन्त्र सिद्धान्त और आदेश व उपदेश श्रीमान् दयासागर स्वामी जी महाराज हमारे लिए लिख कर धर गये हैं।

इनको न देखना, न सुनना, न समझना, न मानना, न लेना, हमारी अतिशय मूर्खता और समझना स्वीकार करना आदि काम पूर्ण बुद्धिमत्ता का है। यह बात केवल मैं ही नहीं कहता किन्तु भूमण्डल मात्र के विद्वानों का यही सिद्धान्त है। और कथन व मत है कि इस काल में परम धन्य जन्म श्रीमान् स्वामी जी महाराज का भरतखण्ड में हो गया है। इस विषय को विशेष पुष्ट करने की आवश्यकता नहीं कि ऊपर नवम मयूख के द्वारा

(जिसको कि मयूखराज कहना चाहिए) भली-भाँति प्रतीत करा दिया गया है कि ये श्रीमान् इस प्रकार जगत् पूज्य चरित्र हुए हैं इसका कुछ दृष्टान्त आगे भी देख मिलेगा।

सत्य तो यह है कि इन महानुभाव ने भरतखण्ड की खोई हुई कीर्ति प्रतिष्ठा और धर्म बलात् लाकर स्थापन किया है। रह गई सुख सौभाग्यादि सम्पत्ति—जिसकी कि चाह मनुष्य मात्र को अत्यन्त रहती है। उसको रह गई न कहना चाहिये क्योंकि उसका मुख्य उपाय गुण-ग्रहण और कर्त्तव्यता, सो ये भली भाँति सबको दर्शा गये। इतना ही नहीं किन्तु विस्तारपूर्वक लिख कर भी धर गये हैं। अतः उनके उन सत्यार्थ-प्रकाशादि ग्रन्थों को सादर देखना समझना और तदनुरूप चाल चलना केवल काम हमारा है। हमको स्मरण रखना चाहिए कि सम्पत्ति इसी प्रकार सर्वत्र सदैव सबने पाई, पावेंगे और पाते रहेंगे क्योंकि कहा है "गुण-लुब्धाः स्वयमेव सम्पदः" कि दौलत गुणों पर आशिक है। अर्थात् वह गुणी पुरुष की दासी है। कदापि उसका साथ वह नहीं छोड़ती। इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त इंग्लिस्तान, अमेरिका और हिन्दुस्तान की हाल और पूर्व दशा है। ऐसा निश्चय समझ कर जो सत् पुरुष श्रीमान् के सिद्धान्त और आदेशों पर दत्तचित्त होंगे वे सदैव इस इस जगत् में धन्यवाद पावेंगे। विज्ञेषु किं बहुनेति शम्।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती दिग्विजयार्कीय तृतीयखण्डे श्रीमदुद्धारितसिद्धान्ताऽनुदर्शनं नाम एकादशो मयूखः ॥

अथ द्वादशो मयूखः

फलपाकानुवर्णनपूर्वक आत्मनिवेदन

बन्धुगण, आज का दिवस बड़े ही आनन्द का है जो मैं अशेष विघ्नों से बचकर इस ग्रन्थ के अन्तिम मयूख के लेखनार्थ प्रवृत्त हुआ। अतः प्रथम इस सर्वशक्तिमान्, करुणावरुणालय का अपार धन्यवाद करता हूँ जिसने यह सुअवसर मेरे हाथ देकर मुझे आप्तकाम किया। बस यही एक मनोरथ मेरे अन्तःकरण में चुभा हुआ था कि यह ग्रन्थ अवश्य समाप्त मेरे हाथ से होकर बुधवर्गों के अवलोकनार्थ आवे, सो पूर्ण हुआ। श्री जगदीश्वर इसी प्रकार उन समस्त सुहृद्वर्यों को भी आप्तकाम करे जो सदा ऐसे ही कामों में अपना ध्यान जमा रहे हों वा जमावें।

द्वितीय, परम धन्यवाद करता हूँ अपने उन समस्त सहायक जनों का जिन्होंने थोड़ा वा बहुत तन या मन या धन अथवा दोनों वा तीनों के द्वारा शुद्धान्तःकरण से मुझे इस काम में सहायता दी है। हे जगदीश्वर, इन सब को सर्वकाल प्रसन्नचित्त रखकर उनके इस प्रकार के उपकारक उत्साहों को वृद्धिगत कर जिससे ऐसे अनेक काम उनके द्वारा तैयार हों और होते रहें। हे परमात्मन् इस प्रकार के और भी सज्जन पुरुषों को इस देश में कर दे जिससे अति सत्वर भारत भलाई हो।

तृतीय, अधिकतर धन्यवाद योग्य वे सत्पुरुष होंगे जो मेरा और मेरे सहायकों का श्रम सफल करने अर्थात् यह ग्रन्थ किमर्थं बना और इसका ठीक-ठीक आशय क्या है उसको स्वयं समझ अपने इष्ट मित्रादि समस्त सत्पुरुषों के चित्त में इसका भाव ज्यों का त्यों भर देने में पुरुषार्थ कर दिखावेंगे।

इस व्यतिरिक्त स्वदेशीय समस्त बंधुवर्गों की सेवा में परम नम्रता-पूर्वक प्रार्थना, विनय और निवेदन यह कर्त्तव्य है कि वे इस ग्रन्थ को अपनी अमल दृष्टि से दो तीन बार अवलोकन करें। पीछे इसमें पतित दोषों को न्याय बुद्धि से स्वयं दूर करके मुझे भी सूचित करें। ऐसे महाशयों का मैं अतीव उपकृत और आभारी हूँगा। सब को यह भी विदित है कि कोई भी मनुष्य इस जगत् में ऐसा नहीं हो सकता कि उसमें कुछ भी दोष न हो तो फिर उसका काम कब निर्दोष देखने में आ सकता है। ऐसा न्याय हमारे जगद्गुरु महाराज ठौर-ठौर खास अपने ही विषय में दर्शा गये हैं तो फिर मैं क्या चीज रहा, परन्तु साथ ही इसके उन्होंने यह भी जता दिया है कि ऐसी दशा में सभ्यता का काम यही है कि वे ग्रन्थकार का ठीक इंगित समझ उसका लेख सुसंगत कर लें।

विदित हो कि इस ग्रन्थ के इस सहित सब तीन खण्ड और सब खण्डों के मिला कर २४ मयूख (अध्याय) हैं, उन सब का मुख्य आशय उनके नाम मात्र से जान लिया जाता है। इसी कारण उनके नाम का सूचीपत्र प्रत्येक खण्ड के आरम्भ में लगा दिया है। वहाँ से आगे प्रत्येक खण्ड की भूमिका है, उन सबका मुख्य आशय यही है कि श्रीमान् स्वामी जी महाराज की अनुपम विद्या, चातुरी, विज्ञान, विचार और उद्योगादि यावत् गुण तथा आदेश न आचरण ऐसे शुद्ध, पवित्र और सर्वथा सर्वग्राह्य हैं कि जिनसे स्वदेश सुधार की पूर्ण आशा है। इसलिए तदनुकूल चाल चल कर

हमारे समस्त बंधु वर्ग, विद्वान्, धनवान्, बलवान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, आयुष्मान्, प्रतापवान् और कीर्तिमान् होवें। और स्वदेश से दरिद्रता को निकाल कर समुद्र के उस पार अति दूर कर दें। यावत् ऐसा आचरण और अनुष्ठान हमारे भाई न करेंगे तावत् किसी को सुख का लेश भी न होगा और सदा पशु सम परतन्त्रता में ही उनका और उनकी संतान का सारा जन्म हाय हाय करते ही व्यतीत होता रहेगा, कहा भी है, "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" अतः हे बन्धुगण इस वाक्य पर पूर्ण विचार करके हो सके उस रीति से परतन्त्रता से छुटने-छुटाने का सब मिलकर पूर्ण यत्न करो। यही मेरी मनोकामना शेष है, एतदर्थ ही यह ग्रन्थ बनाया गया है और एतदर्थ ही श्रीमान् ने यावज्जन्म अनेक प्रकार का उद्योग और उपदेश किया। एतदर्थ ही उन्होंने ग्रन्थ रचे और सर्वत्र घूमते फिरे, एतदर्थ ही अनेक समाज, समाचार पत्र और देश हितैषिजन स्वामी जी की दसों दिशा में प्रशंसा कर रहे हैं, एतदर्थ ही लाखों समझदार लोगों ने स्वामी जी के लिए इतनी हाय-हाय की और कर रहे हैं। अर्थात् इन समस्त कृत्यों का हेतु केवल देश-सुधार करना है। वह हो गये पीछे यहाँ के सब लोग श्रीमान् को अहर्निश धन्यवाद देते तृप्त न होंगे और उनका नाम तथा गुणानुवाद यावत् चन्द्रदिवाकर इस भूमण्डल पर स्थिर रहेगा।

इससे जानना चाहिए कि स्वामी जी महाराज मरे नहीं किन्तु इस अवनितल पर अमर हो बैठे हैं। श्लोक—

देहे पातिनि का रक्षा, यशो रक्ष्यमपाति यत्।
नरः पतितकायोऽपि यशःकायेन तिष्ठति ॥

इसका स्पष्ट भाव यही है कि हे मनुष्यो! एक दिन अवश्य नाश हो जाने वाले शरीर की रक्षा छोड़ तुम सुयश रूपी शरीर को हान कर धरती पर अमर हो बैठो। इस प्रकार के जगदुद्धारक वाक्यों पर ठीक-ठीक चलनें व चलाने वालों में इस समय वे यशोधन श्रीमान् हुए इस कारण कितने ही विचारशील पुरुषों ने इनकी सत्य-सत्य प्रशंसा में अनेक प्रकार के अगणित काव्य यहाँ से लंदन तक प्रत्येक देश-भाषा में बना छोड़े हैं जिनका निदर्शन इस ग्रन्थ में यथाप्रसंग और यथावसर हो चुका[1] व होनहार है। यह ग्रन्थ-

१. देखो द्वितीय खण्ड के ६ मयूख में प्रमाणाष्टक और इस खण्ड का ६वाँ मयूख तथा पूना, पंजाब, राजपूताना, गुजरात, आदि देशों में बने लोकहितवादी आदि ग्रन्थों के समस्त विभागों को कि कैसा-कैसा तत्रस्थ

रचना उनकी विद्यमान दशा से ही सर्वत्र हो रही है और होती जाती है जिनमें ऐसे वाक्य आ रहे हैं : "आगे तो हो गये यहाँ बहुत से ऋषि मुनि। पर हाल में हैं यही एक दयानन्द सरस्वती। जैसे व्यास गौतम भृगु वा बृहस्पती। वैसे विदित हैं जग में दयानन्द सरस्वती॥" एक एव खलु पद्मिनीपतिरेक एव दिवि शीतदीधीतः एक एव च स वेदविद् भुवि द्वितमत्र न कदा श्रुतं मया।

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः।
सयात एष तुकृत् सदग्रणीर्बोभवीति विषयो न नेत्रयोः॥
स्वकीयदेशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथं तु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स मनश्चकार॥

इत्यादि।

बन्धुगण, इन पुण्यश्लोक शिखामणि श्रीमान् से महानुभावों के कार्यों को देख यही कहने में आता है : "क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना कृतघ्नात्" कि सिवाय पशुओं वा कृतघ्नों के जगत् में कौन श्रीमान् जगदुपकारक की बड़ाई में अपना मुख वा मन मोड़ सकता है। तथ्य तो यह है कि जगत् में जितने पातक वा उपपातक वा महापातक कहे हैं उन सबका सिरमौर कृतघ्नता दोष है। उसके करने वाले कृतघ्न कहाते हैं। इनका घोर नरक में निपात हुए पीछे उद्धार होना अतीव कठिन हो जाता है। वरं च "न कृतघ्नस्य निष्कृतिः" उद्धार होता ही नहीं, ऐसा आपके यहाँ का धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है। इस कारण इस महाभयंकर अपार दुःखदायी महापातक से बचने और बचाने के लिए देश देशान्तरों के अनेक दयालु पुरुष अपनी-अपनी देश-भाषा में जैसी कुछ चेतावनी कर रहे हैं वह सबको अवश्य श्राव्य और अतिशय विचारणीय है।

निस्सन्देह श्रीमान् का श्रम उद्योग और उपकार इस भारतवर्ष पर ऐसा हुआ है कि जिससे यह एक जन्म तो क्या अनेक जन्मों से भी उऋण

सत्पुरुषों ने श्रीमान् स्वामी जी महाराज के गुण रत्नों का विमल गान गाया है। इससे अधिकतर आह्लादक बात यह है कि लंदन के परम विज्ञ मैक्समूलर और मोनियर विलियम्स ने स्वभाषा में श्री जी महाराज का जीवन-चरित्र बनाया है और कोई कहे कि क्या उसमें उन्होंने कुछ इनके विरुद्ध नहीं लिखा तो यह विषय पृथक् और सकारण होने के कारण परित्याज्य है क्योंकि उन दोनों ने स्वबुद्धि के अनुसार हमारे वेदों का जो सतर्क भाष्य बनाया है उसकी इन्होंने खूब धज्जियाँ उड़ाईं। इस समय श्री जी के सम्मुख न आ सके तो क्या पीछे से भी अपना जी ठण्डा वे न करते।

नहीं हो सकता। ऐसी दशा में इसका सहज तरणोपाय केवल यही है कि जिनको विधाता ने कुछ भी बुद्धि दी होवे, उसे काम में लावें अर्थात् परम गुरु श्रीमान् के उपकारों को मान उनकी इच्छा और कामों को बने उस रीति सुफल करने में भगीरथवत् प्रयत्न करके अधःपतित भारत को उन्नत करें।

हे परमात्मन् तू भी कृपा करके हमारे समस्त बन्धु गणों को अत्याशु सद् बुद्धि से समलंकृत कर। बिना तेरी पूर्ण सहायता के कभी भारत का भला न होगा। हे दीनदयालु, हे दीनबन्धु, हे दीनानाथ, भारत अब अतीव आर्त है। हे अधमोद्धारक सर्वात्मन् देख तो सही इस वेदाभिमानी देश की कैसी दुर्दशा हो रही है और कैसा और क्या-क्या अत्याचार इस पर लोग कर रहे हैं। हे कृपानिकेतन जगदंधकार विनाशक भगवन्! इस भारत का नाक में दम आ रहा है। ठीक कण्ठावरोधन का समय है, तो भी न जाने क्यों तुझे इसकी करुणा नहीं आती। हे सर्वशक्तिमन् न्यायकारिन् परमेश्वर! अति सर्वत्र वर्जयेत्! यह आप्त वाक्य यदि सत्य है तो अब भारत पर भी अति न होनी चाहिए। देख तो सही कैसा कोलाहल मच रहा है जिधर देखो उधर हाहाकार और त्राहि माम्, त्राहि माम् के अतिरिक्त और कुछ श्रवणगोचर नहीं होता परन्तु न कोई राजा सुनता है न महाराजा इसलिए लाचार हिया हार, हम तेरी शरण में समुपस्थित हो अपना न्याय चाहते हैं। कृपा करके वेग भारतवासियों को उनका हित सोच लेने वाली विशद बुद्धि समर्पण कर, जिससे कि वे आपके उस परमानुग्रह को अच्छी प्रकार से जानें। जिसको कि आपने भारत भलाई के लिए स्वामी दयानन्द जी को उत्पन्न करके उन पर किया व करना चाहा है। और अब तक इस विषय में उनसे जो प्रमाद हुआ उसकी आपसे क्षमा माँगें। इतना ही नहीं किन्तु झटपट कुमार्गों को छोड़ उस सुमार्ग पर चलें जिस पर कि उनके प्राचीन पूर्वज चल कर एक से एक अधिक प्रतापशाली अनन्तकाल तक होते आये हैं।

इसका सार यह है कि आलसी, मूर्ख वा दुराचारी, वृथाभिमानी और नासमझों की बक-बक वा हंसी से डरने व बहकने वाले तथा अपनी असंस्कृत प्रकृति के पीछे चल देने वाले अथवा स्त्रीजित् वा तुनक व नाजुक मिजाज मनुष्य कभी उस सदर्थ अर्थात् परमात्मा ने मनुष्यों के लिए जो-जो बढ़िया वैभव और उपभोग रचे हैं, उनको नहीं पा सकते, तो बस जान लो कि इन दिनों भारत में इसी प्रकार के कपूत अधिकतर भरे हुए हैं। इस

लिए उसकी यह दुर्दशा है। अस्तु, हुआ सो हुआ, आगे को चेतो और बने उस रीति अपना स्वत्व राजभक्ति के साथ हाथ करो। यह श्रीमान् प्रतापभानु श्री स्वामी जी महाराज के उपदेशों का ठीक-ठीक प्रतिफल है। कि इसे चाहो जिस रीति से ठोक बजा लो, अन्तर न होगा। बड़ी कसर तो भाई यह है कि अपने में वह जौहर नहीं है जिस से उनके उपदेश रूपी अमूल्य रत्नों को पहचान सकें, इसीलिए ठगाये जा रहे हैं। हमारे इस महान् दोष के निवृत्यर्थं भारत चिकित्सक श्री स्वामी जी महाराज अपने सिद्धान्तों में ३९वाँ सिद्धान्त लिख गये हैं, उसको ११वें मयूख में देख तदनुसार हमको परीक्षा करके प्रत्येक का कथन और वस्तु का संग्रह करते रहना चाहिये। श्रीमान् ने इस परीक्षा में पाँच कसौटी बताई हैं और सर्वत्र सहस्त्रों मनुष्यों के बीच अपने व्याख्यान में पुकार-पुकार कर कह देते थे कि हे महाशयो इनसे ठीक न बैठने वाली ब्रह्म तक की कही सत्य नहीं हो सकती, उसी प्रकार मेरे कथन को भी मान्य व अमान्य जानते रहना। खबरदार, कभी इसके विरुद्ध न हो कि स्वामी जी कहते थे सो सत्य ही है।

बन्धु गण, यद्यपि अपनी-अपनी विद्या, बुद्धि और विज्ञान के अनुसार अनेक सत् पुरुषों ने अनेक प्रकार से, अनेक ही भाषा में, इनका पवित्र चरित्र वर्णन किया और वह सब परम सत्य और अतीव मनोहर है तथापि इनके गुणों का वर्णन जैसा कि चाहिए वैसा पूरा किसी से भी नहीं हो सका और न हो सकता है। कारण इसका यह है कि इस काम के लिए श्रीमान् से अधिक कोटि के मनुष्य की अपेक्षा थी, सो यहाँ कहाँ अच्छा, वैसा कोई नहीं था तो उन सम वा किञ्चित् न्यून ही कोई होता वैसा भी नहीं, तो फिर बिना तादृश ज्ञान उस महान् गुणगान को कौन पूर्ण कर सकता है। ऐसी दशा में जो कुछ किसी ने लिखा वा पढ़ा उसको यदि कोई अत्युक्ति कहे वा समझे तो उसके समान और कौन नादान होगा। कुछ हो, सिद्धान्त इस लेख का यही है कि प्रशंसकों का अभिप्राय क्या है, यह सबको अच्छे प्रकार समझना चाहिए, वह यही होगा कि हम सब लोग स्वामी जी के कथनानुसार गुणवान् होकर देश भलाई करने लग जायं, बस यही बात यहाँ भी यतिचरण क्रम समझाई गई है।

विदित रहे कि इस खण्ड का सार नवम मयूख, उसका सार उसमें लिखा द्वितीय नम्बरी लेख उसका सार देश हितैषी होना और सर्वस्व सार मनुष्य जन्म सफल कर लेना है। सो यह जिनसे करते बने वे करें। यह काम जैसा दूर से भयंकर दीखता वैसा पास हुए पीछे नहीं रहता। केवल

"स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धि" हो जाना पड़ेगा। देखो तो सही श्रीमान् ने यह कीर्ति और सुयश कितने सत्वर सम्प्राप्त कर लिया। कहने को वे पूरे ६० वर्ष इस पृथ्वी पर रहे परन्तु देश भलाई में केवल उन्होंने अपने अन्तिम १६ ही वर्ष व्यतीत किये। उसमें काम की भाँति काम उन्होंने ठीक १२ ही वर्ष किया वा कर पाया। बस इतने ही में सर्वत्र स्वामी जी स्वामी जी ही हो गये। इसके प्राक् वे कौन थे, कहाँ थे और क्या करते थे यह क्वचित् ही कहीं कोई महाशय जानते होंगे। अब उनकी समस्त आयु भर की बातें चाहो, तहाँ पूछ लो। ऐसे सुप्रसिद्ध यावच्चन्द्रार्क हो गये। बन्धुगण, परमात्मा ने जैसा इनको विद्यादि अनेक अनर्घ्य गुण रत्नों से अलंकृत किया था, वैसा ही इनको सुन्दर स्वरूप और विशाल शरीर भी दिया था। अर्थात् वे अच्छे लम्बे, चौड़े परिपुष्ट, दिव्य और भव्य पुरुष थे। तथा बलवान् भी ऐसे थे कि अपने सम्मुख दस बीस तरुण मनुष्यों को कुछ चीज नहीं समझते थे। वे परमेश्वर के सिवाय किसी और का भय भी कालत्रय में नहीं मानते थे। हजारों हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेज व ईसाई मनुष्यों के बीच बैठ कर सिंह के समान गर्जते हुए उनके ईसा, मूसा और मुहम्मद की भूलें उन्हीं के धर्म ग्रन्थों में से निकालकर अपने वैदिक धर्म की महिमा सबके चित्त में ऐसी प्रकाशित कर देते थे कि फिर किसी को कभी उनका उत्तर नहीं देते बना। वे सदैव प्रसन्न मुख और समुदित चित्त बने रहते थे। कैसा ही कोई प्रश्न करो, उसी क्षण उत्तर लो, ऐसी उनकी स्फूर्ति थी, प्रत्येक अमीर व गरीब उनके समीप पहुँच कर यथेच्छ बातचीत कर सकता था। वे राजा से लेकर रंक तक समान प्रेम और दृष्टि रखते थे। उनको किसी से किसी प्रकार की चाह भी न थी और थी तो इस बात की थी कि सब लोग वैदिक धर्म पर चलें और परस्पर निर्मल मेल मिलाप रख एक दूसरे का हित सोचें और करें तथा सब प्रकार के अधर्म कुसंस्कार, कुकर्म और कुसंगों से बच सब प्रकार के सद्गुणों से विभूषित हों। अपने देश की भलाई में लग जायें। तेज इनका ऐसा था कि कोई राजा महाराजा[1] तक उनके सम्मुख अपनी ऊंची आँख नहीं कर सकता था। इनके सम्मुख आते-आते बड़े-बड़े विद्वान्, शास्त्री और पण्डित अपनी सब विद्या भूल बें बें करने लग जाते थे। ऐसे अनेक प्रसंग इस ग्रन्थकार ने स्वनेत्रों से देखे तथा और भी बहुत से मनुष्य इस बात के साक्षी आज सर्वत्र विद्यमान हैं।

---

१. वे हजारों मनुष्यों के बीच बैठे हुए राजाओं को ललकार कर वेश्याबाजी आदि बुरे चरित्रों को छोड़ने का उपदेश देते थे।

कामी, क्रूर, लबार स्वार्थी और पाखण्डी आदि धर्मद्वेषियों के वे पूरे काल और राजा शिवप्रसाद ऐसे साक्षर वा निरक्षर कपटी घमण्डी लोगों के पूरे दर्प-विनाशक थे।[1] परन्तु छल व कपट मद मत्सर और द्वेष उनसे भी

१. सबको सर्वकाल विदित रहे कि ये काशी निवासी राजा शिवप्रसाद वही हैं जिनका कुछ चरित्र इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के पृ० ६ और १० में वर्णन हो आया है। विशेष जानने की इच्छा हो तो श्री जी रचित भ्रमोच्छेदन, अनुभ्रमोच्छेदन तथा मद्रचित तिमिरनाशक तृतीय खण्ड सार देखें। तात्पर्य यह है कि ये महाशय संस्कृत पढ़े न लिखे तो भी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की बुद्धि से श्री जी से उलझ बैठे। परिणाम में जो कुछ प्रतिष्ठा कमाई थी, वह भी गँवाई। महामूर्ख कहाये तथा अपने साथ पं० बालशास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द जी की भी रही सही पत भंग करा बैठे। इसकी कुछ कैफियत पहले खण्ड के पृष्ठ २२ से २४ तक के पृष्ठ में लिखी मिलेगी। ये महापुरुष ऐसे चालबाज हैं कि इन्होंने अंग्रेजों को भी खूब धोखे दिये और अपने देश वालों की बुराई के साथ उनकी खूब तारीफ लिख-लिख कर उनको खूब ही ठगा तथा काशी नरेश को भी इन महाभाट ने अनेक प्रकरणान्तरों में कलंकित कर छोड़ा। स्वदेश के पूरे विद्रोही होने के कारण समस्त भरतखण्ड इनसे घृणा करने लगा और इनका नाम भेड़राज रख कर इस देश के समस्त सम्पादक गण अपने समाचार पत्र इनकी निंदा से रंगने लगे और यथाप्रसंग रंगते ही जाते हैं। सन् १८८३ ई० तो इनको ऐसा बुरा गुजरा कि आज तक कहीं किसी हिन्दू या मुसलमान को कोई वर्ष तो क्या, दिन भी खराब गया नहीं सुना। हाँ! बड़ी बुरी रीति से लोगों ने चहुँ ओर से एक साथ इनकी धूल उड़ाई, उन्हीं सा हो सो जिये और मुंह दिखाये। तभी कहा है कि महात्मा लोगों के साथ कभी कोई छल या कपट की क्रिया न करे उसका प्रतिफल अत्यन्त बुरा होता है। परमेश्वर इतने ही से कुशल करे तो भी बड़ी बात है। विस्तार यह है कि काशी, प्रयाग और शान्तिपुर आदि के लोगों ने कई दिवस पूर्व से अपने-अपने यहाँ एक-एक दिवस नियत करके दशहरा के रावण, कुम्भकर्ण ऐसा एक-एक इनके नाम का पुतला बना-बना कर उसकी छाती पर हिन्दी व उर्दू व अंग्रेजी के बड़े-बड़े अक्षरों में (देश का बदख्वाह भेड़ राजा शिवप्रसाद) ऐसा लिखा सारे नगर में घुमाय डुग्गी पीटते गाली गलौच करते कराते घाट पर लाये, तहाँ नाना प्रकार के नीचे लिखे अनुसार व्याख्यान सुन कर भंगियों के हाथ से झाड़ू और जूती लगवाय बुरी दशा के साथ जलाकर अपना-अपना सब

नहीं रखते थे जो इनको अपना द्वेषी समझ सदा इनके प्राणों की ताक में रहते थे। आबाल ब्रह्मचारी, अपूर्व सदाचरणी निपट निष्पक्षपाती, निरभिमानी जगत् प्रकाशक वेदादि सच्छास्त्र समुद्धारक, वैदिक यन्त्रालय, वैदिक निधि, वैदिक समाज, वैदिकशाला, वैदिक संस्कारादि धर्म कर्म के संस्थापक, दया के सागर, आनन्द के वारिद अन्वर्थाभिधानी अतिसत्वर गामी हमारे ये स्वामी परमधामी थे। बन्धुगण ! श्री महाराणा उदयपुराधीश ने अपने अभिनन्दन-पत्र में इन सद्गुरु महाराज की बड़ी प्रशंसा यह लिखी है कि ये अपने अनुपम उपदेशों के अनुकूल स्वयं भी चलते हैं। सो निस्सन्देह ये ऐसे ही थे। न्याय के विषय में "न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" यह वाक्य जैसा सदैव उन्होंने अपने मन और मुख में खचित कर रक्खा था। वैसा ही सर्वकाल सबके अनुभव में भी आता रहा।[1] इसके

कृत्य सबने प्रसिद्ध किया। क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे उस हाथ ले। तत्कालीन पत्रों ने राजा शिवप्रसाद का नाना प्रकार से उपहास किया था। द्रष्टव्य भारतमित्र २६ अप्रैल, १८८३ ई० तथा देश हितैषी मास ज्येष्ठ १९४० वि०

१. विदित हो कि इसका निदर्शन अपार है उसमें से कुछ-कुछ इस ग्रन्थ में भी आ चुका है अतः इस समय यहाँ केवल स्मरण मात्र करा देना बहुत है जैसे आत्मारामादि जैनी, मित्रविलासादि सम्पादक श्रीगोपाल आदि पण्डितों के अनेक असभ्य और मिथ्या लेख और श्रद्धाराम व चतुर्भुज आदि अज्ञ पुरुषों की मिथ्या और अवाच्य बक-बक तथा दयानन्द गजकेसरी नाम का स्वकल्पित सोने का तमगा बना कर अपने गले में लटकाना, पूना और काशी आदि के अनेक असभ्यप्रिय पण्डितम्मन्य मनुष्यों का पामर व्यवहार, प्रसिद्ध मुन्शी का स्वार्थवश हो निर्मूल कलंक लगाना, थगरी आदि वैरागी वा गुसाईं लोगों का गाली गलौच करना व ईसाई कहना तथा कतिपय स्थलों के कितने ही जाने हुए पुरुषों का लठ्ठ बांध-बांध कर मारने को चढ़ आना व एक ठाकुर का तलवार निकालना, कितनों ही का विषादि देकर मारण प्रयोगों का करना आदि कर्म श्रीमान् के बहुत से समर्थ और अधिकारी भक्तजनों को जहाँ तहाँ बहुत ही असह्य हो-हो कर उनका विचार वहाँ-वहाँ नालिश करके अन्याय करने वालों को दण्ड दिलाने का निश्चयात्मक हो गया, परन्तु कभी श्रीमान् किसी के इन कामों से प्रसन्न नहीं हुए। यद्यपि लोगों ने अनेक तर्क-वितर्कों के साथ समझाया तथापि आप श्रीमान् उनसे अप्रसन्न ही रहे और सबको शान्तिपूर्वक समझाया कि देखो मेरे विचार

विरुद्ध कभी किसी की उन्होंने सिफारिश की न सुनी तो भी वे दया रहित नहीं देखे गये। वे अपनी बाल्यावस्था से ही सांसारिक यावत् सुखों से विरक्त हो ४५ वर्ष की आयु होने तक निरन्तर विद्या और योगाभ्यास में ही निरत रहे। उसमें पूर्ण परिपक्व हुए पश्चात् सं० १९२५ विक्रमी से तीन चार

से तुम लोगों का विचार कितना विरुद्ध है। मैं चाहता हूँ कि सरकारी सब कारागार जो कि हमारे देशवासियों से जहाँ तहाँ लबालब भरे पड़े हैं खाली हो जाय तथा इस दरिद्र दशा में जब कि पूरी पेट भर के रोटी तक नहीं मिलती) परस्पर लड़-लड़ कर हमारे भाई अपना जो द्रव्य व्यर्थ दण्ड में खराब करते हैं उसको बचाके घर के बाल-बच्चों को गुणवान् करने में लगावें जिससे दारिद्रय घटे और देश सुधरे, सो यह मेरा मनोरथ कभी तुम्हारी ऐसी सम्मति से सिद्ध नहीं हो सकता। वैसा होने से अनेक ऐसे दोष उत्पन्न होंगे कि जिनसे मेरा सब परिश्रम व्यर्थ हो जाएगा। इसलिए हे भाई आर्य पुरुषो ? सर्वकाल उत्तम और उचित रीति से अपना समस्त व्यवहार करना सीखो। यदि किसे ने दण्ड पाकर मेरी बुराई करनी छोड़ भी दी, तो क्या जैसा तुम चाहते हो वह वैसा हो जाएगा, कभी नहीं। वह न करेगा तो और उसके बहुत से भाई करने वाले हैं, वे करेंगे। परिणाम में अपने आप तुमको चुप हो बैठना पड़ेगा। देखो न्यायभवनों को कि कब से चोरी आदि अपराध करने वालों को दण्ड देते चले आते हैं परन्तु चोरी बन्द नहीं होती और न हो। इसका कारण उसका ठीक उपाय वह नहीं, यह है कि नाना प्रकार के युक्ति युक्त उपदेश करके सबका एक साथ अज्ञान अच्छी तरह छुड़ा दिया जाय। क्योंकि वही मूल है जगत् की यावत् बुराइयों का। उस महान् शत्रु का विनाश करना परम पुरुषार्थ है और वैसा ही होने से मेरी भी कार्यसिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं। अतएव टोकता और समझाता हूँ कि मुझ पर द्वेष भाव रखने वालों पर आप लोग क्षमा करें जिससे उनको खूब अवकाश मिले। मेरी बुराई पेट भर कर लेने का अर्थात् काम उनका भी अधूरा न रह जाय। पश्चात् न्यायशील दोनों ओर के लेखों को तौल कर सत्यासत्य का विवेक स्वयं कर लेवेंगे। इसी के अर्थ में मैं उनसे सर्वत्र शास्त्रार्थ करना चाहता था। वह उन्होंने प्रतिष्ठा जाने के भय से स्वीकार न किया तो यही सही इति। ऐसी दशा में भी एक महाशय थगरी गुसाईं को कारागार करा ही बैठे, सो सुन आग हो गए और उसी क्षण उसको करुणार्द्र मानस ने उस दारुण दुःख से मुक्त कराया। ऐसी श्रीमान् की अनेक कथा प्रसिद्ध हैं।

वर्ष तक दिगम्बरी अवस्था में रह कर हरिद्वार से काशी, पटना तक कई बार एकाकी पादचारी उपदेश करते फिरे। उस समय तक उनको पूर्ण लालसा ब्राह्मण विद्वान् और विज्ञवरों के सुधार की थी। "विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्" अर्थात् वे भलीभाँति भरोसा रखते थे कि मेरा श्रम, मेरी बात, मेरी चाह और शास्त्रीय सार जानने व मानने के अधिकारी इनके समान अन्य नहीं हो सकते। इन लोगों का भ्रम मिटते ही मेरा यावत् कर्त्तव्य सिद्ध होना अति सुलभ अन्यथा कठिन है। अतएव वे बहुकाल तक ऐसों ही की पूर्ण ढूंढ़ खोज में फिरते रहे और इसीलिए १० वर्ष तक बार-बार काशी में भी जा अड़ते थे और वहाँ वालों से आशा भी अधिकतर रखते थे कि ये किसी प्रकार समझ जायें तो अति अच्छा हो। इसी दुराशा से वहाँ महीनों रहे और अधिकतर अपना रहना यहीं हो, इस इच्छा से उन्होंने वहाँ लक्ष्मी कुण्ड पर महाराजा विजयानगर वालों के एक भारी स्थान में अपना वैदिक यंत्रालय सं० १९३६ वि० मिती माघ शुक्ल २ गुरुवार को नियत किया था, तथा इसकी रजिस्ट्री भी श्रीमान् ने अपने नाम करा ली थी। तत्पश्चात् इसी स्थान की लम्बी चौड़ी छतों पर २० दिनों तक प्रत्यह सायंकाल से कभी-कभी ३ घण्टा श्रीमान् अति उत्साह के साथ व्याख्यान देते रहे।[1] जिसके संयोग से वहाँ के हजारों सर्व जातीय मनुष्य

१. श्री जी महाराज के व्याख्यान विषयक उन्हीं दिनों की एक गुप्त कथा यहाँ पर प्रकाशित हो जाना परमावश्यक है। सं० ३६ के पौष मास में श्रीमान् के दर्शनार्थ आये हुए कर्नल आल्काट साहब ने विज्ञापन दिया कि अमुक दिन और समय टाउन हाल में हम और स्वामी जी व्याख्यान देवेंगे। इसको सुनते ही काशी के मत्सर ग्रस्तों को बड़ा ही दुःख हुआ। अर्थात् वे सोचे कि यदि ऐसा हुआ तो स्वामी जी का व्याख्यान सुनते-सुनते सबके चित्त में उनका माहात्म्य ऐसा कुछ असर कर जायगा कि फिर हमारी लीला एक नहीं चलेगी। इसलिए येनकेन प्रकारेण उनका व्याख्यान बन्द कराने की दृष्टि से उन्होंने उस समय के साहब कलक्टर को जा बहकाया कि यदि उसने व्याख्यान दिया तो काशी वाले अपने प्राणान्त बलवा कर छोड़ेंगे। "दुःसंगी च्यवते" की भाँति भोले साहब कलक्टर भी अविवेक कर बैठे। अस्तु, उस दिन स्वामी जी का व्याख्यान तो बन्द रहा ही, परन्तु परिणाम इसका इन साहब कलक्टर बहादुर के लिए अत्यन्त क्लिष्ट हुआ। अर्थात् सदर से तुरन्त इस अनुचित व्यवहार करने का उनसे उत्तर लिया गया। उन्होंने दिया वह भी अयोग्य ठहरा और स्पष्ट यह ताकीद

श्री जी महाराज के समस्त विद्यादि अनुपम गुण रत्नों और उनके अन्तः-करण का शुद्ध भाव तथा उनके चित्त चुभे देश-वात्सल्य को यथावत् समझ कर जन्म भर को निस्सन्देह हो गये। तथा साफ-साफ ये सब लोग श्रीमान् स्वामी जी महाराज को अपने शुद्धान्तःकरण से अनन्त धन्यवाद दे दे कर उनकी और उनके व्याख्यानों की पूर्ण प्रशंसा के साथ अपने काशी नगर निवासी समस्त छोटे-बड़े विद्वानों की घृणित और निंद्य बुद्धि पर असीम शोक प्रकाशित करते हुए प्रत्यह अपने घर पहुँचते थे। उस समय भाग्य-वशात् यह ग्रन्थकार भी १५ दिन के लिए वहाँ पहुँच गया था। अतः उसने यह सब चमत्कार वहाँ प्रत्यक्ष देखा व सुना।[1] सब कुछ हुआ परन्तु 'सबसे

वहाँ से आई कि तुम अतिसत्वर स्वामी जी का क्षमा-पत्र लेकर भेजो और उनके व्याख्यान वहाँ सत्वर उनकी इच्छानुसार जितने दिन वे देना चाहें, बराबर होने दो। उसमें तुम पूर्ण प्रबन्ध अपना रक्खो, अन्यथा तुम निर्दोषी नहीं हो सकते। अन्त को बेचारे साहब कलक्टर बहादुर को सब तदनुरूप ही करना पड़ा।

१. बन्धुगण, इन व्याख्यानों में पण्डित मन्यों को छोड़ बाकी और सब प्रकार के बहुत से काशी वालों की वह भीड़ वह प्रीति वह आनन्द और उनकी श्रीचरणों में गाढ़ भक्ति देख, मैं अत्यन्त विस्मित था कि हे परमात्मन्, तेरी यह क्या अद्भुत लीला इस परम कट्टर पोप नगर में तू दृष्टिगोचर करा रहा है अथवा स्वयं मैं यह प्रत्यह कोई स्वप्न देख रहा हूँ। यहां तो स्वामी जी का व्याख्यान होना ही असम्भव हो रहा था तहाँ यह प्रीति और घमसान तू प्रत्यक्ष कर रहा है। यद्यपि व्याख्यान में चित्रवत् समुपस्थित समस्त सत्पुरुषों के शिर और मुख की चेष्टा तथा तन्मुख विनिःसृत वाह वाह आदि शब्दों से उनका आन्तरीय भाव अच्छे प्रकार प्रकाशित था तथापि मैंने व्याख्यान से उठे मनुष्यों का कितने ही दिन पीछा एतदर्थ किया कि देखूं तो सही इनका उद्गार कैसा क्या निकलता है। सो वह भी ठीक ही ठीक पाया। कोई कहता था कि भाई ये ३ घण्टा तो जाते खबर ही नहीं पड़ती। कोई कहता था कि ये तो साक्षात् बृहस्पति हैं। कोई उनके तर्क-वितर्क और दृष्टान्तों की, कोई उनके कथन के माधुर्य की, कोई उनके व्यवहार और पारमार्थिक विज्ञान की, कोई उनकी देश-वत्सलता की, कोई उनके करुणान्वित चित्त की, कोई उनके आनन्दित मस्त कर देने की प्रशंसा करता था और कोई कहता था कि भाई, सरस्वती तो मानो इनकी दासी ही हो गई है। कोई कहता था कि ये तो पूरे

भले भीख के रोट' इस सिद्धान्त पर चलने वालों ने स्वामी जी महाराज का कहा करना तो दूर जिधर वे रहते थे और जहाँ आकर व्याख्यान देते थे उधर की (जब तक श्री जी महाराज काशी में रहे) कभी हवा भी नहीं खाई। बंधुगण, श्रीमान् ने केवल १४ व्याख्यान यहाँ पर देने का विज्ञापन दिया था। तदनुसार चैत्र कृष्ण ११ सोमवार को उनका अन्तिम व्याख्यान हुए पीछे बहुत से सभ्यों ने मिल कर एक विनयपत्र नीचे लिखे आशय का श्रीमान् के सम्मुख प्रविष्ट किया।

हे कृपानिधान, आपको इन १४ व्याख्यानों के देने में जो श्रम हुआ, उसकी उपक्रिया हम किसी प्रकार कर नहीं सकते। निस्सन्देह आपकी इस अनुपम अनुकम्पा से हमारे अनेक जन्मों का अन्धकार मिट गया, परन्तु इस अपूर्व अमृत पान से हम भक्त जनों के चित्त की तृप्ति नहीं हुई। इस

योगेश्वर हैं। कोई कहता था कि हमने आज तक निःस्पृह, निर्भय, निःशंक वक्ता और प्रतापशाली मनुष्य देखा ही नहीं। कोई उनको अपर सूर्य, कोई अपर ब्रह्मा, अपर शेष, अपर शंकराचार्य कह कह कर अपने चित्त को संतुष्ट करता था और सबके सब कहते थे कि देखो यहाँ के पण्डित लोग कैसे स्वार्थी, मत्सरी और अहंकारी हैं जो इन महानुभाव को व्यर्थ नाना प्रकार से दूषित करते हैं। कहो इनमें कहीं किसी दोष का लेश भी है। इसका समाधान उसी समय उनके साथी दूसरे भाई यह करते थे कि भाई मोटी मसल जगत में यह चली आती है कि "दुनिया ठगिये मक्कर से रोटी खाइये शक्कर से" सो बिना ऐसी पूर्ण विद्या बुद्धि और तपोबल के अपनी प्रतिष्ठा बचा कर चार दिन चैन से बिताने का सर्वोत्तम उपाय दयानन्द की निंदा के सिवाय भला सोचो तो सही और क्या हो सकता है? यह सुन वाह क्या कही। ऐसा कह कर सब एक साथ खूब हंसे और फिर बोले कि भाई बहुत ठीक बात यही है। इस प्रकार नित्य नया निर्णय वे कर-कर के हंसते और शोक भी करते थे। एक दिन कितनों ही को परम पश्चात्ताप के साथ यह कहते सुना कि भाई अत्यन्त धिक्कार है हमारी इस मूढ़ मति पर जिन्होंने आज तक इन महानुभाव की महिमा ही न जानी। हालांकि वे कई बार यहाँ आ चुके और अब भी देखो ६ मास से विराजमान हैं। स्वार्थी लोग अब भी भक मार रहे हैं। इन्हीं की बहकावट का यह फल है कि इन परम पूज्यों के चरणों की शरण और उनके अपूर्व उपदेश रूपी अमृत के आस्वादन से हम लोग आज तक वंचित हो रहे।

कारण हम सब उपकृत जन आपकी सेवा में अनेक प्रणाम और धन्यवाद-पूर्वक सविनय प्रार्थना करते हैं कि यदि आप अपनी स्थिति पर्यन्त कुछ व्याख्यान देना और स्वीकार करें तो हमारा बड़ा ही अहोभाग्य होगा।

इस पर श्रीमान् ने अति प्रमुदित चित्त से आज्ञा दी कि महाशयो यद्यपि मेरी यात्रा का समय समीप होने के कारण मुझे अब अवकाश नहीं रहा तथापि विदित करो कि आप लोगों का उत्साह भंग न होने की दृष्टि से मैं आनन्दपूर्वक ६ व्याख्यानों का देना और स्वीकार करता हूँ। यह बात तुम में से कोई एक पुरुष इसी समय उच्च स्वर से पुकार कर समस्त सभासदों को सुना दे कि वह आगामी से इसी समय और इसी स्थान में होंगे। चार दिन बीच में हैं। तावत् तुम्हारा बुढ़वा मंगल का मेला भी समाप्त कर लो।

इस प्रकार स्वीकार हुआ सुनते ही समस्त सभासदों ने एक साथ खूब ही आनन्द ध्वनि की। पश्चात् नमस्ते, धन्यवाद और जयध्वनि करते हुए सब निज-निज स्थानों को गये। इन व्याख्यानों के समाप्ति के अन्तिम दिवस उसी स्थान में श्रीमान् के सम्मुख समस्त सभासदों ने बड़ी धूम-धाम के साथ आर्यसमाज का समारोपण किया परन्तु शोक कि वह थोड़े ही दिन चल चला कर बंद हो गया। इसका मुख्य कारण वही पोप लीला अर्थात् उनका मत्सर और द्रोह। वह कौन सा नगर है जहाँ इन लोगों ने आर्यसमाज स्थापित हुआ सुन वहाँ के सभासदों पर नाना प्रकार के विघ्न नहीं ला डाले। जब सर्वत्र ऐसा ही हुआ तो फिर काशी वालों का विशेष वृत्तान्त कहना ही क्या है? बनारस और बनारसी कहाँ प्रसिद्ध नहीं? और जगत् तो पोप लीला पोपों ही की उपजीविका है, परन्तु काशी ऐसे नगर में कोई ऐसा पेशादार ही नहीं जिसकी उपजीविका का मूल पोप-लीला न हो। ऐसे ठौर आर्यधर्म का प्रचार करना सर्वथा मनुष्य शक्ति से बाहर है। ऐसे अपूर्व शक्ति समृद्ध तो केवल यही एक श्रीमान् स्वामी जी महाराज थे, जिन्होंने ऐसे स्थानों पर भी हजारों मनुष्यों को हो सका उस रीति सुसंस्कृत करके अपना विजयस्तम्भ गाड़ ही दिया और इन काशी वालों को तो मानो उन्होंने पूरा पर्दानशीन करके ही बिठाल दिया था। जैसे उसमें बैठी हुई बीवी साहिबा चिढ़-चिढ़ कर हर किसी को गालियाँ देती रहती है, वैसा ही श्रीमान् के सम्मुख सदा इन काशी वालों का चरित्र दृष्टिगोचर रहा। दूर से ही इन्होंने खूब ढोल बजाये परन्तु कभी कोई सम्मुख न आये। अर्थात् जब तक श्रीमान् वहाँ विराजमान रहे बराबर

ये लोग घर बैठ, उनको नाना प्रकार की गालियाँ देते और छपवाते रहे।

परन्तु धन्य श्रीमान् जो कि उस अवस्था में भी परम प्रमुदित रह कर अनेकविध इन ऐसों के कल्याण और मंगल की ही लालसा में निरन्तर सुचेष्टित रहे। परन्तु ये कुछ ऐसे अपूर्व विद्वान् और बुद्धिमान् देखे कि फिर भी न समझे। परिणाम इसका यह हुआ कि सारा जगत् इनकी अत्यन्त घृणा और निन्दा करने लगा। एवमेव न्यायानुगामी सम्पादक जन इनकी असभ्यता पर अतीव्र उपहास करके प्रसंगवश कभी खर कभी स्वार्थी, कभी पेटार्थू, कभी अर्थदास, कभी काग, कभी शृगाल, कभी ग्रामसिंह और कभी वेदविघातक, देशविनाशक आदि इनको लिख बैठते हैं। इसका निदर्शन अभी ऊपर नवम मयूख के आदि अन्त में प्रत्यक्ष कर दिया है, वहाँ देख लिया जाय।

बंधुगण, यहाँ तक जो कुछ लिखा वा लिखना है वह कुछ इसलिए नहीं कि इन लोगों ने श्रीमान् स्वामी जी महाराज का उपदेश नहीं माना वा उनसे इन्होंने भला बुरा कहा किन्तु सर्वत्र इनका सर्वथा आचरण अन्यथा देख कर अपने चित्त का शोक दर्शाया है। क्योंकि इनमें कोई विद्वत्ता का लक्षण ही न पाया जाये तो कौन कह सकता है कि ये विद्वान् हैं। वह समय गया जब केवल 'इदं भवति इदं न भवति' आदि के कथन मात्र से वे विद्वान् कहे जाते थे। इस काल में तो जब तक उनकी कर्त्तव्यता में देशोपकार न देखा जायगा, कभी वे विद्वान् नहीं कहावेंगे। क्या इनके गुरु जी अर्थात् पं० बाल शास्त्री जो महाराज कुछ कम विद्वान् थे। काशी भर में वही वह थे। परन्तु उनके मरने पर समाचार पत्रों में ऐसा लेख अवलोकन करने में आया कि जिसका शोक हम लोगों के चित्त से कभी दूर नहीं हो सकता जैसा लिखा है कि इन्होंने भी आंखों में धूल झोंक धनी राजा बाबुओं को खूब लूटा खाया और उड़ाया अन्त को पामर लोगों के समान ये भी जैसे आये वैसे मुंह बाये चले गये। परन्तु लोकोपकार रूप महान् वृक्ष की जड़ हरी रखने की बुद्धि से कभी अपने जीते जी एक चुल्लू पानी तक उन्होंने न छोड़ा, न कोई अन्य काम उनसे ऐसा हुआ इत्यादि। इस कारण सत्पुरुषों की आकांक्षा यह है कि आगे को उनके सच्छिष्यादि तो भी सुचेत हो जायें, सो भी आशा पूरी होती नहीं दीखती। देखिये किसी पण्डित मोहनलाल काशी निवासी ने भी स्वामी जी से कोई गुण न पाया।

आप्त ग्रन्थों में लेख है "विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। तथा च दुर्जनो दोषमाधत्ते दुर्गन्धमिव शूकरः।" बतावें उक्त पण्डित जी इन वाक्यों का अर्थ क्या है और किसका विषय है जो इन उपदेशों पर चले यदि मूर्खों का विषय बतावें तो बस हमारा पूरा समाधान है और पण्डितों का बतावें तो उनका साफ पाण्डित्य डूबता है क्योंकि प्रथम वाक्यानुकूल उनका आचरण ही नहीं पाया जाता किन्तु द्वितीय वाक्यानुकूलाचरणी वे अच्छे प्रकार सिद्ध होते हैं। इन्हीं सिद्ध जी ने एक पुस्तक रची है। उसका नाम 'महामोहविद्रावण' रख कर स्वयं न जाने क्यों लोक-रावण बने। महात्मा जी ने उसमें कोई एक भी ऐसा विषय न लिखा कि जिससे कभी किसी सत्पुरुष को सन्तोष होता। आद्योपान्त दुर्वचनों की भरमार है। धन्य महाशय धन्य! यद्यपि इसका खण्डन हो चुका तथापि निश्चय है कि वे लज्जित न हुए होंगे क्योंकि पूरा समाधान ऐसे पण्डितों का तभी होता है जब दूसरा प्रतिपक्षी भी वैसा ही दुर्वचनी मिले। सो आर्यों में कहाँ? अस्तु, इनका परिश्रम सफल होने के अर्थ यहाँ आगे इनका कुछ सुलेख लिख दिया है। जान लिया जाय कि काशी में सबके सब इस कोटि और कसौटी के विद्वान् विराजमान हैं। अतएव काशी विदुष्मती कहाती है। हा शोक! इन्होंने देश और धर्म के द्वेषी राजा शिवप्रसाद की अत्यन्त प्रशंसा लिखी है, उसको देख विद्वानों को यह श्लोक स्मरण होता है— उष्ट्राणां विवाहेषु गर्दभाः गीतगायकाः। परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः॥ अर्थ यह है कि ऊंटों के विवाहों में गधे ऊंटों के रूप की और ऊंट गधों के स्वर की परस्पर प्रशंसा करते हैं।

घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यात् रासभारोहणं चरेत्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

स्पष्टार्थ इसका यह है कि बिना विद्या और गुण बाहुल्य के जिस किसी को अपने मुहल्ले में प्रसिद्ध होना अभीष्ट हो, वह अपने घर के बर्तन फोड़ कर बाहर फेंके और जिसको अपने ग्राम वा नगर में अपनी प्रसिद्धि कर लेना अपेक्षित हो वह बाजार में खड़ा होकर अपने शरीर के कपड़े फाड़-फूड़ कर नंगा नाचे और जो देश देशान्तरों में प्रसिद्ध होना चाहे तो वह गधे की सवारी करे अथवा उसी से मिलता-जुलता कोई अन्य काम करना सोच ले। ठीक इसी महामन्त्र के अनुसार ये पण्डिताध्यक्ष सुचेष्टित हुए हैं। क्योंकि अब तक इनको कोई जानता भी तो नहीं था कि कहाँ का कौन किस गली में रहता है। इसलिए आपको यही एक सूझ गई, हमको बड़ी

हंसी आती है। इनका पाण्डित्य देख कर। न जाने कै लोटा पीकर आप प्रवृत्त हुए हैं। महात्मा जी ने स्वयं महा असंस्कृत ग्रन्थ बनाया संस्कृत में। अस्तु, सर्व साधारण को समझने के लिए उसका कुछ भाव भाषा में प्रकाशित किया जाता है। निश्चय है कि इतने ही से उनका पाण्डित्य और आन्तरीय अभिप्राय सब लोग अच्छे प्रकार बूझ लेवेंगे। पुनः अधिक देखने की किसी को कुछ इच्छा न होगी। इसकी केवल भूमिकान्तर्गत वाक्यों पर ही मूक कर देने योग्य बहुत से प्रश्नोत्तर हो सकते हैं, परन्तु इस ग्रन्थकार को व्यर्थ पिष्ट-पेषण करना ईप्सित नहीं। हाँ, जितना उचित है उतना अवश्य लिख दिया है। उतने ही से उनकी तमाम भूमिका फिसल गई। कहो जिसकी भूमिका ही फिसल गई उसकी इमारत कहाँ रही ?

लोक-रावण भूमिका[1]

इस प्रकार है कि पल्वलोत्थित आदि लिखे दस विशेषण विलक्षित अर्थात् वराह सम आकार और चरित्र का एक कोई भिक्षु वेषधारी काशी में आया उसकी यह जब धृष्टता और चाह कि यहाँ के विद्वान् मुझसे शास्त्रार्थ करें। यह सुन कर भारत राज कुल रत्नायित आदि ६ विशेषण युत काशी नरेश ने कहा कि मेरी इस विदुष्मती काशी में आकर बैठा पण्डितमन्य, नास्तिक यदि यहाँ से विमुख गया तो मेरी बड़ी भारी अपकीर्ति होगी। अतः संवत् १९२६ के कार्तिक शुक्ला १३ मंगलवार के दिन सायंकाल के समय घटिका द्वय मात्र में पण्डितों से मुण्डी के प्रश्नों का उत्तर और बार ताली दिलवाकर (जनकरतालिबहुलां सभां विससर्ज जनकवत् राजा) जीत बताते घर आये जनक समान राजा ईश्वरीयप्रसादनारायण जी। खिद्यत गात्र, अनधीतशास्त्र, अवशिष्ट साहस मात्र गर्हणा पात्र, वेदद्रुमच्छेत्ता, क्षुद्र मुण्डी द्वारा तो भी बाली की भाँति देश देशान्तरों में घूमता अपनी जीत

---

१. हा बन्धुगण, प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा में सने हुए हमारे लोक-रावण जी देखिये पहले ही कौर मक्खी लील गये, अर्थात् स्वामी जी महाराज की निंदा करने चले थे सौ चौकड़ी भूल कर ऐसा रूपक लिख गये कि जिससे श्रीमान् को मानो अपने दशावतारों में गिना बैठे। क्यों नहीं, सत्य-सत्य ही है। वही 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः' दोष कहलाता है। आगे चलकर होशियार होना उचित था, सो भी न हुआ। अर्थात् जितना लिखा, सब मिथ्या प्रचुर और परस्पर विरुद्ध है। इतना भी अर्थ सिद्ध न हो तो इससे अधिकतर कौन शोक है। सत्य कहा है : "विद्यादम्भः क्षणस्थायी"।

बताता हुआ, वह अमेरिका वालों के साथ फिर एक बार काशी में आया। तहाँ किसी बाग में बैठा हुआ था कि इतने में वहाँ जगद् विख्यात यश कर्नल अल्काट से मिलने चतुर शिरो रत्नायित राजा शिवप्रसाद गये। उन्होंने वहाँ इसके मत और मति की परीक्षा, वेद व ब्राह्मण शब्दार्थ के बहाने से की। मुण्डी की बातचीत बहुत भद्दी थी, परन्तु प्रवचन प्रपंच चातुरी को लिये कटाक्ष करते राजा शिवप्रसाद बोले कि यों मुझ मतिमंद के समक्ष में बिना लेख नहीं आने की।(१) मुण्डी ने भी स्वीकार किया परन्तु प्रश्नोत्तर उसके कपट, कौटिल्य, निंदा, मात्सर्य और अभिमान से भरे हुए थे।(२) तो भी

---

१. इस एक ही वाक्य में जिसे चतुर कहा उसी को मंदमति सिद्ध किया। इन्हीं राजा की प्रशंसा सब देश ने और ही प्रकार की है और इन्हीं का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के अन्त पर और द्वितीय खण्ड के पृ० ६ से १० तक और तृतीय खण्ड के २८९ पृष्ठ में आया है। और इसी पुरुष ने अपने तिमिरप्रसारक तृतीय खण्ड में काशी आदि के विद्वान् और यहाँ के श्रुति, स्मृति, पुराणादि ग्रन्थ और यहाँ का धर्म, कर्म तथा इनको यावत् देव, तीर्थ, मत और अवतारों की निन्दा अपरिमित लिख कर इनको और इनके आदि पुरुषों को परम भ्रष्ट बुद्धि, गोमांस भक्षी जारज, महामूर्ख जंगली राजाओं की प्रजा और मद्यपी सिद्ध करके स्वार्थ सिद्ध किया है। परन्तु काशी नरेश के यहाँ से कभी-कभी अपनी हां में हाँ मिला देने वालों को टका दिला देते हैं। तिस पर ये धर्मद्रोही ऐसों की इतनी प्रशंसा में प्रवृत्त रहते हैं। परन्तु कौन कहे कि धिक्कार है इनकी इस असद्वृत्ति पर जो हंस को कौआ और कौओं को हंस बतायें और मिथ्या लेख लिखते तलक भी न लजावें। देखो स्वामी जी महाराज २ मास पहले से काशी में विराजमान थे उनके दर्शनार्थ .... कि इन साहब के साथ एक बार फिर यह काशी में आया। ये वही अल्काट हैं जो अमेरिका से स्वामी जी का प्रताप सुन उनसे पढ़ने को इस देश में आये। अब सोचना चाहिए कि जो पुरुष इन भ्रामक साहब और देश के द्वेषी राजा साहब को सर्वोपरि प्रतिष्ठित और स्वामी जी को अधिकतर बुरा बतावे, वह कैसा क्या है? ये वास्तव में धमज्ञ होते तो राजा साहब की किताब का खण्डन करके उनको अच्छे प्रकार धर्म द्वेषी प्रसिद्ध कर देते।

२. सत्य है जिसको समस्त जगत् जितारिषड् वर्ग कहे और जो कभी अपने लिए मैं को छोड़ हम तक न कहे, वही तो मत्सरी और अभिमानी

राजा नम्र रहे और उन्होंने निवेदन नाम की पुस्तक छपवा कर उसके और सर्व आर्यसमाजियों के पास भेजी। इसने उत्तर में भ्रमोच्छेदन (वस्तुत: भ्रमोत्पादन) छपवाया। उसमें शपथ लिखी कि अत: पर मैं कभी काशी के किसी पण्डित से शास्त्रार्थ न करूंगा[1]। इसने यह उचित ही किया नहीं तो कहीं किसी पण्डित को रोष आ जाता तो इसे बचने को कहीं ठौर न मिलता। अब यह फारसी और अंग्रेजी पढ़े हुए मूर्खों को बहकाता फिरता है।[2] मेरे चित्त को इसकी वेद प्रतारणा दुखाती है। एतदर्थ मेरा यह सब उद्योग है अन्यथा मेरी इस क्षुद्र के साथ क्या महिमा थी। सिंह; शशक वा मशकों से कभी नहीं भिड़ता परन्तु उसका जातीय स्वभाव यह है कि वह विपक्षी को देख नहीं सकता, तद्वत् अधर्म निवारणार्थ इस वादा-नर्द के साथ मेरी यह प्रवृत्ति है जानिये*। इति भूमिका।

बन्धुगण, इस प्रकार भूमिका पूरी करके आगे इसके जिस जोर शोर के साथ इन महापुरुष ने प्रति शब्द, प्रति वाक्य खूब छिले गढ़े, मन माने, दुर्वचनों से अपनी परम प्रशंसित पुस्तक के २५ पृष्ठ रंग रंगाकर वेद-

---

कहाता है। पण्डित जी को दिन में बिना मशाल के सूझता ही न हो तो क्या हो आपको प्रत्यक्ष में भी प्रमाणापेक्षा रहती है सो कहाँ से आवे। अब भी उनके वे पत्र मौजूद हैं।

१. वाह आप तो बड़े ही सत्यवक्ता हैं। क्या उसी लेख पर आप आशा मोदक खाने को (जिससे पं० बाल शास्त्री जी और स्वामी विशुद्धानन्द जी को और उनके साथ सब काशी को कलंकित कर छोड़ा है) दौड़े हैं।

२. ऐसा ही लेख दामोदर शास्त्री ने हरिश्चन्द्रचन्द्रिका में किया था। उसका उत्तर इस खण्ड के प्रथम मयूख में सविस्तर लिखा है। उसको आप भी देख शान्त हूजिये परन्तु लज्जित होने की नहीं ठहरी है।

* यह तो कहिए आप ऐसे विद्वान् और धर्मात्मा होकर काशी की किस मोहरी को अब तक सुशोभित करते रहे जिससे जिधर देखो उधर काशी की थू थू हो रही है। इस कारण अब आपके विद्वान् और धर्मात्मा होने में कोई शंका करे तो भले ही करे परन्तु आपके लेखानुसार आप काशी के नागरिक सिंह होने में तो सब अच्छे प्रकार निस्सन्देह हैं। तनिक कंजरों के लट्ठ से बचे रहें, इतनी आवश्यकता शेष है। सत्य तो यह है कि जिन नेत्रों से वेदभाष्यभूमिका देखी जाती, वे नेत्र विधाता ने इन काशी वाले ऐसे मनुष्यों को दिये ही नहीं हैं। इति।

भाष्यभूमिका के अवलोकन से उत्पन्न हुआ अपना क्रोधानल शान्त किया। यह सब प्रकार आपके ध्यान में आ गया होगा। साथ ही इसके यह भी विदित हो गया होगा कि प्रतिज्ञा इनकी केवल छल और कपट से प्रपूरित थी। इस प्रकार के धर्मात्मा और विद्वान् काशी में निवास करते हैं।

इस पर आप महाशयों का यह प्रश्न कि इन्होंने किमर्थं ऐसा किया? उत्तर—स्वार्थ-सिद्धयर्थं। प्रश्न—उसे किस रीति सिद्ध किया? उत्तर—रीति वही पिष्टपेषण अर्थात् ब्राह्मण यथा रामतापिनी, गोपालतापिनी और नृसिंहतापिनी आदि भी वेद हैं। प्रश्न—प्रमाण क्या है? उत्तर—वही बाबा वाक्यम् अर्थात् हमारे कात्यायनादि बाप दादे और परदादे आदि ९ पीढ़ी का कथन। प्रश्न—कल क्या होगा? उत्तर—वही वैदिक धर्म विद्या तक सनातन पुराण धर्म प्रतिपालन जिसका कि उस डाढ़ीजार दयानन्द ने खोज मार दिया है, न कहीं से बाण हाथ लगता है न आमंत्रण! न कोई सभा, न कुछ सम्भावना, न श्राद्ध न पक्ष, न वसन्त-पूजा न पुराण, न दान न कुदान, न दक्षिणा न भक्षणा, न कोई शान्ति, न अनुष्ठान, झूठी व्यवस्था तक (पक्षी और प्रतिपक्षियों को) लिख देना हम सबों ने स्वीकार कर लिया सो भी कोई अन्धा पूछने को नहीं आता ऐसी हम काशी वालों की दुरवस्था है।[1] बहुत कुछ जाल फंद पुराने लोग रच गये और उनसे चार बांस अधिक हम बढ़ गये। तो भी कुछ लाभ सा पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं, ऐसा कुछ दयानन्द का उपदेश सबको लग गया। जी जल-जल कर भस्म हुआ जाता है। सोचते-सोचते यह सूझ गया कि उसकी निन्दा में कुछ रच डालें (सर्वं श्रमेण सफलम्) सो यह ग्रन्थ बन गया। इसको राजा शिवप्रसाद ने तो बहुत ही पसन्द किया। देखिये कैसा क्या भाग्योदय होता है। तीर लग गया तो कुछ दिन मौज उड़ावेंगे और इस पुस्तक का अधिक प्रचार करने से सब काशी वालों को भी लाभ होने की सम्भावना है। अग्रे हरेरिच्छा बलीयसी।

---

१. वास्तव में इसी प्रकार ये लोग पक्षी प्रतिपक्षी दोनों को अपनी ओर से वाक्यों को गढ़-गढ़ कर व्यवस्था देकर दोषियों और निर्दोषियों को एक मार्ग पर चला कर उनका धन बराबर लूटते हैं। इनके यहाँ किसी बात का निषेध नहीं। जैसी दक्षिणा वैसी धनी की इच्छानुसार उसको व्यवस्था लिख कर दे देते हैं। ऐसी दुरवस्था कर रहे हैं, इसका सर्वत्र खूब खाका उड़ रहा है। इसका कुछ उदाहरण आगे काशी माहात्म्य में लिख देख मिलेगा।

प्रश्न—क्यों जी जब यहाँ दयानन्द थे और ६ मास तक वे शास्त्रार्थ करने का बराबर सं० ३६ में विज्ञापन पर विज्ञापन देते रहे, तब क्यों आपने ऐसा कोई उद्योग न किया जिससे कि उनको सं० २६ के भाँत परास्त कर देते। देखो, अब तुम्हारी इसी पुस्तक पर अजमेर समाज ने कैसा खण्डन लिखा है। वह लिखता है कि लोक रावण जी उस समय किस भिड़े में छिपे थे। अब मुहर्रमी फकीर के समान हाय हम न भये जो कहते फिरते हो इससे क्या होना है ? भले ही अपने मुंह मियाँ मिट्ठू बनो कुछ भी लाभ न होगा। स्वामी जी को वेदप्रतारक कह कर आप उद्धारक प्रसिद्ध होना चाहते थे, सो चौबे के दुब्बे हो बैठे। 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्।' इस वेद-वाक्य में इतिहास बता कर ब्राह्मण भाग में वेदत्व लाना चाहते थे, सो तो रहा एक ओर मंत्र भाग का भी अनादित्व खो दिया। इत्यादि बहुत सा लेख उन्होंने तुम्हारी पुस्तक बनी थी तभी लिखा था। परन्तु तीन वर्ष हो चुके तुमने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। ऐसी हार पर हार हो फिर भी धन वा प्रतिष्ठा तुम चाहो सो कैसे हो सकती हैं ?

उत्तर—भाई कहते तुम सब सत्य हो परन्तु क्या करें उसका तो कुछ उत्तर ही नहीं सूझता, ऐसी उन्होंने एक ही पकड़ करके हमारा सब परिश्रम व्यर्थ कर दिया। ऐसे ये दयानन्दी प्रबल हैं, कहो क्या करें ? और जो तुमने दयानन्द को हराने की वार्ता कही सो मित्रवर्य सं० २६ में तो हम निरे स्तनंधयी थे। अभी थोड़े दिनों से उत्तीर्ण हुए हैं। खाने-पीने के दिन थे, सो मूंड़ के मुड़ाते ही ओले पड़े अर्थात् सर्वत्र दयानन्दमयी हो गई गुरु जी (बाल शास्त्री) ऐसे बड़े-बड़े विद्वानों का तो सामर्थ्य ही नहीं था। हम क्या चीज हैं, जो दयानन्द को हराने जाते। काशी का नाम ही नाम जानो, सार कुछ भी नहीं। हमने जो सं० २६ में काशी वालों ने दयानन्द को जीत लिया लिखा सो वह सब केवल हमारा प्रवचन प्रपञ्चपटुत्व ही जानो और समझ लो कि हमने सत्य को ताक में धर कर अपना सब काम चलाया है। मिथ्या बात उसके सम्मुख नहीं चल सकती थी। अतएव सं० ३६ में किसी ने उसका सामना नहीं किया। सत्य तो यही है कि वह एक अजेय और अद्वितीय पुरुष रहा है, परन्तु यह सब वार्ता घर में ही कहने की है। बाहर की एक नहीं। अन्यत्र तो हम वैसा ही कहेंगे जैसा कि लिखा है और हम ही एक क्या सब काशी भर की यही व्यवस्था है।

प्रश्न—पण्डित जी ऐसी अधर्म की मत कहो, हमने तो काशी में हजारों मनुष्यों को स्वामी जी का दम भरते स्वनेत्रों से देखा है।

उत्तर—होंगे, अवश्य हम भी जानते हैं परन्तु इनमें पं० एक भी न होगा। पं० ऐसा कहें वा करें तो बेचारा खाय क्या ?

प्रश्न—पं० जी परमात्मा ने ज्ञान, बुद्धि और विचार (जिनसे कि सत्यासत्य जाना जाता है) मनुष्य मात्र को जब समभाव से दे रक्खा है फिर पं० क्या और अपण्डित क्या ? पं० ने रोटी को पानी और पानी को रोटी कहा, तो कौन माने लेता है और इतने पर भी यदि वह हठ वा दुराग्रह न छोड़ेगा अर्थात् वैसा ही कहता चला गया तो कहो जगत् में मूर्ख संज्ञा सचमुच किसकी होगी और कौन पं० कहावेगा। स्वार्थवश पढ़ा लिखा लिप गया हो तो, नीचे लिखे वचनों को देख लो[1] फिर कहो कि ऐसी दशा हुए पीछे वह पण्डिताभिमानी क्या खावेगा और कैसे जियेगा ?

इतना सुनते ही आकाशष्ठीवी लोक-रावण जी महाराज खा पछाड़ गिर पड़े। उस दिन से उनकी बड़ी बुरी दशा सुनी जाती है कोई शशमेरा ऐसा 'हा टका टकटका' नाम का गाढ़ रोग मानो उनके पड़ गया है। अब इनके लिए भी कोई वैसा ही गोवैद्य अपेक्षित हुआ जैसा कि भेड़ राजा के पागलपन के निवारणार्थ सर्वसाधारण मनुष्य ने विज्ञापन देकर सूचित किया है। यदि सर्वसम्मत हो तो वैसा ही एक विज्ञापन इन शान्त्यर्थ अवश्य दे दिया जाय और कदाचित् किसी प्रकार से किसी पुलिस देवता ने अबोधनिवारण के सम्पादक बी० ए० वर्मा जी की भाँति इनकी भी खबर ले ली तो फिर कुछ भी कसर शेष न रहेगी। बस यही दो दैवी अथवा मानुषी उपाय इन ऐसे के सुधार की आशा दिलाते हैं। देखिये क्या होता है परमात्मा कुशल करे क्योंकि लक्षण इनका अच्छा नहीं। अन्त को यही कहना पड़ता है कि भाई बुरे काम का बुरा फल न हो तो वह बुरा क्यों ?

विद्या विनयदा नित्यं, सा चेदविनयावहा।
किं कुर्मो किं प्रतिब्रूमो गरदायां स्वमातरि ॥

---

१. साक्षात् श्रीकृष्ण जी महाराज आदि कहते हैं : पण्डिताः समदर्शिनः 'तथा च पठकः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः। सर्वे व्यसनिनमाहुः यः क्रियावान् स पण्डितः ॥ अर्थात् बिना लोकोपकारादि क्रिया के जितने पढ़े लिखे पण्डित कहाते हैं उन सबको मूर्ख और क्रियावान् मूर्खों को पण्डित जानो। उसी प्रकार समदर्शी पुरुष भी पण्डित कहे जाते हैं। इसी के अनुसार कबीरदास ने भी कहा है—पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पण्डित हुआ न कोय।

अर्थ यह है कि जैसे किसी की विद्या विनयादि सद् गुणों से अपने आधारभूत का पुरुष को च्युत करके उससे लोक-रावण जी की भाँति अविद्यादि देश-विनाशक काम करावें अथवा किसी बालक की माता अपने दूध पीते बालक को दूध न पिलाकर विष घोल कर पिलावे तो कहो चुप रहने वा शोक करने के सिवाय और क्या किया वा कहा जाय। ठीक ऐसी ही दुर्दशा और वृत्ति इन काशी वालों की देख भारत निवासी अति विस्मित हो रहे हैं। कदाचित् कहो कि एक लोक-रावण को देख सब काशी के विद्वानों को क्यों नरक में डालते हो? तो इसका उत्तर यह है कि प्रायः वहां सब ऐसे ही एक से एक बढ़ कर भरे हैं। जिसका चित्त चाहे वह परीक्षा कर ले और यह बात ऊपर के प्रश्नोत्तरों से स्पष्ट है तथा इन समस्त पण्डितों का हस्ताक्षरी वह व्यवस्था-पत्र साक्षी है जिसे पं० श्रीगोपाल सं० २५ के अन्त में काशी जाकर लाये थे उसमें फर्रुखाबाद के एक सशंकित धनी की बड़ी रकम काशी वालों को उक्त पण्डित घूस में दे आये थे तब मिला था। असल उसकी पास श्रीगोपाल और ठीक उसकी नकल ग्रन्थकार के पास है।

देखिये, उस समय तक इन काशी वालों ने स्वामी जी को देखा तक नहीं था, तथापि बिना बात उनको धूर्त, नास्तिक मूर्ख, छली, दुराचारी, क्रूर, कपटी आदि शतशः दुर्वचन बेधड़क लिख डाले। गाली वाली और गलवजाव इसी का नाम काशी का पण्डिताव। भला यह क्या सभ्यता है कि श्रीमान् इनका भला चाहें और ये मरणोन्मुख सन्निपाती के समान नाम सुनते ही उस भारतार्ति-विनाशक सद्वैद्य को गाली देने लग जायें। ऐसा काम तो कभी कोई नीच और चण्डाल तक नहीं करता रहा, इनके ऐसे परम निंद्य चरित्रों से यहाँ के नरेश सहित हमारी परम प्रशंसनीया काशी अत्यन्त कलंकित हो गई और वे स्वयं भी किसी काम के नहीं रहे। इस बात का आर्यावर्त के समस्त न्यायशीलों को अत्यन्त शोक है। यहाँ तक इन्होंने अति की कि खास काशी प्रयाग के रहने वाले बाबू हरिश्चन्द्रादिकों ने भी अपने पत्रों में इनके स्वार्थानुसंधानता आदि यावत् असद् व्यवहार खूब ही प्रकाशित कर छोड़े हैं।[1] तथा जिनको लज्जा स्पर्श न करे और जिनका 'अर्थास्तु नः केवलम्' यही एक सिद्धान्त हो उनसे क्या कहा जाय। ऐसे ये दक्षिणाशा प्रवृत्त विषय लम्पट और शिश्नोदर परायण सर्वत्र उपहास्य

१. विस्तार इसका अपार है परन्तु यहाँ कुछ निदर्शन आगे काशी माहात्म्य के नाम से लिख दिया है।

हो रहे हैं। परमात्मा इनकी और इनके आश्रय पर चलने वाले इन ऐसी वृत्ति के समस्त नगर नगरांतरीय हमारे देश निवासी बन्धु-वर्गों की बुद्धि को पावन करे।

बन्धु-गण—यहाँ तक इस लम्बे चौड़े ग्रन्थ और वाराणसी प्रसंग के लिख दिखाने का मूल आशय केवल यही है कि परमात्मा ने अपने इस जगत् के सुधार का भार ब्राह्मण जाति अर्थात् विद्वानों के आधीन रक्खा है और उसी अनुक्रम पर चलने चलाने से हमारा यह भारतवर्ष इस भूमण्डल भर में अनन्त काल तक सुख्यात और आनन्दित रहा और इसी महाकारण के कारण ब्राह्मणों के बाप दादों के उपकार स्मरण से उनके कुल मात्र में समुत्पन्न महामूर्ख बालक और ब्राह्मण नामधारी मात्र अब तक सबको इस देश में राजाओं से भी अधिकतर मान्य और वंद्य रह कर महाराज कहलाया। परन्तु जिस कारण इनकी यह प्रभुता हुई वह कारण अब इनसे हजारों कोस पीछे पड़ा रह गया अतः 'मूले नष्टे नैव पुष्पं फलं च' इनका सुख भी गया और प्रतिष्ठा भी गई और देखते ही देखते रही सही भी सब जाती है। यह हानि केवल इन्हीं की नहीं हुई किन्तु इनके साथ अपने सब देश की भी हो गई। इससे सिद्ध हुआ कि जो देश के बनाव का पूरा कारण था, वही देश बिगाड़ का भी पूरा हेतु है। ऐसी विवेक-दशा में जिस किसी को पुनश्च देश-सुधार अभिमत हो तो सोचना चाहिये कि उसको प्रथम क्या कर्त्तव्य होगा? कहोगे कि वही मूल कारण का सुधार। सो मूल ठहरे ब्राह्मण तो अवश्य हुआ कि प्रथम वे ही सुधारे जायें।

ठीक इसी न्याय के अनुकूल क्रिया करने वाले परम दयालु श्रीमान् स्वामी जी महाराज के साथ ब्राह्मणों ने ऐसा सर्वत्र सर्वकाल कुत्सित व्यवहार किया जैसा कि कई ठौर ऊपर दिखा चुका। तथापि कभी किसी पर क्रोध वा रोष वा द्वेष श्रीमान् ने नहीं किया और न ऐसा कोई असद् व्यवहार उन्होंने अपने किसी अनुयायी को करने दिया और यदि कहीं किसी अपने को किसी प्रकार का कुछ भी विरुद्ध करते देखा वा सुना तो अवश्य उस पर श्रीमान् संतप्त हुए परन्तु कभी ऐसे पुरुष की उन्होंने पीठ नहीं ठोकी[1] और न कभी अपने विरोधी से प्रत्यक्ष वा परोक्ष उन्होंने दुर्वचन

१. जैसी किसी एक प्रिय विद्यार्थी ने आकर कहा कि महाराज आज फलां जगह फलां पण्डित मुझसे उलझ कर यों आपकी निंदा करने लगा

कहे परन्तु हाँ भेड़ राजा ऐसे कपटी वृथाभिमानी और दुराचरणी आदि पुरुषों को (जिन्होंने समझाने पर भी नहीं माना) श्रीमान् ने उन्हें कोरा भी

तब मैंने भी उसको ऐसे-ऐसे उत्तर दिए। यह सुन आपने क्रुद्ध होकर कहा कि तेरा यह काम कभी तू प्रशंसा के योग्य मत समझ क्योंकि जब यह जगत ब्रह्मा, विष्णु और महेशादि की भी निंदा से भी नहीं चूका तो मैं क्या चीज हूँ जिसकी निंदा तू न सुन सका, कभी तुझ ऐसे मनुष्य से जगत् के भलाई की आशा नहीं हो सकती। अतः सावधान हो।

(२) एवं सं० ३७ की बात है कि आपने फर्रुखाबाद में आकर वहाँ के आर्यसमाजियों से अपनी यह अप्रसन्नता जतलाई कि तुम लोगों ने अपने समाज के विरोधियों को जो अदालत से शिक्षा (दण्ड) दिलाई, वह तुम्हारा काम अति बुरा हुआ समझो।

(३) फिर आपने देखा कि यहाँ की अन्तरंग सभा न्याय से काम नहीं करती, प्रति दशा में पुरुष विशेष मुंह ताका करती है, इस कारण मुझको उसके शामिल काम करना स्वीकृत नहीं है, तो आपने उस पर एक मीमांसक सभा नियत करके नीचे लिखे अनुसार पत्र मेरे नाम लिख भेजा कि इसके अनुसार काम होता रहे।

(४) आपने जहाँ कहीं देखा कि फलां पुरुषों ने कई बार समझाने पर भी निंद्य काम करना नहीं छोड़ा, तो आप बेधड़क उनको उनके कर्मानुसार जैसे 'आइये वेश्या विलासी जी' आदि विशेषणों से हजारों मनुष्यों की सभा में पुकारने लगे परन्तु कभी किञ्चित् मात्र उनके प्रसिद्ध महत्त्व पर आपने कुछ क्षति नहीं की। तथैव आपने व्याख्यानों के बीच स्पष्ट प्रकार सर्वत्र राजसभा तक के बीच कह-कह दिया कि वेश्या एक कुतिया के समान स्त्री है, उस पर आसक्त होना कुत्तों ही का काम है, न अच्छे मनुष्य का और लड़कों पर मोहित होने वाले तो निरे शूकर और कौवे ही होते हैं। हजारों धिक्कार है ऐसे कुकर्मियों पर।

(५) आपने कहीं सुना कि हमारा फलां पं० गया में मूंछों को मुंड़वा कर पिण्ड प्रदान कर आया तो उसी क्षण सहारनपुर, मेरठ आदि के समाजों को लिख भेजा कि वह पूरा पोप है कभी उसका उपदेश असर नहीं करेगा।

(६) खूब जानते थे कि मुन्शी जी और उनके चेले सर्प प्रकृति के मनुष्य हैं। छेड़ते ही काटने को दौड़ेंगे परन्तु इसका कुछ भी भय न करके

नहीं छोड़ा। दूर से वा फिर बैठ कर प्रतिष्ठा हांकने वाले पण्डितों को भी वे खूब ताव देते रहे, इसलिए कि इसी तरह कदाचित् कोई एक बार सम्मुख आ जाय। प्रथमारम्भ में जो कुछ जहाँ-तहाँ झपेट में आने वाले थे वो आ गये परन्तु जब से उनको इनका तेज बल और पराक्रम विदित हुआ तब से फिर नहीं कहीं कोई उनके सम्मुख हुआ। सम्मुख आना कैसा

स्पष्ट सर्वत्र सबको लिख भेजा कि उनका लेख असंगत और दोषप्रद है, इसलिए कभी किसी को उनका विश्वास न करना चाहिए।

(७) इसी प्रकार मेरी अशुद्धि के पकड़ने वाले मेरे आक्षेपक को जैसा कुछ मेरे विषय में स्पष्ट लिख दिया और मुझसे अप्रसन्न हुए, वह भी सब इस मयूख के आरम्भ में ही प्रकाशित कर चुका हूँ। इत्यादि शतशः उदाहरण इसके जाग्रत् हैं। कहां तक कोई लिख सकता है। सिद्धान्त इस समस्त लेख का यही है कि यह जगत् जैसा दुरंगा स्वयं हो रहा है, वैसा ही यह स्वामी जी को बताता रहा। परन्तु जिन्होंने उनको नित्य सहवास से जाना है, उन्होंने सदैव उनको एक रस और एक रंग देखा व बताया और बतावेंगे। ऊपर विवर्णित स्वामी जी महाराज के पत्र की प्रति—

ओं

पं० गोपाल रावहरि आनन्दित रहो।

मैं आशा करता हूँ कि जो-जो बातें करनी आपके लिए नीचे लिखता हूँ सो-सो आप यथावत् स्वीकार करेंगे।

(१) जो मीमांसकोपसभा नियत की गई है उसके पांच सभासद् निश्चित किये गये हैं। एक आप (२) बाबू जी (३) लाला जगन्नाथप्रसाद (४) लाला रामचरन (५) लाला निर्भयराम जी और इनकी अनुपस्थिति में क्रमशः यथा आपको लाला नारायणदास मुख्तार (२) लाला हरनारायण (३) पुरोहित मन्नीलाल (४) लाला कालीचरण और (५) लाला निर्भयराम के पुत्र अर्थात् तीनों में से एक जो उपस्थित हों, नियत किये गये हैं।

(२) जहाँ तक बने और आप उपस्थित हों तो व्याख्यान भी समाज में दिया करें।

(३) जो मासिक पुस्तक निकलता है, वह भी आपके हाथ से बनेगा अथवा बने पर शुद्ध कर देंगे तो भी अच्छा होगा। इति आषाढ़ कृष्ण ८ बुधवार सं० १९३७ वि०

—दयानन्द सरस्वती

घर बैठ कर ही प्रतिष्ठा बचाना बेचारों को कठिन हो गया। इस प्रकार शास्त्री लोग अपना शास्त्रार्थ छोड़ स्त्री हो घर में बैठे।

यदि कहो कि इस शास्त्रार्थ की इतनी चाह स्वामी जी महाराज को क्यों थी? तो उत्तर इसका यह है कि धर्म विषयक भ्रान्ति मिट जाने के अर्थ श्रीमान् को उसकी चाह थी। वैसा होने से सबको अपना वास्तविक धर्म विदित होकर उसके अनुकूल चाल चलने से समस्त भारतवर्ष की बहुत जल्द भलाई हो सकती थी। सो बात यहाँ के स्वार्थी पण्डितों ने नहीं होने दी। इसका शोक भारतवर्ष के समस्त ज्ञानवान् बुद्धिमान् देशहितैषियों को अत्यन्त है और अतएव वे सब स्वामी जी महाराज को अन्तःकरण से अहर्निश धन्यवाद देते और उनके कथन पर चलने को अपने देश निवासियों से प्रार्थना करते हैं। और इसी कारण श्री स्वामी जी महाराज के कुछेक गुण और उनके विरोधियों के दुर्गुण सबके सम्मुख वे पसार-पसार कर धर रहे हैं, जिनके कान, आंख, मन और बुद्धि काबू में होंगे वे अवश्य अपने विवेक बल से सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर सकते हैं। परन्तु यह काम पक्षपात में सने हुए मनुष्यों से कभी नहीं हो सकता। अस्तु अब इस देशहितैषी को विशेष वक्तव्य कुछ नहीं रहा। हाँ, इस अन्तिम प्रसंग के पुष्ट्यर्थ देशान्तरीय व नगरान्तरीय सत्पुरुषों का कुछ विचारांश दिखलाना परमावश्यक है। उसको दिखला कर इस ग्रन्थ को समाप्त करता हूँ।

बन्धुगण! प्रथम मयूख द्वारा प्रसिद्ध कर चुका हूँ कि सं०१९३२ वि० में श्रीमान् की यात्रा बम्बई प्रान्त में हुई थी। उन दिनों उधर से पूना, सतारा, नासिक, सूरत, बम्बई, बड़ौदा, अहमदाबाद आदि नगरों के पण्डितों की वैसी ही दशा हुई थी। जैसी कि इधर काशी कलकत्ता आदि नगरों की वर्णन कर चुका हूँ। अर्थात् उधर भी कभी कोई पण्डित चारों वेदों की संहिता में से कोई एक भी मन्त्र ऐसा लाकर श्रीमान् को न दिखा सका, जिससे मूर्तिपूजन वैदिक कर्म सिद्ध होता। जिधर देखो, उधर अन्तिम प्रमाण सबका 'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' अथवा धांधली की बातें। परिणाम में उधर के बहुत से न्यायशीलों ने श्रीमान् स्वामी जी महाराज के विजय का यथावत् वृत्तान्त गुजराती और महाराष्ट्री भाषा में मुद्रित कर छोड़ा, उनमें से काशी, कलकत्ता समान प्रसिद्ध पूना और बम्बई नगरों का कुछ वृत्तान्त यहाँ उदाहरणार्थ लिखा गया है। लोकहितवादी नामक ग्रन्थ ४० पृष्ठों का केवल इसी विषयक फरवरी १८८३ ई० में तैयार हुआ है। उसके थोड़े से पृष्ठों का आशय ज्यों का त्यों महाराष्ट्री भाषा में धर कर उसका भाव पीछे से इस भाषा में खोल दिया है।

अथ प्रमाणान्तराणि

(१) पूनालोकहितवादी—"सारांश, स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज इस समय में इस प्रकार के कुछ विलक्षण वक्ता व पूर्ण विद्वान् और साधु पुरुष हो चुके हैं कि जिनकी स्तुति हमसे पूर्णतः नहीं हो सकती। समस्त भूमण्डल पर चारों ओर उनकी निर्मल कीर्ति का प्रसार थोड़े ही दिनों में अच्छी तरह से हो गया है। स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य के प्रारम्भ में जो वेद-भाष्यभूमिका तैयार की उसे शुद्ध चित्त से पढ़ने पर किसी को भी वेद या धर्म विषयक शंका शेष नहीं रहती। इस प्रकार की सर्वोत्कृष्ट, आधारयुक्त तथा सर्वजन बोधगम्य, सुविचारपूर्वक उसकी रचना उन्होंने की है। जिसको वेदों का महत्त्व जानना हो उसे यह भूमिका अवश्य देखनी चाहिए यह हमारा अनुरोध है। स्वामी जी ने जो वेदभाष्य प्रारम्भ किया था वह सत्य वेदार्थ का कहां तक सहायक है, और पूर्व समय में महीधर आदि प्राचीन भाष्यकारों ने जो वेदभाष्य लिखे वे कितने अंशों में और कहां तक त्रुटिपूर्ण थे, इसका स्पष्टीकरण उन्होंने अपनी भूमिका में सोदाहरण किया है। इस भूमिका से अनेक अज्ञात और महत्त्वपूर्ण बातें समझ कर लोगों के प्रचलित मिथ्याचार एवं झूठी धारणाएँ किस किस प्रकार से अपना शासन सारे भारतवर्ष पर करती आई हैं तथा उनके विषय में शास्त्रज्ञ पण्डित तथा ज्ञानी एवं विद्वान् लोगों ने कितनी उदासीनता, उपेक्षा और निर्ममता दिखाई है, यह तत्काल ज्ञात होता है।

इधर दो हजार वर्षों से ब्राह्मणों ने जो रट रक्खा है कि वेद और शास्त्र हमारे गुप्त धन हैं और उनकी तरफ सिवा उन्हीं लोगों के अन्य को झाँककर भी नहीं देखना चहिए, इसके विरुद्ध स्वामी जी का मत इस प्रकार है—जिस व्यक्ति में बुद्धिमत्ता हो, वह निश्चित होकर वेद शास्त्र का अभ्यास करे। उनके इस कथन को विषम समझ कर सम्पूर्ण ब्राह्मण-मण्डली ने पागल की भाँति उन पर अपने क्रोध की आग बरसाई इसमें किञ्चित् भी आश्चर्य की बात नहीं थी। स्वामी दयानन्द का प्रतिपादन कहीं भी शिथिल और ढीला-ढाला नहीं था। वह जोरदार तथा आधारयुक्त था, परन्तु उसे शान्त होकर तथा विचारपूर्वक ग्रहण करने की क्षमता किसी में न होने के कारण ब्राह्मण स्वामी जी से वैमनस्य और विरोध करने लगे। इससे ब्राह्मणों का अनुदार स्वभाव और स्वामी जी की उदारता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। ज्ञाता लोग इस बात को सहज ही जान सकते हैं क्योंकि यह स्पष्ट है कि स्वामी जी पर किसी प्रकार का बन्धन,

लोभ तथा किसी के उपकार से दबे होने की भावना या परतंत्रता नहीं थी। इस कारण वे किसी भी संकोच, भय एवं बन्धन का भाव न रखते हुए न्याय और वेद शास्त्र सम्मत बात को धड़ल्ले से कहते थे। उनमें कपट का लेश-मात्र भी नहीं था। कोई भी व्यक्ति उनके पास शंका लेकर जाता तो वे उसका योग्य रीति से समाधान करते थे।

आज तक उनके पास जितनी शंकाएँ आईं, उनका समाधान स्वामी जी ने वेदभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थों में लिख दिया है। ये ग्रन्थ इस प्रकार की सर्वमान्य बातों से युक्त हैं कि जिन्हें देख कर लोगों के निज़ी मत समाप्त हो जाते हैं और सर्वोपरि स्वामी जी का ही सिद्धान्त शेष रह जाता है। उनके व्याख्यानों में सब धर्म सम्प्रदायों के लोग निस्सं-कोच भाव से आते थे। सबके समक्ष स्वामी जी भी अपने मत का प्रतिपादन बेधड़क होकर करते थे। इस प्रकार, सर्वत्र, सब काल, निश्शंक, एकाकी घूमते हुए और जिस तिस पण्डित से शास्त्रार्थ करते हुए उनकी कीर्ति-पताका सात समुद्र पार तक फहरा गई थी। लंदन और अमेरिका अर्थात् पाताल देश पर्यन्त उनकी विजय दुंदुभि बज रही है।

भारत के कितने ही राजा और लक्षाधीश, ज्ञानी और समझदार लोग अपने-अपने वैष्णवादि मत छोड़कर स्वामी जी का अनुसरण करते हैं। सारे भारतवर्ष के अतिरथी, महारथी, अपरिचित शास्त्री और पण्डितों के समूह में वे बेधड़क सिंह की तरह जाकर बैठना, बैठते ही वाग्युद्ध द्वारा उन्हें परास्त कर हंसते-हंसते उठना और सर्वत्र अपने पक्ष को स्थापित करना[1], यह स्वामी जी का कितना बड़ा साहस और तपोबल है। इतना होते हुए भी वे बाहरी ठाठ-बाट से दूर थे। उनके साथ कामलायक दो या तीन शिष्य मात्र सदैव रहते थे। वे प्राचीन ऋषि मुनियों की भाँति सत्पथा-

१. नासिक, पूना, अहमदाबाद, इन्दौर, बम्बई, काशी, प्रयाग, पटना और कलकत्ता जैसे परम प्रसिद्ध विद्या-नगरों में जब पण्डितों की भी यही अवस्था हुई तब इतर नगरों की बात ही क्या ? किसी के द्वारा स्वामी जी के प्रति-पादन का प्रतिवाद नहीं हो सका। सभी लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति स्वामी जी क विद्वत्ता को देख कर ग्राम्यजनों की भांति इस प्रकार चकित रह गये कि उनके समक्ष गुणज्ञ होते हुए भी अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने की बुद्धि उनमें नहीं रह गई। अन्त में वे परम अधीर, परम अशान्त, परम-मत्सर-ग्रस्त तथा अन्यन्त अश्लील एवं अश्लाध्य कर्म करने में प्रवृत्त होकर पतित हुए। अस्तु, हरेः इच्छा बलीयसी।

नुवर्ती, शुद्ध मत संस्थापक, सच्चे देशानुरागी, पूर्ण योगी, अद्वितीय विद्वान्, स्पष्ट और यथार्थवक्ता, परम निःस्पृह, जितेन्द्रिय, जितारिषड्वर्ग[1] वैराग्य-शाली तपस्वी थे। इसी कारण उनको इतना आदर भूमण्डल पर प्राप्त हुआ तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष के छोटे-बड़े राजा, महाराजा और विद्वान् लोग तथा ज्ञानी पुरुषों की ओर से उन्हें अनुपम सम्मान प्राप्त हुआ[2]।

यद्यपि इस समय में यहाँ पर (महाराष्ट्र में) विष्णु बुवा ब्रह्मचारी और गुजरात में स्वामी नारायण अपर नाम सहजानन्द जैसे अच्छे साधु हो गये हैं किन्तु उन्हें स्वामी जी के समान पूर्ण विद्या प्राप्त नहीं थी। स्वामी जी इनके भी ऊपर की श्रेणी में प्रतिष्ठित होने वाले बड़े साधु थे। इन्हें वैदिक मत संस्थापक, अपर शंकराचार्य के तुल्य ही निर्भ्रान्त समझना चाहिये, "इधर पौराणिक धर्म के प्रचलित होने के पश्चात् से वैदिक धर्म का अपकर्ष हुआ। पुराणों की कथाएँ, अयुक्त एवं असंगत हैं, उसी प्रकार मूर्तिपूजा भी अवैदिक, अज्ञानपूर्ण तथा अनर्थ सूचक है, इसलिए वह हमारे लिए सर्वथा त्याज्य ही है।" इस प्रकार का उपदेश सुनकर उदरम्भर, भट्टभिक्षुक व शास्त्री पौराणिक मण्डली ने स्थान-स्थान पर स्वामी जी से द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने ही अपने पेट के लिए श्रीस्वामी जैसे जगत् पूज्य महात्मा की निन्दा प्रारम्भ की। वे लोग उस महा-पुरुष को नास्तिक, पाखण्डी और ईसाई कहते थे। यह कोई नई बात नहीं कही गई। जितने सुधारक जहाँ-जहाँ हुए हैं उन पर निरन्तर इसी प्रकार की घोर विपत्तियाँ आई हैं।※ यह बात इतिहासविदों को ठीक-ठीक ज्ञात

---

१. काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह एवं मत्सर पर विजय पाने वाला।

२. सन् १८७७ ई० के जनवरी मास में महारानी सरकार द्वारा चक्रवर्ती साम्राज्य का पद धारण करते समय लार्ड लिटन की अध्यक्षता में जो बड़ा दरबार हुआ था उस समारम्भ में श्रीमान् पण्डितवर्य स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज को भी उसमें आमन्त्रित किया गया था। भाग्योदय बल से हमारा भी उस समय वहां जाना सम्भव हुआ। इसी संयोग के कारण हमने अपनी आंखों से यह चमत्कार देखा है। उस समय स्वामी जी ने बाबू केशवचन्द्र सेन के चित्त में वेदों का प्रभाव ठीक से स्थापित किया और उनकी आंखें खोल दीं।

※ कितने ही लोग कहते हैं और समझते हैं कि मूर्तिपूजादि मतों का स्वामी जी ने खण्डन किया। अतः यहां के समस्त शास्त्री आदि भिक्षुक

है तथा प्रत्यक्ष भी हम अपनी आँखों से देखते हैं। इसी प्रकार की यह भी एक बात है। यद्यपि अज्ञानी लोगों के मनों में उस महापुरुष के प्रति किञ्चित् भी अपूज्यता (अनादर) का भाव आया परन्तु उस पूर्ण प्रताप-शाली पुरुष के मन में अपने द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य के हेतु तिल मात्र भी तिरस्कार भाव उत्पन्न नहीं हुआ। इस प्रकार मानापमान को समान समझते हुए वे निरन्तर उत्साहपूर्वक आचरण करते रहे और उत्तर भारत के समस्त नगरों में उनके उपदेश से आर्यसमाजें स्थिर हुई हैं।

सन् १८७५ ई० के जून के महीनों में यहाँ (पूना) के प्रतिष्ठित और संभ्रान्त बड़े विद्वान् गृहस्थों के निमन्त्रण पर स्वामी जी पूना आकर गये हैं। उस समय यहाँ हिन्दू क्लब में उनके १५-१६ व्याख्यान सुनने को मिले। कितने श्रोताओं की भीड़ थी और कितना अपूर्व उस वक्ता का उपदेश और व्याख्यान। उसके स्वरूप का क्या वर्णन करें? उस समय यहाँ के सत्पुरुषों ने स्वामी जी का बहुत सम्मान किया था। एक दिन उन्हें गजारूढ़ करके बडे ठाठ से समस्त पूना नगर में जुलूस रूप में घुमाकर ले आये थे, किन्तु यहाँ के चटोरे, गुण्डे, अविचारी, स्वार्थी, घातक और मत्सरी लोगों को स्वामी जी का यह सत्कार अत्यन्त असह्य हुआ। उन लोगों ने अकरणीय सब कार्य किये। अन्त में पुलिस की सहायता लेनी पड़ी। इस बात का विशेष विस्तार लिखना हमें अभीष्ट नहीं है क्योंकि जिन्होंने जैसा किया, उन्होंने

मण्डल का उन पर क्रोध हुआ। इस प्रकार की आशंका करने वालों को हमारे इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए कि तुकाराम ने क्या इस प्रकार का कुछ भी खण्डन नहीं किया था? उस गरीब साधु पर रामभट बग्घोलकर जैसे चाण्डाल ने मार्ग चलते हुए गोबर फंक मारा था। और किस कारण उत प्रकार के लोग उनके साथ छलपूर्ण व्यवहार करते रहे। और क्या कारण है कि उनके अभंग (पद) चन्द्रभागा नदी में डुबो दिये? यही दशा विदेश में लूथर, कूपरनिकस, गेलीलियो और सुकरात आदि देश-सुधारक सत्पुरुषों की, अपने को विद्वान्, बुद्धिमान् और पूर्ण धर्मज्ञ कहलाने वाले वहाँ के लोगों द्वारा हुई। अन्त में वही अपमान करने वाले लोग महान् मूर्ख, धूर्त्त, मत्सरी और चाण्डाल ठहराये गये और अपमानित होने वाले तुकाराम आदि इस जगत् में परम पूज्य हो गये। यही न्याय बुद्धिमान् लोगों द्वारा स्वामी जी का अपमान करने वालों के प्रति किया गया है। इन्हीं लोगों को सदैव सब लोग ठीक समझेंगे। इतिहास क्रम भी यही सिद्ध करता है। अच्छे मनुष्यों के गुणग्राहक न्यून किन्तु दोषदर्शक अधिक होते हैं।'

उसका फल भी वैसा ही भोगा। किन्तु पूना जैसे विद्या-केन्द्र में लोगों ने ऐसा अनुचित कर्म करके अपनी महती अपकीर्ति और उपहास कराया है।

प्रसिद्ध है कि स्वामी जी में चापलूसी पसन्द करने की किंचित् भी वृत्ति नहीं थी। इसलिए वे निःस्पृह और निर्लोभ भाव से निडर होकर अपना सत्य मत लोगों को सुनाते थे। यह बात स्वार्थी लोगों को कैसे पसन्द आती? कुल पुरोहित यदि यजमान से इस प्रकार की बातें कह दें तो उनका पौरोहित्य बन्द हो जायेगा यह भी उन्हें डर रहता है। शास्त्री, पंडित यदि इस प्रकार का शास्त्रीय आधार पूर्ण मत लोगों को बतायें तो अन्य लोगों में उनकी अप्रतिष्ठा होने की चिन्ता रहती है तथा गृहस्थों को यह भय रहता है कि यदि हम अमुक आचार्य प्रतिपादित आचार के अनुसार नहीं वर्तेंगे तो लोगों में हमारा प्रभाव समाप्त होकर उपहास होगा। इस प्रकार सर्वथा निर्भीक होकर मन को सत्य प्रतीत होने वाले मत को ग्रहण कर तदनुसार आचरण करने का धैर्य और दम्भहीनता किसी में दृष्टिगोचर नहीं होती। इस प्रकार के पाश और लोभ स्वामी जी को नहीं था। अतः उनका और इन भिक्षुक लोगों का निभाव कैसे हो सकता था। इसलिए उन लोगों ने जिस प्रकार स्वामी जी का सर्वत्र विरोध किया उससे कुछ अधिक ही यहाँ के लोगों को उसकी प्रतीति हुई। इस प्रकार के लोगों की ऐसी असद् बुद्धि होते हुए भी उनकी पीठ थपथपाने वाले यहाँ के (महाराष्ट्र के) तीन पुरुषों को देखकर हमारे चित्त को बहुत दुःख होता है। उनमें भी निबन्धमालाकार[1] सर्वोपरि कहे जा सकते हैं। उपर्युक्त गृहस्थों में प्रथम प्रो० रामकृष्ण गोपाल भांडारकर हैं। इनके आक्षेप और शंकाएँ केवल मुख जबानी थीं। इसलिए उनका मत उनके पास रहा। दूसरे आक्षेपकर्त्ता विष्णु शास्त्री पंडित ने अपने पत्र इन्दुप्रकाश में एक बार स्वामी जी के विरोध में कुछ लिखा था। किन्तु बाद में उन्हें स्वामी जी की भारी विद्वत्ता और तपोबल का ज्ञान हुआ जिससे वे जल्दी ही रास्ते पर आ गये। पुनः उन्होंने इस प्रकार का कुछ भी नहीं किया। इतना ही नहीं, उनके मुख से हमने अनेक बार स्वामी जी की स्तुति ही सुनी है। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पत्र इन्दुप्रकाश में स्वामी जी द्वारा अहमदाबाद आदि नगरों में प्राप्त सम्मान, सुयश आदि को सविस्तार लिखकर प्रकाशित किया और हमारे समक्ष भी संभाषण प्रसंग में उन्होंने स्वामी जी के विषय में अपनी पूज्य बुद्धि प्रदर्शित की।

१. इस ग्रन्थ के लेखक थे विष्णु शास्त्री चिपलूणकर। यह मराठी ग्रन्थ परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में विद्यमान है।

इससे विचार करना चाहिए कि इन्दुप्रकाश सम्पादक शास्त्री बुवा की विचार-शक्ति कितनी शुद्ध और प्रशंसनीय थी। तब समझ में आता है कि प्रारम्भ में लोग स्वामी जी को किस प्रकार का समझ बैठते थे और फिर उनकी बुद्धि धीरे-धीरे स्वामी जी के सम्बन्ध में किस प्रकार बदल जाती थी। इसका यथार्थ वर्णन थाना के सूर्योदयाख्य पत्र में जिसे देखना हो देख ले। अब रहते हैं तीसरे पुरुष कैलासवासी विष्णु शास्त्री चिपलूणकर (निबन्धमाला के सम्पादक) इनका मृत्यु पर्यन्त स्वामी जी पर कटाक्ष सतत चालू था। यह बड़े विद्वान् होते हुए भी द्वेष्टा तथा 'भूतो न भविष्यति' उपमा वाले स्वामी जी के विरोधी थे। यद्यपि इस समय दोनों ही नहीं रहे, पर उन दोनों के लेख सामने विद्यमान हैं। उनकी आलोचना आवश्यक है क्योंकि चिपलूणकर ने अनिर्वाच्य निन्दा के आक्षेप स्वामी जी पर किये। इस विषय में उदासीन रहना हमें उचित प्रतीत रहीं होता, इतना ही कर्त्तव्य हमारे लिए अवशिष्ट है, यह करके हम अपने लेख को समाप्त करते हैं।

इस प्रकार का ऊहापोह करके आगे इस सम्बन्ध में अपना यथावत् विचार और विवेचन करते हुए लोक हितवादी ने अपना निर्णय सिद्ध किया कि चिपलूणकर में प्रथमोक्त विष्णु शास्त्री के समान विवेचना शक्ति नहीं थी। अथवा यथार्थ कहना और लिखना उन्हें अभीष्ट ही नहीं था, अथवा वैसा करने पर घोर विपत्ति उन पर आयेगी, यह आतंकभाव उनके चित्त पर बैठा था। इसीलिए उन्होंने समस्त विज्ञवृन्द के विपरीत आचरण किया। स्वामी जी के यश की वृद्धि तो उनके (चिपलूणकर के) जीवनकाल में ही सर्वत्र देश में फैल गई थी और उनके बाद भी वह कीर्ति सर्वत्र संसार में फैली हुई है तथा आगे भी उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी। विवेकशील व्यक्तियों का उस योगीश्वर स्वामी जी के निष्कपट कार्यों के प्रति अविचल विश्वास है। आगे आने वाले लोगों को हमारे परम मित्र चिपलूणकर की भाँति अविवेक और दुस्साहस का काम कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने वाला पुरुष स्वयं कलङ्कित होकर अपनी बस्ती को भी कलङ्कित करता है। इस प्रकार का काम सद्बुद्धि का नहीं कहा जा सकता, यह ध्रुव सिद्धान्त है।

जिस प्रकार गजेन्द्रारूढ़ चक्रवर्ती की सवारी का हाथी ग्रामसिंह (कुत्ता) के भोंकने से किंचित मात्र भी नहीं डगमगाता उसी प्रकार हमारा यह परम स्तुत्य महाराज उपर्युक्त लोगों की नाना रूप कुचेष्टाओं के कारण डगमगाया नहीं। इस प्रकार के जगत् पूज्य महानुभाव के साथ हमारे पूना

जैसे परम सभ्य नगर में कदापि किसी को भी ऐसा छलपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए किन्तु निन्दक, स्वार्थी और मत्सरी लोगों ने अपने साथ इस नगर को भी कलङ्कित कर डाला है। खैर, जिस गांव में समझदारों के बहुत से घर होते हैं वहां मूर्ख लोग भी रहते ही हैं। इस प्रकार का आत्म समाधान कर लेने पर भी यह बात बहुत-बहुत बुरी हुई। इसलिए यहां के बहुत से सज्जन और विद्वान् लोगों ने स्वामी जी के पास जाकर बहुत खेद प्रदर्शित किया, परन्तु धन्य है वह तपोनिधि कि जिसका धैर्य, गाम्भीर्य अथवा शौर्य इस प्रसंग में लेशमात्र भी कम हुआ देखने में नहीं आया। और जो पुरुष रात-दिन भारतवर्षीय लोगों को ऐहिक और पारमार्थिक पूर्ण सुख किस प्रकार प्राप्त हो, इस चिंता में निमग्न रहकर उपदेश करता हो और जिसके समक्ष आते ही रामानुज, कमलनयनाचार्य जैसे बड़े-बड़े विद्वानों की भी घिग्घी बंध गई उनको अज्ञ और प्रमादी समझने और समझाने वाले कौन किस प्रकार से सयाने और चतुर हैं, इसका तो तुम लोगों को कुछ विचार होना चाहिए। इसके बाद यहाँ के एक उद्योगी पुरुष ने स्वामी जी की व्याख्यानमाला[1] की जो टिप्पणी तैयार की है उसे देख कर स्वामी जी की प्रौढ़ व स्वतंत्र विचार एवं तर्क-शक्ति का चमत्कार सहज ही समझ में आ जाता है। इसलिए उसे देखो जिससे तुम्हें शान्ति मिले।

विलायत में विद्या और बुद्धि के सागर एडम स्मिथ[2], बेकन[3], मिल* आदि महापण्डित जिस प्रकार हो चुके हैं और जिस प्रकार पूर्वकाल में अपने यहाँ कणाद, गौतम किंवा शंकराचार्य जैसे वेद वेदांग पारंगत व धर्म-संस्थापक हो चुके हैं उनके तुल्य ही स्वामी जी का व्यक्तित्व था, ऐसा कहने में हमें लेशमात्र भी संकोच नहीं होता। और यह भी जानना चाहिए कि ऐसे सत्पुरुष रूपी स्वर्ण की परीक्षा के लिए हमारे यहाँ के चिपलूणकर जैसे मत्सरी पुरुष काली कसौटी हैं जिस पर हमारे स्वामी जी स्वर्ण की तरह परखे जाकर शुद्ध सिद्ध हुए। इस स्वर्ण को जिसे चाह हो वह उसे संग्रह करे।

---

१. उपदेश मंजरी अथवा पूना प्रवचन के नाम से यह व्याख्यानमाला छप चुकी है।

२. इंग्लैण्ड का सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री।

३. अंग्रेजी का प्रसिद्ध निबन्ध-लेखक।

* सुप्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक।

(२) पं० रामलाल और स्वामी जी, स्थान बम्बई

जिन दिनों सं० ३२ वि० में स्वामी जी स्थान बम्बई में थे तो रानी के रायपुर के रहने वाले परम प्रसिद्ध पं० रामलाल षट् शास्त्री जो वहाँ सब ठौर कोलाहल करते फिरे कि हम मूर्तिपूजन, वैदिक मन्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध कर देवेंगे। एक दिन सभा के बीच स्वामी जी ने कहा कि अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बताइये कि वह कौन सा वैदिक मन्त्र है जिससे मूर्तिपूजन सिद्ध होता है। तब शास्त्री जी पुराण और स्मृतियों के श्लोक सुनाने लगे। स्वामी ने कहा कि ये सब अमान्य ग्रन्थों के वचन हैं। कोई वैदिक प्रमाण याद होय तो कहिए, तब शास्त्री जी ने मनु के वे श्लोक सुनाए जिनमें देव और प्रतिमा आदि शब्द आये हैं। स्वामी जी ने उनका अर्थ वास्तव में वह नहीं यह है, ऐसा कह कह समझाया और फिर कहा कि वैदिक प्रमाण बोलो, फिर भी शास्त्री जी वही पुराणादि के बहुत से प्रमाण कहने लगे, वैदिक मन्त्र कोई एक भी न बोले, तब सभा के मध्यस्थ भाऊ जी शास्त्री बोले कि रामलाल जी स्वामी जी क्या पूछते हैं और आप बारंबार क्या उत्तर देते हैं, यह सभा और शास्त्रार्थ की रीति नहीं। 'आम्रान्पृष्टः कोविदारानाचष्टे' के सदृश आप शास्त्रार्थ कर रहे हैं। इतने पर भी जब बहुत विलम्ब तक उन्होंने ठीक उत्तर न दिया तब सर्व सम्मत्यनुसार भाऊ जी शास्त्री सभाधीश ने सभा का विसर्जन किया। तत्पश्चात् रामलाल जी ने एक 'मूर्तिप्रकाशक' नाम की पुस्तक रचकर प्रसिद्ध किया कि स्वामी जी मुझ से डर कर भाग गये परन्तु वास्तव में इस शास्त्रार्थ के पीछे बहुत दिवस तक स्वामी जी महाराज बम्बई में विराजमान रहे थे। उस समय तक कभी किसी ने चूँ नहीं की। पीछे से निर्मूल बकना और लिखना मात्र आजकल के पण्डितों का महत् पाण्डित्य है।

फिर इस पत्र प्रेरक ने लिखा कि यही महाशय मुझे एक बार रेल पर मिल गये तो उन्होंने मेरे प्रथम प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट कहा कि भाई सत्य वार्ता तो यही है कि स्वामी जी संन्यासी हैं। उनको किसी की कुछ परवाह नहीं। उन्होंने वेदादि सच्छास्त्रों का बहु काल तक अच्छे प्रकार विचार के साथ अध्ययन किया, बड़े ही सामर्थ्यवान् और अतिशय बुद्धिमान् हैं: उनका यावत् कथन शास्त्रानुसार सत्य ही सत्य है। परन्तु हमारी शक्ति नहीं कि उनके समान कुछ भी जगत् में कह सकें क्योंकि गृहस्थ हैं, हमको अनेक बातों की अपेक्षा रहती है। फिर हम स्वामी जी के समान कैसे कुछ कह सकते हैं। संसार में कुछ और ही चर्चा फैली हुई है उसके

विरुद्ध कहते ही लोग सामने हो जांय तत्काल आजीविका जाती रहे। पश्चात् निर्वाह कैसे होय। दे० हि० अ०।

(३) मासिक पत्र 'प्रयाग' : पं० चतुर्भुज और स्वामी दयानन्द

यह पं० चतुर्भुज वर्ष में एक बार यहाँ माघ मेला के दिनों में आय दयानन्द के विरुद्ध अपने मन की जो कुछ चाहते हैं बकझक जाते हैं, चाहे उसका कुछ असर हो या न हो। कोई समझदार उनकी बात पर कान दे या न दे पर ये व्यर्थ की टांय टांय करने से नहीं चूकते। सो क्यों? अवश्य इसमें चतुर्भुज का कोई गुप्त मतलब है। यह तो प्रसिद्ध बात है कि चतुर्भुज में दयानन्द की सी विद्या नहीं है, तब ये अपने को किस तरह संसार में उजागर कर रोटी कमा खांय, कुछ न था, यही एक युक्ति सूझ गई। ये अपने को राज पौराणिक कह प्रसिद्ध किये हैं। पर पूछना चाहिए कि यह पण्डितराय की उपाधि आपको किसने दी है। "शक्रोऽपि लघुतां याति स्वयं विख्यापयन् गुणान्।" दूसरे यह कि जहाँ कहीं पहुँचे दस बीस ब्राह्मणों को मिला सौ पचास आदमियों को कहीं पर इकट्ठा कर हूँ हा गाल घंघोटा कर कराय चम्पत हुए। इन दिनों के अशिक्षित अल्पज्ञ ब्राह्मणों ने अब हिन्दू मत के कायम रखने की यही युक्ति सोच ली है कि न कुछ विद्या का काम है न शऊर या लियाकत चाहिये, बस इसी तरह धूर्तता के बल गाल घंघोटा कर कराय प्रजा की आँख में धूल झोंकते जांय और हिन्दू धर्म की असलियत को इसी प्रकार छिपाते हुए मनमानता मूर्ख, हीन, दीन, प्रजा का शिकार कर मारते खाते रहें। सो अब इस १९वीं शताब्दी में यह बात चलने वाली नहीं है। पढ़े-लिखे लोगों को किसी तरह चतुर्भुज की सी बेसिर पैर की बातों में श्रद्धा नहीं हो सकती। हमको दयानन्द से कुछ प्रयोजन नहीं, न हम सर्वांश में उनके मत के पोषक हैं, न हमको किसी तरह का वास्ता उनसे है, परन्तु इतना कहेंगे कि दयानन्द महज तनहा फकीर आदमी है, सच्चे जी से देश की भलाई चाहता है। उनकी जात से मुल्क का बहुत कुछ लाभ पहुँचा है। चतुर्भुज तथा उस समय के निर्विघ्न ब्राह्मण सिवाय अपना मतलब निकाल लेने के देश या जनपद को कौन सा लाभ पहुँचाते हैं, जिसे सोच समझ हम अपनी पक्षपात शून्य अनुमति न प्रकाश करें। माघ शुक्ला ५ सं० १९३९ वि०।

(४) विवेकी विद्वान् ऐसे होते हैं

जैसे ठठुगढ़ निवासी पं० पुतानीलाल जी वाजपेयी। ये महाशय श्री स्वामी जी महाराज से बड़ा भारी विरोध रखते थे। एक दिवस

राजकीय कार्यवश यह ग्रन्थकार उनके ग्राम में पहुँचा। वहाँ लोगों ने कहा कि आपसे हमारे पण्डित जी मिलने की इच्छा रखते हैं। मैंने कहा कि बड़े आनन्द की बात है परन्तु इस पराधीन को सायंकाल के अनन्तर अवकाश हो सकता है। तदनुसार पं० जी ७ बजे रात्रि आये। वास्तव में उस समय पण्डित जी की समझ यही कहती थी कि स्वामी जी का सब काम अनर्थ-कारक हो रहा है। परिश्रम में रात्रि भर की जुटन्त में पण्डित जी परम शुद्ध होकर धन्यवाद देने लग गये। उस दिन से उन्होंने इस शरीर के साथ अपना अतिशय प्रेमभाव प्रकाशित कर रक्खा है। अहर्निश बेधड़क स्वामी जी का प्रभाव सर्वत्र वर्णन कर रहे हैं। इतने में यहाँ के प्रसिद्ध पण्डित उमादत्त जी का बनाया हुआ 'सन्मतेन्दु' नामक ग्रन्थ कहीं आपके दृष्टि पड़ गया तो आप बहुत खिन्न हुए और उसके खण्डन में उन्होंने एक छोटा सा ग्रन्थ संस्कृत में बनाकर उमादत्त जी के समीप भेजा। पुनः मुझे भी सुनाया नाम इस ग्रन्थ का 'सन्मतेन्दुस्वर्भानु' आपने रक्खा है :

उक्त ग्रन्थ केवल पण्डित उमादत्त मतिखण्डक ही नहीं है किन्तु हमारे परम प्रिय वाजपेयी जी के आन्तरीय सद्भाव का भी पूर्ण संदर्शक है। अतः उसके कुछ श्लोक नीचे निदर्शनार्थ लिख दिए हैं।

गोपालरावहरिणा प्रबोधितोऽहं निःशङ्कमत्रश्रुतिबोधितब्रह्मपूर्णम्।
ज्ञात्वा विचार्य तदुदीरितमीड्य वेदं वेद्यं न वस्त्वपरमेव विभाव्यते मे ॥१॥

न वैरबुद्ध्या न तु मत्सरेण न दोषयुक्तेन हृदा वदामि।
विद्वज्जनैर्मध्यधिया विचार्यं यत्सत्ययुक्तं तदुपासनीयम् ॥ २ ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीगृहे न भोजनं मेऽस्ति भवद् गृहे तथा।
मध्यस्थबुद्ध्या तव सन्मतेन्दुं विलोक्य विद्वन् विलिखामि किञ्चित् ॥३॥

अल्पज्ञोमादत्तो विरचितवान् सन्मतेन्दुनामानन्।
ग्रन्थहानिनिमित्तं यत्र मतानां न निर्णयः क्वापि ॥ ४ ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीकृते श्री वेदभाष्यार्कसमप्रकाशे।
उमादिदत्तद्विजसन्मतेन्दुं सर्वात्मना धूसरतो विधत्ते ॥ ५ ॥ इत्यादि।

इति प्रमाणान्तराणि।

नीचे लिखा लेख स्वामी जी महाराज के गुण गौरवों का मानो पूरा प्रदर्शक है क्योंकि उक्त लेख उस पुरुष के हस्त का है जिसने प्रतिज्ञा कर छोड़ी थी इस बात की कि चाहो जिस नरक में चाहो जितने दीर्घ काल तक

परमात्मा निवास क्यों न दें परन्तु दयानन्द और दयानन्दियों की यावत् शरीर पात बनेगी, उतनी मिथ्या बुराई ही लिखूँगा। वही कट्टर विरोधी, भ्रष्टप्रतिज्ञ होकर अपने इसी जन्म में श्री स्वामी जी स्वामी जी करके लिखे यह परमाश्चर्य की बात है अथवा श्री जी महाराज के सत्कर्म का पूर्ण प्रभाव है।

अपूर्व लेख : मित्रविलास, लाहौर : सन् ८४ का अंक १९

सदैव प्रति दिवाली को सब आर्य अपनी-अपनी समाजों में एकत्र हो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का गुणानुवाद किया करें और मन खोल के धन दें जिससे श्री स्वामी जी का स्मारक चिह्न अनायास पूर्ण हो। खाली ताली पीटने से कुछ लाभ न होगा। आर्यसमाजों को समझ लेना चाहिए कि उनकी खातिर उनके स्वामी जी ने क्या क्या कष्ट और परिश्रम नहीं उठाए, यदि उनको भुला कर ये सब लोग ऐसे निर्लज्ज हो जाएँगे कि एक स्मारक चिह्न भी अपने गुरु जी के नाम का नहीं बना सकेंगे तो और को लाभ पहुँचाने की इनसे क्या आशा हो सकती है? गुरु-भक्ति दिखानी इसे हम परम प्रशंसनीय समझते हैं और इसीलिए बड़ी उत्कण्ठा से उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं जब कि ये हजारों नई सभ्यता से सज्जित लोग कुछ गुरु-भक्ति दिखाने में कमर बांधेंगे और गपोड़ शंखी ही बनना हो तो उनकी इच्छा। परन्तु यदि दमड़ी-दमड़ी भर भी गुरु-भक्ति इन लोगों में होगी तो अवश्य जिस-जिस प्रकार के अमीर लोग दयानन्दी समाजों में हैं वैसी ही अमीरी गुरु-भक्ति भी इनकी ओर से प्रकट होनी चाहिए और धन एकत्र करने की यदि युक्ति उनको विदित न हो तो हम बताते हैं कि वे लोग अपने गुरु जी की समाधि बना उसमें स्वामी जी की मूर्ति पधरा देवें, तहाँ विवाहादि उत्सवों में अपने-अपने वित्तानुसार धन चढ़ावें। इस द्रव्य से कालिज या बृहत् कालिज हो सकता है?

देश हितैषी—प्रिय पाठको, यद्यपि हमारी सम्मति उक्त सहयोगी के लेख पर सर्वांश नहीं है और न हमको इन शब्दों पर जो कि आर्यों को कहे हैं रोष करना उचित है क्योंकि यदि हमने इस महत् कार्य अर्थात् वैदिक कालिज को सांगोपांग पूर्ण कर दिखाया तो अनेक हमारी प्रशंसा करेंगे, नहीं तो एक मित्रविलास ही क्या तुम स्वयं परस्पर एक दूसरे को निर्लज्ज कहते न लजाओगे। अस्तु, हम सम्पादक मित्रविलास को उसके इस कर्त्तव्य पर कि जन्म भर में आज उसने निष्कपट हो स्वामी जी को

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती इत्यादि शब्दों से पुकारा और एक मात्र सच्चे मन से देशहितैषिता पर परामर्श दिया) अनेक धन्यवाद देते और कहते हैं कि भाई श्री स्वामी जी महाराज का उद्योग खास किसी एक जत्था के लिए नहीं था वरन् वे सम्पूर्ण भारत के हितैषी थे। यदि ऐसा पुरुष किसी अन्य देश वा अन्य जत्था के मध्य उत्पन्न हुआ होता तो हम नहीं कह सकते कि उस देस के निवासी क्या-क्या उपकार न कर लेते। परन्तु हम अपने इस अभागे भारत पर शोक करते हैं कि जहाँ के मनुष्य अपने परम मित्र को शत्रु तुल्य जानने और अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मार अपना सर्वनाश कर लेने को ही सद्धर्म और उन्नति समझते रहें।

देखिये बंधुगण, परिणाम में हमारे परम मित्र देश-हितैषी ने भी अपना वैसा ही शोक भारतवासियों की असद् बुद्धि पर प्रकाशित किया जैसा कि स्थलान्तरों में अन्य सत् पुरुषों का लिख दिखाया है। सिद्धान्त सब का यही एक है कि हुआ सो हुआ आगे के लिए तो भी हमारे भाई सुचेत हो जायें और सोचें कि आर्यावर्त भर के हजारों अज्ञ वा पेटार्थी हम पण्डितों ने केवल स्वार्थवश होकर श्रीमान् जगदुपकारक स्वामी जी महाराज के साथ नाना प्रकार का छल कपट दुराग्रह और पक्षपात किया उससे स्वयं सर्वत्र समझदारों के समीप कलंकी और महापातकी ठहरे परन्तु श्रीमान् स्वामी जी महाराज की कुछ भी हानि न होकर वे उन सब को परास्त करते हुए अपनी तपस्या, सत्यता और पूर्ण विद्वत्ता के प्रबल प्रभाव से यहाँ से लन्दन[1] और अमेरिका तक समस्त देश देशान्तरों में जैसे कुछ कि आदरणीय और

१. देखिये श्रीमान् का प्रताप बल कि उनको शरीर परित्याग किए चतुर्थ वर्ष है तथापि जिधर देखो उधर उनके प्रशंसात्मक ग्रन्थ बन रहे हैं और उसी प्रकार नित्य नये आर्यसमाज जहाँ तहाँ बैठते जाते हैं। हद तो यह है कि इस वर्ष जैसा इधर कलकत्ता में समाज स्थापित हुआ उसी प्रकार उधर विलायत में लंदन जैसी विधर्मियों की राजधानी में आर्यसमाज स्थापित हो गया। उसमें प्रति रविवार को बड़ी धूमधाम के साथ वैदिक व्याख्यान होते हैं जिसमें बड़े-बड़े प्रतिष्ठित अंग्रेज आते और व्याख्यानों को सुन सुन कर वैदिक मार्ग को बराबर सराहते हैं और तत्रस्थ परम प्रतिष्ठित आर्यों का राजगृह में बड़ा मान है। वे वहाँ समाज मन्दिर बनाने की तैयारी में लग रहे हैं। अभी वहाँ पर यहाँ का एक ब्राह्मण मरा तो उसकी दाह-क्रिया वैदिक रीति से इन्होंने की यह नया उदाहरण वहाँ पर आर्यों ने समुपस्थित किया। इसका उनको सब वहाँ वाले सभ्य धन्यवाद दे रहे हैं।

सुविजयी होना चाहिए थे वैसे अच्छे प्रकार से हुए। तथैव भूमण्डल भर में उनका सब ज्ञानवान् लोग अनेकविध सुयश और हमारा अपयश गान कर रहे हैं अतः अब तो भी हम सब लोग स्वकलंक छुड़ाने के लिए सन्मार्ग पर आ जांय अर्थात् श्रीमान् परम दयालु स्वामी जी महाराज के उपदेशों के अनुकूल चलकर स्वदेश की भलाई करने में तत्पर हो जायें, इसी से नर-जन्म की सफलता हो सकती है, अन्यथा कदापि नहीं।

बस बंधुगण, अब मैं उस परमाद्भुत चरित्र को समाप्त करता हूँ जिसका वर्णन मुझ ऐसे किञ्चित् शत वर्ष में भी पूर्ण नहीं कर सकते हैं।

पुनस्तदेव प्रकृतम् :

य: पाखण्डमतैकखण्डनरतो वेदाख्यशस्त्रैः शुभैः।
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि ॥
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भान् समारोपयन्।
दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥ १ ॥

अज्ञानजन्यतिमिरव्रजनाशको यो वेदोपदेशकदिनद्युतिरस्तमापत्।
तत्कृत्यमार्यगणः कः कथितुं समर्थो धैर्यं विधेयमवलम्ब्य तदुक्तियुक्तौः[1] ॥२॥

बन्धुगण, जिन श्रीमान् जगन्मान्य महानुभाव के यत् किञ्चित् गुणगान में यह लघु ग्रन्थ सिद्ध हुआ, उन्हीं के प्रशंसात्मक ये ऊपर लिखे दो श्लोक हैं। चलते-चलाते इनका भी कुछ स्पष्टार्थ सुन लीजिये। सत्कवि

---

१. भाषा काव्य भी देखिये—

दया को सागर आनन्द में विकसत सुख-विद्या को निधान पूर्व ऋषि न समान हैं ॥ १ ॥

वाणी को है जिह्वा पर निवास प्रकाशमान करते हैं विलास सोवत सब जहान है ॥ २ ॥

देवासुर समर मध्य सत्य की कृपाण लिये धारण किये विद्या को मानो धनुबाण है ॥ ३ ॥

याही ते विजय कीन्हो दीनो सब कपाट खोलि स्वामी दयानन्द जी को प्रकट प्रमाण है ॥ ४ ॥

सत्य तो यह है कि लोगों ने आल्हाखण्ड की चाल पर जो यशोगान किया है उसमें भी अत्युक्ति बचाई है।

लिखते हैं कि पाषाणनौकाश्रितत्वात् विपत्तिमहोदधि में डूबते हुए इस परम वृद्ध भारत का समुद्धार करने की बुद्धि से जिसने शास्त्रों का बल लेकर वेद रूपी शास्त्रों से सदा समरांगरा में अपने सम्मुख आये हुए विपक्षियों के पाखण्ड मत रूप अपार सैन्य दल को अनेक बार छिन्न-भिन्न करके सर्वत्र सर्व दिशाओं में सत्पक्ष समाश्रित समाज रूप विजय-स्तम्भों को बहुत गहरी नींव लगा कर समारोपित कर दिया उनके समान पुरुषार्थी अन्य पुरुष इस जगत् में हम भारत निवासियों को हा ! अब कहाँ मिलेगा ? पुनश्च—हे आर्य गरा, जिस अज्ञान जनित यावत् तिमिर कार्यों के विनाशक, वेदोपदेशक सूर्य ने, इस संसार के अनेक अपरिमित उपकार सिद्ध किये, वह सम्प्रति अस्त हो गया और उसके गुरग्रामों का यथावत् वर्णन करने वाला इस अवनितल पर इस समय कोई है नहीं । ऐसी शोक-दशा में पतित, परमार्त भारत को सर्वथा यही करना उचित है कि वह धैर्यावलम्बी होकर अपने परमगुरु सद् वैद्य की उक्ति युक्ति अर्थात् उसके कहे लिखे परम पावन चुटकुलों (नुस्खों) को अच्छे प्रकार ढूंढ़-खोज कर अपने नेत्रों के सम्मुख लाकर धरे । पश्चात् उनको खूब पढ़ समझ कर तदनुकूल अपना शुद्ध आचरण करके निर्दोष व निरामय होकर दोनों लोकों का सुख लहे ।। इति ।।

अथ विज्ञानाष्टकम्

श्रीमद्दयानन्दगुरुं परात्परं भजामहे सन्ततमिष्टसिद्धिदम् ।
इतीरयन्तः प्रणिपत्य सादरं तादात्म्यगाः स्युर्विगतद्विधाभयाः ।। १ ।।

संसारस्यौषधं नित्यं यो न वेत्ति विमूढधीः ।
सगुणं निर्गुणं वापि कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ।। २ ।।

अथवा सर्वदेहेषु समवस्थितमीश्वरम् ।
न जानाति विमूढात्मा कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ।। ३ ।।

ब्राह्मण्यं प्राप्य लोकेऽस्मिन् न पिबेद् ब्रह्मसद्रसम् ।
तृष्णाशान्तिस्तस्य नास्ति बहुमातृस्तनोद्भवैः ।। ४ ।।

कर्म ज्ञानं द्वये लोके प्रमाणं वर्तते खलु ।
कर्मणोऽप्यधिकं ज्ञानं तद्द्वयात्पतितश्चुतः ।। ५ ।।

ब्राह्मण्यं प्राप्य लोकेऽस्मिन् सद्गुरोरुपदेशतः ।
न जानाति परं ब्रह्म तं विना पतितस्तु कः ।। ६ ।।

अद्वैतेन विना मोक्षो न जीवस्येति निश्चयः ।
तस्माददृैतमीशानं गुरू वन्दामहे वयम् ॥ ७ ॥
इह सकललोकैः सेव्यमानो गुरुर्मे
विदितसकलवेदः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता ।
मतविदखिलकर्माशयान्तरायाणि हत्वा
दिशतु परमतत्त्वोद्धारमोक्षं स एव ॥ ८ ॥

अथान्तिमो विनयः

आकल्पमेतत् परमार्थबोधकं श्रीमद्दयानन्दगुरोः कथारसम् ।
सच्छिष्यमुक्तिप्रदमस्तु लोके संसेवितं चार्यजनैरभेदम् ॥ १ ॥

अद्वैतार्थप्रदं लोके अद्वैतार्थानुचिन्तकैः ।
गुरुकीर्तिप्रदं शास्त्रमुपास्यं भवति ध्रुवम् ॥ २ ॥

गोपालरावहरिणा गुरोर्विजयमुत्तमम् ।
रचितं ये तु गृह्णन्ति लोके धन्या भवन्ति ते ॥ ३ ॥

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शंनो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥
ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

युगवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे ज्येष्ठे मासे सिते दले ।
राकायां रविवारे च ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः ॥ १ ॥

मिती ज्येष्ठ शुक्ला १५, सं० १९४४ वि० ।
संवत् ४ दयानन्दी ता० ५-७-८७ ई० ।
विनायकमुकुन्दाख्यौ लक्ष्मीयौ यस्य द्वौ सुतौ ।
मुद्राङ्कितं स कुरुते जानकीहरिजः कविः ॥ १ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमान् पुण्यश्लोकशिखामणि स्वामीदयानन्दसरस्वती दिग्विजयार्कीयतृतीयखण्डे आत्मनिवेदनं नाम द्वादशो मयूखः ॥

समाप्तोऽयं दिग्विजयार्काख्यो ग्रन्थः ॥